ISO9001: 2015

भाकृअनुप
ICAR

केकृवाअनुसं
CAFRI

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

कृषिवानिकी आलोक

तेरहवाँ अंक–2024

भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
झाँसी 284003, उत्तर प्रदेश

ISO9001: 2015

भाकृअनुप
ICAR

केकृवाअनुसं
CAFRI

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

कृषिवानिकी आलोक

तेरहवाँ अंक–2024

भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
झाँसी–ग्वालियर राष्ट्रीय राजमार्ग, झाँसी 284003, उत्तर प्रदेश

भाकृअनुप-केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी, उत्तर प्रदेश

राजभाषा कार्यान्वयन समिति-2024

1.	डॉ. ए. अरूणाचलम	निदेशक	अध्यक्ष
2.	डॉ. ए.के. हाण्डा	प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
3.	डॉ. आर.पी. द्विवेदी	प्रधान वैज्ञानिक	सदस्य
4.	डॉ. के. राजराजन	वरिष्ठ वैज्ञानिक	सदस्य
5.	श्री गौतम सक्सेना	प्रशासनिक अधिकारी	सदस्य
6.	श्री पी.के. पाण्डे	वित्त एवं लेखा अधिकारी	सदस्य
7.	श्री बीरेन्द्र सिंह	सहायक प्रशासनिक अधिकारी	सदस्य
8.	श्री हूबलाल	निजी सचिव	सदस्य
9.	श्रीमती कौशल्या देवी	वरिष्ठ लिपिक	सदस्य
10.	श्रीमती शैलजा ताम्रकार	तकनीकी अधिकारी	सचिव एवं प्रभारी अधिकारी (राजभाषा)

सम्पादक मण्डल

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : डॉ. ए. अरूणाचलम
निदेशक

प्रधान सम्पादक : श्रीमती शैलजा ताम्रकार
प्रभारी अधिकारी (राजभाषा)

सम्पादक मण्डल : डॉ. ए.के. हाण्डा
डॉ. आर.पी. द्विवेदी
डॉ. आशाराम
डॉ. प्रियंका सिंह

कार्यकारी सदस्य : कौशल्या देवी

छायांकन : श्री राजेश श्रीवास्तव

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र : निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
झाँसी–ग्वालियर राष्ट्रीय राजमार्ग, झाँसी, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : +91–0510–2730214,
फैक्स : +91–0510–2730364
ई–मेल : director.cafri@icar.gov.in
वेबसाईट : http://www.cafri.res.in

इस पत्रिका के लेखों तथा कविताओं इत्यादि में दिये गये विचार रचनाकारों के हैं। सम्पादक मण्डल उनके विचारों के लिए किसी भी प्रकार का उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक : क्लासिक इण्टरप्राइजेज, झाँसी. 7007122381, 9415113108

अनुक्रमणिका

क्र.म.	आलेख	पृष्ठ संख्या
	हिन्दी दिवस 2024 पर माननीय कृषि एवं किसान कल्याण अज्ञेर ग्रामीण विकास मंत्री, भारत सरकार का संदेश	
	सचिव (डेयर) एवं महानिदेशक (भाकृअनुप) का संदेश	
	निदेशक की कलम से	
	सम्पादकीय	
1.	चंदन (*सैंटेलम एल्बम* एल.) की खेती, रोग एवं कीट प्रबंधन	1
2.	जैव उर्वरक : कृषि में उपयोग और संभावनाएँ	4
3.	वन चारा पद्धति सामाजिक एवं आर्थिक जीवन प्रणाली में उपयोग	8
4.	जल संसाधन का संरक्षण और कृषिवनीकरण की भूमिका	12
5.	धरती माँ की पुकार	13
6.	डिजीटल युग में राजभाषा हिन्दी की उपयोगिता	14
7.	जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में कृषिवानिकी की भूमिका	23
8.	खेती में पेड़ों का महत्व	25
9.	केलिगोनम पोलिगोनाइडिस या फोग मरू क्षेत्र का मेवा	29
10.	खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी मरू भारत के शुष्क और अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिकीय प्रणाली के लिए एक वरदान	31
11.	*हार्डविकिया बिनाटा* (अंजन)– अर्ध शुष्क क्षेत्र का एक मूल्यवान पेड	33
12.	उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाने वाली जंगली सब्जियाँ और उनकी औषधीय विशेषताएँ	37
13.	कृषिवानिकी को बढ़ावा देने में उद्योगों की भूमिका	40
14.	बाहरी वन – मानव स्वास्थ्य और प्रकृति के लिए वरदान	45
15.	खाद्य सुरक्षा और शुद्ध जलवायु लक्ष्य के लिए कृषिवानिकी समाधान	49
16.	अर्ध–शुष्क उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अनार की खेती का आर्थिक और वित्तीय विश्लेषण	53
17.	पेड़ों के माध्यम से भारी धातुओं (Heavy Metals) का फाइटोरेमेडिएशनः कृषिवानिकी परिप्रेक्ष्य	59
18.	चिरौंजी पौधों के विभिन्न भागों का महत्व एवं उपयोग	64
19.	भारतीय मक्खन वृक्ष (महुआ) : बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आजीविका वृक्ष	68
20.	बागवानी फसलों की बहुस्तरीय खेती : एक स्थायी कृषि समाधान	75
21.	जलवायु परिवर्तन और स्थिरता के अनुरूप कृषिवानिकी को अपनाना	83
22.	जलवायु परिवर्तन के कारण उत्तराखंड में प्रभावित सेब के बागान	87
23.	भारत में हरित आवरण (ग्रीनकवर) की गतिशीलता	90

24.	पार्किंसोनिया एक्यूलेटाः भारत के लिए अभिशाप या वरदान?	93
25.	जलवायु परिवर्तन के परिवेश में कार्बन क्रेडिट का बाजार : परिचय एवं कृषि से संम्बन्धित चुनौतियाँ	96
26.	पलाश वृक्ष से गोंद के रिसाव व दोहन पर माह एवं ऋतु का प्रभाव	103
27.	कृषि में प्लास्टिक के उपयोग का मृदा एवं पर्यावरण पर प्रभाव	105
28.	कृषिवानिकी : लचीली और टिकाऊ कृषि का भविष्य	109
29.	सहजन की वैज्ञानिक खेतीः हरित सोना, सेहत का खजाना	113
30.	कृषिवानिकी के प्रचार एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु वैदिक पर्यावरण दिवसः हरियाली अमावस्या	117
31.	आधुनिक मधुमक्खी पालन	118
32.	कृषिवानिकी हरित आवरण बढ़ाने का एक उचित एवं प्रभावशाली माध्यम	121
33.	पारिस्थितिकी तंत्र बहाली में बागवानी वानिकी	124
34.	कृषिवानिकी के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र की बहालीः स्थिरता का एक मार्ग	128
35.	21वीं सदी में जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों को कम करने में वनों के बाहर के पेड़ों का महत्व	131
36.	कृषिवानिकी में उच्च गुणवत्ता वाले पौधों के लिए पादप ऊतक संवर्धन का महत्व	137
37.	पोषण और आजीविका सुरक्षा के लिए अमरूद आधारित कृषिवानिकी	142
38.	'प्रकृति सुख'	145
39.	रबी एवं जायद ऋतु में दलहनी फसलों का अधिकाधिक उत्पादन बढ़ाने की वैज्ञानिक तकनीक	146
40.	राजभाषा गतिविधियाँ	151
41.	संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी में आयोजित कृषक मेला, प्रदर्शनी एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम	161

शिवराज सिंह चौहान
SHIVRAJ SINGH CHOUHAN
D.O. No. 163 /AM

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण और
ग्रामीण विकास मंत्री
भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली
Minister of Agriculture & Farmers Welfare and Rural Development
Government of India
Krishi Bhawan, New Delhi

संदेश

हमारा देश भारतवर्ष विभिन्न भाषाओं तथा सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने में समेटे हुए अपनी अखंडता और अनेकता में एकता के लिए विश्व के सामने एक अनुपम उदाहरण है। हमारे देश में अनेक भाषाएं और बोलियां प्रचलन में हैं। किन्तु उनमें लगभग 70% लोग हिन्दी भाषा को पढ़ते, समझते या बोलते हैं। इस प्रकार हिन्दी सभी भारतीय भाषाओं के बीच एक सम्पर्क भाषा के रूप में कार्य करती है। हिन्दी की व्यापकता और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इसके महत्वपूर्ण योगदान को ध्यान में रखकर संविधान सभा ने 14 सितम्बर, 1949 को इसे राजभाषा का दर्जा प्रदान किया तथा संविधान में इसका प्रावधान किया। स्वतंत्रता के उपरान्त धीरे-धीरे ही सही आज हिन्दी हर क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाती जा रही है।

राजभाषा हिन्दी आम लोगों की भाषा है और यही भाषा सरकार और जनमानस के बीच सेतु का काम करती है। यही भाषा सरकार के नीतिगत निर्णयों को आम लोगों तक पहुँचाती है। अतः जितना अधिक से अधिक सरकारी कामकाज जनता की भाषा में होगा, उसकी उपयोगिता और सार्थकता भी उतनी ही अधिक होगी। हम अपनी सभी भाषाओं का सम्मान करते हैं और भाषायी सौहार्द बनाए रखते हुए, हमें राजभाषा हिन्दी को सरकारी कामकाज में निरंतर बढ़ावा देना है। राजभाषा का सम्मान, कार्यान्वयन एवं उसकी प्रगति हम सभी का राष्ट्रीय एवं सांविधिक उत्तरदायित्व है। मैं समझता हूँ कि राजनीति की भाषा हिन्दी होनी चाहिए, परन्तु भाषा की राजनीति नहीं होनी चाहिए। हिन्दी केवल इसलिए महान नहीं है कि इसमें कुछ लोग कविता, लेख या अनुवाद कर लेते हैं, बल्कि यह इसलिए महान है कि वह हृदय से हृदय को जोड़ती है।

हिन्दी दिवस, 2024 के सुअवसर पर आप सभी को मेरी ओर से बहुत-बहुत बधाई व हार्दिक शुभकामनाएं। मैं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं उसके अंतर्गत आनेवाले सभी संस्थानों/क्षेत्रीय केन्द्रों/कृषि विज्ञान केन्द्रों को राजभाषा पर्व के दौरान आयोजित किए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता की कामना करता हूँ।

जय हिन्द, जय हिन्दी ।

(शिवराज सिंह चौहान)

सत्यमेव जयते
डॉ. हिमांशु पाठक
सचिव (डेयर) एवं महानिदेशक (भाकृअनुप)
Dr HIMANSHU PATHAK
SECRETARY (DARE) & DIRECTOR GENERAL (ICAR)

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE & FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI-110 001
Tel.: 23382629, 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

अपील

भारत एक कृषि प्रधान देश है और संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस कृषि प्रधान देश की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी है। राजभाषा हिन्दी तमाम सरकारी प्रयासों के बाद भी उस स्थान पर नहीं पहुँची है, जिसकी वह अधिकारिणी है। भाषा की समस्या के कारण हमारे वैज्ञानिक वर्ग और कृषक वर्ग के बीच एक खाई बनी हुई है। निःसंदेह इस खाई को पाटने या दूर करने का कार्य हिन्दी ही कर सकती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत आने वाले संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र या कृषि विज्ञान केन्द्र भारतवर्ष के कोने–कोने में सुदूर ग्राम से लेकर शहर तक फैले हुए है। चूंकि हम कृषि अनुसंधान से जुड़े है, इसलिए हमें अक्सर किसानों से रूबरू होना पड़ता है, उनकी समस्याएं सुननी पड़ती है, उस समय हमारी संपर्क भाषा हिन्दी होती है।

हमारे यहाँ राष्ट्रीय पर्व मनाए जाते हैं जैसे– स्वाधीनता दिवस, गणतंत्र दिवस इत्यादि। उन्हीं पर्वों में से एक पर्व है राजभाषा पर्व, जिसे सितम्बर माह में मनाया जाता है। राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान की तरह राजभाषा भी राष्ट्र का गौरव है। संसार के सभी स्वाधीन देश अपना आन्तरिक कामकाज अपने देश की भाषा में करते है। भारत के स्वतंत्रता सेनानियों की यह आकांक्षा रही थी कि जब देश को स्वतंत्रता प्राप्त हो तब भारत के सभी कामकाज भारतीय भाषाओं में हों। गांधी जी ने इसे जनमानस कर भाषा कहा था तो इसी हिन्दी की खड़ी बोली को अमीर खुसरो ने अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करने का माध्यम बनाया। यह हिन्दी भाषा की लोकप्रियता का प्रमाण है कि हिन्दी भाषा के इतिहास पर पहले साहित्य की रचना एक फ्रांसीसी विद्वान गर्से–द–तासी ने की थी। इतना ही नहीं, हिन्दी व दूसरी भाषाओं का विस्तृत सर्वेक्षण सर ग्रीयर्सन ने किया था।

हिन्दी हमारी राजभाषा के अलावा भारतवर्ष की संस्कृति एवं परम्परा का मूल आधार है। विविधता से भरे इस देश को हिन्दी एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। हिन्दी एक भाषा ही नहीं, बल्कि यह एक संस्कृति है, एक परम्परा है और हमें अपनी संस्कृति, अपनी परम्परा को आगे बढ़ाना है। यह तभी संभव है, जब हम अपना सम्पूर्ण कार्यालयीन कार्य हिन्दी में करें और इसके वार्षिक कार्यक्रम के सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने का पुरजोर प्रयास करें। मैं समझता हूँ कि इस दिशा में आप सभी का एकजुट योगदान मिलेगा।

मैं हिन्दी दिवस, 2024 के अवसर पर सभी को कोटिशः बधाई देता हूँ।

दिनांकः 14 अगस्त, 2024

हि. पाठक

(हिमांशु पाठक)

निदेशक की कलम से..

हमारे देश में ईमारती लकड़ी की जरुरत की लगभग 65% आपूर्ति जंगल के बाहरी क्षेत्र से होती है। इसमें कृषिवानिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषिवानिकी देश के किसानों की मूलभूत आवश्यकताओं (चारा, ईंधन, फल, औषधि, रेशे इत्यादि) की आपूर्ति, रोजगार के अवसर, पर्यावरण सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन, जलसमेट कार्यों के अतिरिक्त कृषि भूमि की सतत् उत्पादकता बनायें रखने में अत्यंत सहायक हो रही है। इसका सर्वाधिक योगदान शुष्क, अर्द्ध शुष्क एवं पर्वतीय क्षेत्रों के आधारभूत संसाधनों को बनायें रखने में देखा जा रहा है। कृषिवानिकी जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी सेवायें जैसे जल, मृदा, स्वास्थ्य, जैवविविधता संरक्षण में सहायता के साथ– साथ मनुष्यों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है। इन सबके अतिरिक्त कृषिवानिकी ही एक मात्र विकल्प है, जो कि देश के वर्तमान लगभग एक चौथाई से भी कम वन आवरण को 33 प्रतिशत जो कि पारिस्थितिकी संतुलन बनाने के लिए आवश्यक है तथा वृक्ष आवरण बढ़ाने में सहायक होगी। सतत कृषि विकास हेतु राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति–2014 के व्यवहारिक कार्यान्वयन हेतु जोर दिया गया है। आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ''हर मेड़ पर पेड़'' का नारा कृषिवानिकी के प्रसार एवं प्रचार में बहुत ही महत्वपूर्ण है। देश के आदरणीय प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा 5 जून, 2024 को विश्व पर्यावरण दिवस के शुभ अवसर पर **"एक पेड़ माँ के नाम"** अभियान की, शुरुआत की गयी। इस अभियान को आगे बढ़ाते हुये केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी ने अम्मा (AMMA– एग्रोफोरोस्ट्री फॉर मिटीगेटिंग माल न्यूट्रीशन एण्ड एडेप्टेशन) की शुरुआत 1 अगस्त, 2024 को किया गया एवं पापा (PAPA– प्रोमोटिंग एग्रोफॉरेस्ट्री थ्रू प्लाटेशन इन एग्रीकल्चर लैंड) को किसानों के खेतों में बढ़ावा दिया जा रहा है।

केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी, राजभाषा के सतत् विकास, प्रचार–प्रसार एवं सरकारी कामकाज में ज्यादा से ज्यादा उपयोग हेतु कृत संकल्पित है। इसी प्रयास के तहत पिछले ग्यारह वर्षों से लगातार "कृषिवानिकी आलोक" पत्रिका का प्रकाशन इस संस्थान द्वारा किया जा रहा है। सबसे खुशी की बात यह है कि कृषिवानिकी आलोक के सभी पूर्व अंकों को विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी संगठनों एवं किसान समूहों ने सराहा है। इसी को ध्यान में रखते हुए "कृषिवानिकी आलोक" तेरहवाँ अंक–2024 आपके सामने रखा गया है जिसमें कृषिवानिकी, पर्यावरण संबंधित एवं अन्य समसामयिक लेख समाहित किये गये हैं। पत्रिका के भावी प्रकाशनों के लिए आपके बहुमूल्य सुझाव आमंत्रित हैं। पत्रिका के सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यों को बधाई देता हूँ, जिन्होंने अपने कठिन परिश्रम से इसे बहुउपयोगी बनाया है।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि संस्थान के सभी सदस्यों के सहयोग से राजभाषा कार्यान्वयन का कार्य निर्बाध गति से अग्रसर होता रहेगा।

(ए. अरूणाचलम)
निदेशक

सम्पादकीय

संस्थान द्वारा प्रकाशित "कृषिवानिकी आलोक" तेरहवाँ अंक–2024 आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए बहुत खुशी की अनुभूति हो रही है। हमें आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि गत वर्षों की भांति, यह अंक भी अपनी उपयोगिता साबित करने में अपने आपको सफल पायेगा। कृषि विकास को गति देने हेतु हमारा यह पुनीत कर्तव्य बनता है कि कृषि विज्ञान में नई–नई तकनीकियों को किसानों तक पहुँचाने के लिए आम आदमी की भाषा को उपयोग में लाया जाए, तभी तकनीक का प्रचार–प्रसार हो पायेगा एवं किसान लाभान्वित होंगे। इसी परिकल्पना के तहत हमारे संस्थान पर चल रहे कृषिवानिकी अनुसंधान कार्य नयी उपलब्धियों को किसानों तक उन्हीं की भाषा में पहुँचानें हेतु इस पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। जिस प्रकार "कृषिवानिकी आलोक" के पिछले अंकों को उपयोगिता के आधार पर विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों तथा किसानों द्वारा सराहा गया, तेरहवाँ अंक के प्रकाशन में इसने एक उत्प्रेरक के रुप में कार्य किया है।

सम्पादक मण्डल, "कृषिवानिकी आलोक" के तेरहवाँ अंक–2024 के प्रकाशन के लिए संस्थान के निदेशक डॉ. अरुणाचलम का विशेष आभार व्यक्त करता है। निदेशक महोदय के दिशा–निर्देश, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के फलस्वरुप यह अंक आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत हो पा रहा है। हमारा आभार वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोध छात्र–छात्राओं तथा लेखकों को भी है जिन्होंने अपने विचार, वैज्ञानिक लेख, कविता आदि के माध्यम से रखा है जिसके कारण यह पत्रिका ज्यादा लोगों के लिए उपयोगी साबित होगी।

हम पत्रिका के प्रकाशन में अमूल्य सहयोग देने के लिए सम्पादक मण्डल, वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का विशेष आभार व्यक्त करते हैं। अंत में लेखकों एवं पाठकों से निवेदन करते हैं कि, इसी तरह का सहयोग एवं प्रेम बनाये रखें ताकि भविष्य में भी यह पत्रिका समय से प्रकाशित हो पाये।

सम्पादक गण

चंदन (*सैंटेलम एल्बम* एल.) की खेती, रोग एवं कीट प्रबंधन

आकाश यादव, वेंकटेश वाई. एन. एवं आशाज्योति एम.
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

यह एक उष्ण कटिबंधीय जलवायु का पौधा है। भारत में इसे "चंदन" और "श्रीगंधा" भी कहा जाता है। चंदन सैंटेलेसी और जीनस सैंटलम का सदस्य है। चंदन को होस्टोरिया प्लांट भी कहते है। इसका सांस्कृतिक महत्व और औषधीय उपयोग भी है। चंदन के तेल का उपयोग सौंदर्य प्रसाधन, दवा, अरोमाथेरेपी, साबुन उद्योग और इत्र बनाने में किया जाता है। भारत में चंदन ज्यादातर आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में उगाया जाता है।

सामान्य तथा स्थानीय नाम

चंदन, संताल्लुम, एल्बम, शिरिगंधा, अनिंदिता, अरिष्ट फलम, भद्रश्रया, सर्पवास, चंद्रकांता, चंद्रहास, गंधसारा, थिलापर्णा, गंधपु चक्का (तेलुगु), कैंटाना (तमिल), रक्ताकंदना (मलयालम), श्रीगंधा (कन्नड़), कैंडाना (मराठी और बंगाली), कैंडाना (गुजराती), काना (पंजाबी)।

उपर्युक्त जलवायु

चंदन का पौधा शुष्क जलवायु वाला पौधा है। इसे गर्म और आर्द्र जलवायु परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। इसके पौधों को अधिकतम 500 से 625 मिमी. बारिश की आवश्यकता होती है। चंदन के पेड़ की वृद्धि के लिए आदर्श तापमान 12 से 35 डिग्री सेल्सियस के बीच है।

भूमि का चयन

चंदन की खेती के लिए लाल बलुई, चिकनी दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है। भूमि का पी.एच. मान 7 से 8.5 के मध्य होना चाहिए।

उन्नत किस्में

भारतीय चंदन, ऑस्ट्रेलियाई चंदन ज्यादातर उगाए जाते हैं, हालांकि दुनिया भर में इसकी 15 से अधिक किस्में उपलब्ध हैं।

लाल चंदन – इस किस्म के चंदन को रक्त चंदन के नाम से भी जाना जाता है। चंदन की यह किस्म मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्यों में पाई जाती है।

सफेद चंदन – इस किस्म के चंदन की लकड़ी का रंग सफ़ेद होता है, इसे मुख्य रूप से व्यापारिक इस्तेमाल के लिए उगाया जाता है। इसे औषधि, साबुन, इत्र और चंदन तेल जैसी महंगी चीजों को बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

खेत की तैयारी

इसके लिए सबसे पहले खेत की अच्छी तरह से गहरी जुताई कर पानी लगाकर पलेवा करके रोटावेटर से दो से तीन तिरछी जुताई कर दी जाती हैं। इसके बाद खेत में पौधों की रोपाई के लिए गड्ढों को तैयार कर लिया जाता है।

खाद और उर्वरक

चंदन का पौधा पोषक तत्व को प्राप्त करने के लिए दूसरे पौधों पर निर्भर रहता है। इसलिए इसके पौधों को खास उवर्रक की भी आवश्यकता नहीं होती है। होस्ट प्लांट के रूप में नीम, केजुरिना, अमलतास, सीताफल, अमरुद, सहजन आदि पौधे महत्वपूर्ण है। अच्छी तरह से सड़ी हुई 5 से 10 किलोग्राम गोबर की मात्रा को मिट्टी में अच्छे से मिलाकर गड्ढो में भरा जाता हैं। यह खाद चंदन के पौधों को वर्ष में दो बार अवश्य देना चाहिए।

रोपाई

चंदन के पौधों की रोपाई बीज और पौध दोनों ही रूप में की जाती है। चंदन के पौधों की रोपाई के लिए पौध का इस्तेमाल करना सबसे अच्छा होता है। पौधे से पौधे की दूरी 10 फीट होनी चाहिए।

सिंचाई

गर्मियों के मौसम में दो से तीन दिन के अंतराल में सिंचाई करना चाहिए। इसके अलावा सर्दियों के मौसम में सप्ताह में एक बार पौधों की सिंचाई करना चाहिए।

सहायक फसलें

चंदन के पौधों को तैयार होने में 20 से 25 वर्ष का समय लग जाता है। इस दौरान चंदन के पौधों के मध्य दलहन या बागबानी फसलों को लगा सकते है। चंदन की खेती जिस क्षेत्र में की जाती हैं वहाँ पर कुछ साथी पौधों को भी लगाना आवश्यक होता है। क्योंकि ये चंदन के विकास में सहायक होते हैं। ये साथी पौधे कैजुराइना, देसी नीम, मीठी नीम एवं सहजन के पौधे आदि हो सकते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

खेत में खरपतवार दिखाई देने पर उसकी नियमित अंतराल पर निराई और गुड़ाई कर निकाल देना चाहिए।

उपज

चंदन का पेड़ 20–25 वर्ष में कटाई के योग्य हो जाता है। चंदन के पेड़ की जड़े बहुत खुशबूदार होती है। इसलिए इसके पेड़ को काटने की बजाय जड़ सहित उखाड़ लिया जाता है। लाल चंदन का प्रत्येक पेड़ 500 किलोग्राम 10 साल की उपज देता है।

चंदन के प्रमुख रोग, कीट एवं उनका प्रबन्धन

चंदन का स्पाइक रोग

यह फाइटोप्लाज्मा के कारण होता है, इसमें पौधे की पत्तियाँ और शाखाएँ विकृत हो जाती हैं और बिना फूल और फल वाले पौधें झाड़ीनुमा दिखायी देते हैं तथा पौधे कम उम्र में 1 या 2 वर्ष के बाद मर जाते हैं।

प्रबंधन

- संक्रमित पौधे के ट्रंक पर टेट्रासाइक्लिन 2.8 ग्राम/पेड़ के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।
- इस रोग के वाहक कीट लीफ हॉपर को नियंत्रित करने के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल का स्प्रे करना चाहिए।

चंदन का पाउडरी मिल्ड्यू रोग

यह स्यूडोइडियम सैंटैलेसीरम फंगस द्वारा होता है। इस रोग में पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसा दिखाई देता है और पत्तियाँ छोटी तथा शाखाओं की बृद्धि कम हो जाती है।

प्रबंधन

- एज़ोक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत एससी को 1 मिली/लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करना चाहिए।
- नीम तेल 2 मिली/लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करना चाहिए।

चंदन के प्रमुख कीट

लाल तना छेदक

इस कीट का लार्वा पत्ती या तने और शाखा के अक्ष से प्रवेश करके, युवा पेड़ों की मुलायम लकड़ी में छेद करके नुकसान पहुँचाता है।

प्रबंधन

- छिद्रों के माध्यम से 0.1–0.25 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या डाइमेथोएट या 0.2 प्रतिशत पैराडाइक्लोरोबेंजीन जैसे कीटनाशकों को इंजेक्ट करना चाहिए और छिद्र को मोम या मिट्टी से प्लास्टर करना चाहिए।

छाल खाने वाला कैटरपिलर

यह कीट मई–जुलाई के दौरान अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। इसका कैटरपिलर शाखाओं में सुरंगे बनाकर पौधे को नुकसान पहुँचता और युवा पौधे में डाईबैक के लक्षण दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

- इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफोस 0.1 प्रतिशत या क्यूनॉलफॉस 0.1 प्रतिशत दवा का छिद्रों में प्रयोग करना चाहिए।

दीमक

दीमक ऐसा कीट है, जो शुरुआत में जड़ों से उपर की ओर जाता है बाद में छाल को खा जाती हैं।

प्रबंधन

- पहले से ही जिस मिट्टी में ज्यादा दीमक हो तो 2 प्रतिशत क्लोरोपायरीफास 20 ई.सी. का उपयोग करना चाहिये।

आय का अच्छा साधन

वर्तमान में प्रथम श्रेणी के भारतीय चंदन (हर्टवुड)की कीमत सरकारी दर के अनुसार 7,500 रुपये प्रति किलोग्राम और तेल की कीमत लगभग 1,50,000 रुपये प्रति किलोग्राम है। घरेलू बाजार में चंदन की कीमत 16,500 रुपये प्रति किलोग्राम है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी कीमत घरेलू बाजार से लगभग 15 से 20 प्रतिशत अधिक है। चंदन की प्रति हेक्टेयर खेती (15 वर्ष के फसल चक्र के लिए) की लागत लगभग 30 लाख रुपये आती है। लेकिन इस दौरान चंदन के पौधों के पेड़ बनने के बाद किसान आसानी से 1.2 करोड़ रुपये से 1.5 करोड़ रुपये तक मुनाफा कमा सकता है।

भाकृअनुप
ICAR

Agrisearch with a human touch
केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
केकृवाअनुसं
CAFRI
''कृषिवानिकीः एक जीवन दायिनी''

जैव उर्वरक : कृषि में उपयोग और संभावनाएँ

आकाश यादव, महेशा एच.एस., वेंकटेश वाई.एन., आशाज्योति एम., प्रवीण कुमार यादव एवं आयुष यादव
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

जैव उर्वरक कृषिवानिकी प्रणालियों की उत्पादकता और स्थिरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैव उर्वरक "एक या अधिक सूक्ष्मजीवों से युक्त तैयार प्राकृतिक उत्पाद हैं। जिनमें जीवित सूक्ष्मजीव होते हैं। जो पौधे को प्राथमिक पोषक तत्वों की आपूर्ति या उपलब्धता बढ़ाकर विकास को बढ़ावा देते हैं।" जैव उर्वरक अपने लाभदायक गतिविधियों जैसे नाइट्रोजन स्थिरीकरण, प्रमुख पोषक तत्वों का संकलन एवं अंतर्ग्रहण, शाखा एवं जड़ के विकास में सहायक, रोग नियंत्रण, फाइटोहोर्मोन का उत्पादन, पर्यावरणीय तनाव से राहत, बेहतर मृदा संरचना एवं पौधों के विकास में सहायता इत्यादि के कारण कृषिवानिकी में अधिक योगदान प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। अधिकांश सहजीवी बैक्टीरिया होस्ट पौधे के अंतरकोशिकीय स्थानों में रहते हैं। लेकिन कुछ बैक्टीरिया ऐसे भी होते हैं जो अपने होस्ट के साथ वास्तव में पारस्परिक संपर्क बनाने और पौधों की कोशिकाओं में प्रवेश करने में सक्षम होते हैं। सामान्यतः कृषिवानिकी में प्रयुक्त सूक्ष्मजीवों में राइजोबियम, बैसिलस, स्यूडोमोनास, स्ट्रेप्टोमाईसीज एवं अन्य कई सूक्ष्मजीव इत्यादि प्रजातियाँ शामिल हैं।

पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले जैव उर्वरकों की क्रियाविधि

जैव उर्वरक निम्न प्रकार की क्रियाविधि के माध्यम से पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देता हैं: (1) पदार्थों का संश्लेषण जिन्हें पौधों द्वारा सीधे ग्रहण किया जा सकता है, (2) पोषक तत्वों का एकत्रीकरण, (3) पौधों में तनाव के प्रति प्रतिरोध और (4) पौधों की बीमारियों की रोकथाम।

पौधों में जैव उर्वरकों की भूमिका

नाइट्रोजन स्थिरीकरण : वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया नाइट्रोजीनेस नामक एंजाइम द्वारा उत्प्रेरित होती है, जो बैक्टीरिया के विभिन्न समूहों में पाया जाता है। राइजोबियम, एज़ोटोबैक्टर और एज़ोस्पिरिलम जैसे जैव उर्वरक वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं, इसे ऐसे रूप में परिवर्तित करते हैं जिसे पौधे अवशोषित और उपयोग कर सकते हैं। यह कृषि प्रणालियों में विशेष रूप से फायदेमंद है जहाँ नाइट्रोजन की माँग वाली फसलें और पेड़ अंतःफसलित होते हैं। मुक्त.जीवित नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवों के कुछ उदाहरण एज़ोस्पिरिलम और एज़ोटोबैक्टर, जो चावल, गेहूं, जौ, और जई के लिए जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है और फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्लूकोनासेटोबैक्टर, एज़ोस्पिरिलम और हर्बास्पिरिलम गन्ने के एंडोफाइट्स हैं और इसमे नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देते हैं। इसके अलावा, कुछ डाईएजोट्राफिक्स बैक्टीरिया जड़ गांठों के निर्माण के माध्यम से कुछ पौधों के साथ वास्तव में पारस्परिक सहजीवन स्थापित करते हैं। ये सहजीवन राइजोबिया और फलीदार पौधों के बीच पाए जाते हैं।

फॉस्फोरस घुलनशीलता : फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (पीएसबी) मिट्टी में फॉस्फोरस के बंधे हुए रूपों को घुलनशील करके पौधों के लिए फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाते हैं। फास्फोरस विभिन्न कार्बनिक एवं अकार्बनिक यौगिकों के रूप में मिलता है, परन्तु पौधे इस फास्फोरस का उपयोग नहीं कर पाते हैं। पौधों द्वारा फास्फोरस का अवशोषण मुख्य रूप से प्राथमिक ओर्थोफास्फेट आयरन के रूप में होता है। फास्फेट विलयकारी सूक्ष्मजीवों से निर्मित जैव उर्वरक वातावरण की फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलकर पौधों तक पहुँचाते हैं। ये सूक्ष्मजीव मुख्यतः विषमपोषी होते हैं। जीवाणुओं

तालिका 1: पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया की क्रियाविधि

क्र.सं.	पी.जी.पी.आर. *राइजोबैक्टीरिया*	पी.जी.पी.आर. क्रियाविधि	फसलें
1	*एजोटोबैक्टर*	नाइट्रोजन स्थिरीकरण	जौ, गेहूं, जई, चावल, सूरजमुखी, मक्का, चुकन्दर, तम्बाकू, चाय, कॉफ़ी और नारियल
2	*एजोस्पिरिलम*	नाइट्रोजन स्थिरीकरण	अनाज, चावल और गन्ना
3	*बैसिलस*	पोटेशियम घुलनशीलता	गेहूं, सूडान घास, बैंगन, काली मिर्च और ककड़ी
4	*बैसिलस*	जिबरेलिन संश्लेषण	काली मिर्च
5	*क्राइसोबैक्टीरियम*	साइडरोफोर उत्पादन	टमाटर
6	*माइकोबैक्टीरियम*	पादप तनाव के प्रति प्रतिरोध	मक्का
7	*पैनीबैसिलस*	पोटेशियम घुलनशीलता	काली मिर्च
8	*स्यूडोमोनास*	एंटीबायोटिक उत्पादन	गेहूँ
9	*राइजोबियम*	नाइट्रोजन स्थिरीकरण	चावल और दलहनी फसल
10	*राइजोबियम*	इंडोल एसिटिक एसिड संश्लेषण	काली मिर्च, टमाटर, सलाद और गाजर
11	*सिनोराइजोबियम*	काईटिनेज़ और बीटा.ग्लूकेनेज़ उत्पादन	अरहर

चित्र 1: जीवाणु जैव उर्वरकों की क्रियाविधि

में मुख्यतः माइक्रोकोकस, स्यूडोमोनास, बैसिलस और फ्लेवोबैक्टीरियम तथा स्ट्रेप्टोमाइसिस विलयकारी के रूप में पाए जाते हैं। इन जैव उर्वरकों से मृदा उपचार तथा बीजोपचार करने पर यह मिट्टी में मौजूदा अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील फास्फेट में बदलकर पौधों की जड़ों तक पहुँचता है, जो अवशोषित कर लिया जाता है। इन जैव उर्वरकों का प्रयोग मृदा उपचार, बीज उपचार, कंद उपचार तथा रोपाई के लिए किया जाता है। राइजोबियम लेगुमिनोसरम उपभेद पीइटीपी01 और राइजोबियम लेगुमिनोसेरम उपभेद टीपीवी08, फास्फेट विलयकारी तथा काली मिर्च और टमाटर के पौधों के लिए पीजीपीआर हैं।

पोटेशियम घुलनशीलता : पोटेशियम पौधों की वृद्धि के लिए तीसरा आवश्यक पोषक तत्व है। कुछ राइजोबैक्टीरिया अघुलनशील पोटेशियम रूपों को घुलनशील बनाने में सक्षम हैं। बैसिलस एडाफिकस को गेहूं में पोटेशियम की मात्रा बढ़ाने के लिए और पैनीबैसिलस ग्लुकेनोलिटिकस को काली मिर्च के सूखे वजन को बढ़ाने में सक्षम पाया गया है। सूडान घास को पोटेशियम घुलनशील जीवाणु बैसिलस म्यूसिलगिनोसस के साथ उपचारित करने पर बायोमास की पैदावार अधिक होती है।

विटामिन, अमीनो एसिड और इंडोल एसिटिक एसिड जैसे हार्मोन का उत्पादन : जैव उर्वरक विकास को बढ़ावा देने वाले पदार्थ जैसे विटामिन, अमीनो एसिड और इंडोल एसिटिक एसिड (आईएए) जैसे हार्मोन का उत्पादन करते हैं, जो जड़ वृद्धि और समग्र पौधे के विकास को उत्तेजित करते हैं। पादप हार्मोन पौधों की वृद्धि और विकास प्रक्रियाओं में शामिल कार्बनिक अणु होते हैं। इण्डोल–3–एसिटिक एसिड पौधों में सबसे अच्छा ज्ञात और सबसे सक्रिय ऑक्सिन है। एज़ाडिरेक्टा इंडिका से अलग किए गए एंडोफाइटिक स्ट्रेप्टोमी, इण्डोल एसिटिक एसिड का उत्पादन करते हैं और प्लांटग्रोथ प्रमोटर होते हैं, साइटोकाईनिन, संवहनी कैम्बियम संवेदनशीलता और रूट एपिकल प्रभुत्व को बढ़ावा देते हैं। एज़ोटोबैक्टर क्रोकोकम और बैसिलस मेगेटेरियम उपभेद ककड़ी में साइटोकिनिन का उत्पादन करते हैं और विकास को बढ़ावा देते हैं। जिबरेलिन बीज के अंकुरण, तने और पत्ती के विकास, पुष्प प्रेरण और फूल और फलों के विकास में योगदान देते हैं। बैसिलस सेरेस स्ट्रेन लाल मिर्च के पौधों में जिबरेलिन का उत्पादन करके पौधे की वृद्धि को बढ़ाता है। एथिलीन फलों का पकना, फूलों का उद्घाटन, बीज अंकुरण, माध्यमिक जड़ गठन को बढ़ावा देता है। माइक्रोबियल विटामिन का उत्पादन फसल की पैदावार को बढ़ाकर, पौधे की वृद्धि को प्रभावित करता है।

सिडेरोफोर्स उत्पादन : सिडेरोफोर्स छोटे कार्बनिक अणु होते हैं, जो फसलों को आयरन की आपूर्ति करके एंटीबायोसिस करते हैं। आयरन पौधों के विकास और वृद्धि के लिए एक आवश्यक खनिज पोषक तत्व है और श्वसन और प्रकाश संश्लेषण जैसी चयापचय घटनाओं में उपयोग किए जाने वाले प्रोटीन सहकारक के रूप में आवश्यक है। सिडेरोफोर्स उत्पादक बैसिलस प्रभेद का अनुप्रयोग मूंगफली के पौधे की वृद्धि को बढ़ाता है। मक्के के पौधों में स्यूडोमोनास कोरेन्सिस द्वारा साइडरोफोर और एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों के उत्पादन द्वारा पौधों के रोगजनकों के विकास को रोक दिया जाता है। साइडरोफोर उत्पादक फाइलोबैक्टीरियम स्ट्रेन स्ट्रॉबेरी की वृद्धि और गुणवत्ता को बढ़ावा देता है।

पौधे में अजैविक तनाव का प्रतिरोध : बैक्टीरियल सूक्ष्म जीव सिर्फ रोग कारक जीवों से ही नहीं अपितु पौधों में अजैविक तनाव, जो सूखा, जल जमाव, अत्यधिक तापमान, लवणता और ऑक्सीडेटिव तनाव जैसी स्थितियों से भी पौधे की रक्षा करते हैं। स्यूडोमोनास, बैसिलस, पेनीबैसिलस अदि बैक्टीरिया पौधे में जल की उचित मात्रा तथा कुछ 'ओस्मोप्रोटेक्टेंट' का निमार्ण करते हैं जो पौधे को सूखे, लवणता और दूसरे अजैविक अवसादों में जीवित रखने में सहायक होते हैं। कुछ जीवाणु पौधों की जड़ों की सतह पर 'बायोफिल्म' का निर्माण करके नमी को बनाये रखते हैं। स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस एमएसपी 393 तटीय पारिस्थितिकी तंत्र की लवणीय मिट्टी में उगाई जाने वाली कई फसलों के लिए पीजीपीआर के रूप में कार्य करता है। पैनीबैसिलस कैलीजेन्स, बैसिलस पॉलीमीक्सा और माइकोबैक्टीरियम फ़्ली के उपभेद कैल्सीसोल का उत्पादन करते हैं और उच्च तापमान की स्थिति के साथ–साथ लवणता के तहत मक्के की वृद्धि और पोषक तत्व ग्रहण में सुधार करते हैं।

पौध संरक्षण : कुछ जैव उर्वरक एंटीबायोटिक्स का उत्पादन करते हैं जो पौधों को मिट्टी से पैदा होने वाले रोगजनकों और बीमारियों से बचाते हैं। ये बैक्टीरिया रोगज़नक़ों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे रोग उत्पन्न करने की उनकी क्षमता कम हो जाती है। कुछ पीजीपीआर एंटीबायोटिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, जो कुछ पौधों के रोगजनकों के विकास को रोकते हैं। अधिकांश बैसिलस प्रजातियाँ एंटीबायोटिक्स का उत्पादन करती हैं जो ग्राम–पॉजिटिव और ग्राम–नेगेटिव बैक्टीरिया के साथ–साथ कई रोगजनक कवक के खिलाफ सक्रिय हैं। बैसिलस सरेउस अल्फाल्फा डैम्पिंग ऑफ के जैव नियंत्रण में योगदान देता है। काईटिनेज और बीटा ग्लूकेन का उत्पादन करने वाले बैक्टीरिया कवक के विकास को रोकते हैं। सिनोराइजोबियम फ्रैडी और स्यूडोमोनास फ्लूरोसेंस काईटिनेज और बीटा ग्लूकेनेज का उत्पादन करते हैं और फ्यूजेरियम उडुम द्वारा उत्पादित फ्यूजेरियम विल्ट को नियंत्रित करते हैं।

कुछ राइजोबैक्टीरिया फसल के कुछ कीटों के खिलाफ जहरीले गुणों वाले प्रोटीन को संश्लेषित करते हैं। बैसिलस थुरिंजिएंसिस उपभेद का उपयोग वानिकी में जिप्सी मोथ कीट को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

पर्यावरणीय लाभ : जैव उर्वरकों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है, पर्यावरण प्रदूषण और उनके उत्पादन और अनुप्रयोग से जुड़े कार्बन फुटप्रिंट कम हो जाते हैं। वे स्थायी भूमि प्रबंधन प्रथाओं को बढ़ावा देकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में योगदान देते हैं।

आर्थिक लाभ : जैव उर्वरक कृषिवानिकी प्रणालियों में समग्र इनपुट लागत को कम करते हैं और रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम महंगे होते हैं, जो छोटे स्तर के अधिक संसाधन प्रदान कर गरीब किसानों के लिए लागत प्रभावी समाधान प्रदान करते हैं।

कृषिवानिकी प्रणालियों के साथ अनुकूलता : जैव उर्वरक कृषिवानिकी के सिद्धांतों के अनुकूल हैं, जिसका उद्देश्य जैव विविधता, मिट्टी के स्वास्थ्य और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए पेड़ों और झाड़ियों को कृषि परिदृश्य में एकीकृत करना है। पेड़ों और जैव उर्वरकों के बीच सहजीवी संबंध पोषक तत्वों के चक्रण और मिट्टी की उर्वरता में सुधार कर सकते हैं, जिससे पेड़ों और साथ में उगाई जाने वाली फसलों दोनों को लाभ प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

70 वर्ष पहले कृषि में हरित क्रांति ने दुनिया भर में कृषि उत्पादन में वृद्धि की, जिससे लगभग एक अरब लोगों को भुखमरी और कुपोषण से बचाया गया, और इसकी नींव अन्य प्रगति के साथ–साथ रासायनिक उर्वरकों के विकास पर रखी गई थी। रासायनिक उर्वरक मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डालते है। इसलिए एक अधिक कुशल और टिकाऊ कृषि का विकास आज मानव जाति के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। कृषि प्रणालियों में जैव उर्वरकों का उपयोग पर्यावरणीय स्थिरता और आर्थिक व्यवहार्यता को बढ़ावा देते हुए मिट्टी की उर्वरता बढ़ाकर, फाइटोहार्मोन का उत्पादन करके तनाव प्रतिरोध को प्रेरित करके, पौधों की बीमारियों को रोककर पौधों का वृद्धि को बढ़ावा देते है। इस प्रकार जैव उर्वरकों का उपयोग टिकाऊ कृषि तथा खाद्यान्न सम्बंधी विश्वव्यापी आवश्यकताओं को पूरा करने का एक पर्यावरण अनुकूल तरीका है।

Agrisearch with a human touch

केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान

"लकड़ी, चारा, फल और अन्न – कृषिवानिकी है जीवन"

वन चारा पद्धति सामाजिक एवं आर्थिक जीवन प्रणाली में उपयोग

प्रवीण कुमार यादव[1], शशिकुमार पी.[1],ज्योत्सना श्रीवास्तव[2], अभिनव सिंह[3], कृष्ण कुमार यादव[1]एवं आकाश यादव[1]
[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003
[2]सी.एस.आई.आर.–केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ
[3]चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

वन चारा पद्धति, जिसे आमतौर पर एग्रोफॉरेस्ट्री के रूप में जाना जाता है, एक ऐसी प्रणाली है जिसमें कृषि और वानिकी को एकीकृत किया जाता है। यह पद्धति न केवल पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में सहायक है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक जीवन प्रणाली को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। इस लेख में, हम वन चारा पद्धति के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करेंगे, जिसमें इसकी परिभाषा, प्रकार, लाभ, चुनौतियाँ, और इसके सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव शामिल हैं।

1. वन चारा पद्धति का परिचय

वन चारा पद्धति एक पुरानी और पारंपरिक कृषि पद्धति है जो दुनिया के कई हिस्सों में उपयोग की जाती है। यह पद्धति कृषि भूमि पर वृक्षों और झाड़ियों के साथ–साथ फसलों और मवेशियों के मिश्रण को शामिल करती है। इसके मुख्य उद्देश्यों में मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाना, जल संरक्षण, जैव विविधता की सुरक्षा, और किसानों की आजीविका में सुधार शामिल हैं।

2. वन चारा पद्धति के प्रकार

वन चारा पद्धति के विभिन्न प्रकार हैं, जिनका चयन क्षेत्र की आवश्यकताओं और जलवायु के आधार पर किया जाता है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं

2.1 एग्रोफॉरेस्ट्री सिस्टम

यह प्रणाली कृषि और वानिकी को एकीकृत करती है। इसमें पेड़, झाड़ियाँ, और फसलें एक साथ उगाई जाती हैं। इस प्रणाली के अंतर्गत निम्नलिखित उप–प्रकार आते हैं

एग्रोसिल्वोपास्चरल : इस प्रणाली में पेड़, फसलें, और मवेशी एक साथ पाले जाते हैं।

सिल्वोपास्चरल : इसमें पेड़ और मवेशी पाले जाते हैं।

एग्रोसिल्वल : इसमें पेड़ और फसलें एक साथ उगाई जाती हैं।

2.2 होमगार्डन

होमगार्डन प्रणाली में छोटे क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की फसलें, पेड़–पौधे, और पशु पाले जाते हैं। यह प्रणाली छोटे किसानों के लिए अधिक लाभकारी होती है।

2.3 राइपेरियन बफर

यह प्रणाली जल स्रोतों के किनारे पर वृक्षारोपण और फसल उगाने की पद्धति है, जो जल संरक्षण और मृदा संरक्षण में सहायक होती है।

2.4 शेल्टर बेल्ट

यह प्रणाली हवाओं से फसलों और मवेशियों की सुरक्षा के लिए उपयोग की जाती है। इसमें खेतों के किनारों पर वृक्षारोपण किया जाता है।

3. वन चारा पद्धति के लाभ

वन चारा पद्धति के कई सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय लाभ हैं

3.1 सामाजिक लाभ

आजीविका में सुधारः यह पद्धति ग्रामीण समुदायों के लिए आजीविका के कई स्रोत प्रदान करती है।

समुदाय की सहभागिताः यह पद्धति समुदाय के सदस्यों को एक साथ काम करने और संसाधनों को साझा करने का अवसर प्रदान करती है।

3.2 आर्थिक लाभ

अधिक आयः विभिन्न प्रकार की फसलों और पशुधन के उत्पादन से किसानों को अधिक आय प्राप्त होती है।

जोखिम में कमीः विविध कृषि पद्धतियों के कारण किसानों को एक ही फसल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, जिससे जोखिम कम होता है।

3.3 पर्यावरणीय लाभ

मृदा संरक्षण : वृक्षों और झाड़ियों के कारण मृदा क्षरण में कमी आती है।

जल संरक्षण : यह पद्धति जल संचयन और जल संरक्षण में सहायक होती है।

जैव विविधता : विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों और जीव–जंतुओं के कारण जैव विविधता में वृद्धि होती है।

4. वन चारा पद्धति की चुनौतियाँ

वन चारा पद्धति के कई लाभ हैं, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ भी हैं

जागरूकता की कमी : कई क्षेत्रों में किसानों में इस पद्धति के बारे में जागरूकता की कमी है।

प्रारंभिक लागत : इस पद्धति को शुरू करने में प्रारंभिक लागत अधिक हो सकती है।

तकनीकी ज्ञान की कमी : किसानों को इस पद्धति के तकनीकी पहलुओं के बारे में ज्ञान की कमी हो सकती है।

नीति और समर्थन : सरकार की नीतियों और समर्थन की कमी भी इस पद्धति के कार्यान्वयन में बाधा बन सकती है।

5. वन चारा पद्धति का सामाजिक प्रभाव

वन चारा पद्धति का ग्रामीण समुदायों पर महत्वपूर्ण सामाजिक प्रभाव पड़ता है

5.1 आजीविका का स्रोत

वन चारा पद्धति ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के लिए आजीविका के कई स्रोत प्रदान करती है। विभिन्न प्रकार की फसलों और पशुधन के उत्पादन से किसानों को अधिक आय प्राप्त होती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

5.2 महिला सशक्तिकरण

इस पद्धति में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। महिलाएँ घर के आस–पास के होमगार्डन में फसल उगाने और पशुधन पालने में सक्रिय भूमिका निभाती हैं इससे उनके आर्थिक सशक्तिकरण में मदद मिलती है।

5.3 सामुदायिक सहभागिता

वन चारा पद्धति सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देती है। इसमें समुदाय के सदस्य एक साथ काम करते हैं, संसाधनों को साझा करते हैं और एक–दूसरे की मदद करते हैं। इससे सामाजिक बंधन मजबूत होते हैं और सामुदायिक विकास होता है।

5.4 पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण

यह पद्धति पारंपरिक कृषि ज्ञान और तकनीकों को संरक्षित करने में सहायक होती है। इसमें किसानों को अपनी पारंपरिक विधियों का उपयोग करने और उन्हें अगली पीढ़ी को सिखाने का अवसर मिलता है।

6. वन चारा पद्धति का आर्थिक प्रभाव

वन चारा पद्धति का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है

6.1 अधिक आय

इस पद्धति के तहत विभिन्न प्रकार की फसलों और पशुधन के उत्पादन से किसानों को अधिक आय प्राप्त होती है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और वे अपने परिवार की बेहतर देखभाल कर सकते हैं।

6.2 खाद्य सुरक्षा

वन चारा पद्धति से खाद्य सुरक्षा में सुधार होता है। विभिन्न प्रकार की फसलों और पशुधन के उत्पादन से किसानों को पोषक आहार मिलता है, जिससे उनका स्वास्थ्य बेहतर रहता है।

6.3 रोजगार के अवसर

इस पद्धति के तहत अधिक श्रम की आवश्यकता होती है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। इससे बेरोजगारी की समस्या में कमी आती है और ग्रामीण विकास को बढ़ावा मिलता है।

6.4 जोखिम में कमी

वन चारा पद्धति में विविध कृषि पद्धतियों के कारण किसानों को एक ही फसल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। इससे प्राकृतिक आपदाओं या बाजार में मंदी के समय उनका जोखिम कम होता है।

7. वन चारा पद्धति का पर्यावरणीय प्रभाव

वन चारा पद्धति का पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है

7.1 मृदा संरक्षण

वृक्षों और झाड़ियों के कारण मृदा क्षरण में कमी आती है। उनकी जड़ें मृदा को बांधकर रखती हैं, जिससे मृदा का कटाव कम होता है और उसकी उर्वरता बनी रहती है।

7.2 जल संरक्षण

यह पद्धति जल संचयन और जल संरक्षण में सहायक होती है। वृक्ष और झाड़ियाँ जल की बेहतर अवशोषण में मदद करती हैं, जिससे जल स्रोतों का संरक्षण होता है।

7.3 जैव विविधता

वन चारा पद्धति से जैव विविधता में वृद्धि होती है। इसमें विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों और जीव–जंतुओं का सह–अस्तित्व होता है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र संतुलित रहता है।

7.4 कार्बन अवशोषण

वृक्ष और झाड़ियाँ वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके कार्बन सिक्वेस्ट्रेशन में मदद करती हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

8. वन चारा पद्धति के कार्यान्वयन के लिए सुझाव

वन चारा पद्धति को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं

8.1 जागरूकता और प्रशिक्षण

किसानों में इस पद्धति के बारे में जागरूकता बढ़ाना और उन्हें उचित प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक है। इसके लिए सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों की भागीदारी महत्वपूर्ण है।

8.2 नीतिगत समर्थन

सरकार को इस पद्धति के लिए नीतिगत समर्थन और वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। इससे किसानों को प्रारंभिक लागत और तकनीकी ज्ञान की कमी के बावजूद इस पद्धति को अपनाने में सहायता मिलेगी।

8.3 सामुदायिक सहभागिता

सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देना आवश्यक है। समुदाय के सदस्य एक साथ मिलकर इस पद्धति को अपनाएं और संसाधनों को साझा करें, जिससे इसके लाभ अधिकतम हो सकें।

8.4 शोध और विकास

वन चारा पद्धति के सुधार और विकास के लिए निरंतर शोध आवश्यक है। शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों को इस क्षेत्र में कार्य करना चाहिए और किसानों को नवीनतम तकनीकों और जानकारी से अवगत कराना चाहिए।

निष्कर्ष

वन चारा पद्धति एक बहुआयामी कृषि प्रणाली है जो सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय लाभ प्रदान करती है। यह पद्धति न केवल किसानों की आजीविका में सुधार करती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में भी सहायक होती है। इसके सफल कार्यान्वयन के लिए जागरूकता, प्रशिक्षण, नीतिगत समर्थन, सामुदायिक सहभागिता, और निरंतर शोध की आवश्यकता है। इस पद्धति को अपनाकर हम एक सतत और समृद्ध भविष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

Agrisearch with a human touch
केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
वृक्ष + फसल + पशुधन = "प्रथम कृषिवानिकी"

जल संसाधन का संरक्षण और कृषिवनीकरण की भूमिका

पूजा श्री मिश्रा, सस्मिता बेहरा, मानस रंजननायक एवं सुभाष चंद्र महापात्र
सर्व भारतीय कृषिवनीकरण अनुसंधान परियोजना, ओ.यू.ए.टी., भुवनेश्वर

जल के बिना जीवन अधूरा है। पृथ्वी का 71% भाग जल और 29% भाग स्थल है। इसके बावजूद हम जीवन में जल संकट का अनुभव करते हैं। मनुष्य के जीवित रहने के लिए पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। मानव शरीर का 95% भाग जल है, इसलिए हमें पर्याप्त मात्रा में पीने योग्य स्वच्छ पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन पृथ्वी पर पीने योग्य पानी की मात्रा कम है। संपूर्ण जल का मात्र 2.5–3% ही पीने और उपयोग के योग्य है। इस सीमित मात्रा के जल पर ही सभी स्थलीय जीव और वृक्ष निर्भर हैं। हमारी खेती और जंगलों के वृक्ष भी इसी सीमित मात्रा के शुद्ध जल पर निर्भर रहते हैं।

प्राचीनकाल से ही स्वच्छ जल के स्रोत जैसे नदी, झील, झरने के पास ही सभ्यता और कृषि आधारित जीवन का विकास हुआ है। जितना हम आधुनिक हो रहे हैं, उतना ही अधिक जल का उपयोग कर रहे हैं। शहरी लोग ग्रामीण लोगों की तुलना में अधिक पानी का उपयोग करते हैं। आंकड़ों से पता चलता है कि विकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 300–350 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। एक शोध के अनुसार, एक किलोग्राम धान के उत्पादन के लिए 1,500 लीटर पानी, एक किलोग्राम मक्का के लिए 900 लीटर पानी, एक किलोग्राम माँस के लिए 5,000 लीटर पानी और मुर्गी के माँस के लिए 2,800 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

एक अन्य अध्ययन से पता चला है कि 100 फीट (30 मीटर) ऊंचे वृक्ष को प्रतिवर्ष 40–45 हजार लीटर पानी की आवश्यकता होती है, जिसका 95–98% पानी उसकी पत्तियों, शाखाओं औसत ने के माध्यम से वायुमंडल में छोड़ दिया जाताहै।

हमारी पृथ्वी का 42–45% पानी बर्फ के रूप में ध्रुवीय क्षेत्रों और ऊंचे पहाड़ों में जमा है। जलवायु परिवर्तन और तापमान वृद्धि के कारण हमें कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हमारी जनसंख्या, आवास और आजीविका में परिवर्तन आएगा। यदि हम इन मुद्दों पर आज ही विचार करें तो हम भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित कर सकते हैं।

जल स्रोतों का अंधाधुंध और अनावश्यक उपयोग न करें, जल का संरक्षण करें और सही मात्रा में भूमि जल का उपयोग करें। वृक्षों के बिना जीवन की कल्पना असंभव है। बढ़ती जनसंख्या, सीमित भूमि, जंगलों का विनाश और फसल उत्पादन में कमी अब सभी के लिए चिंता का विषय है।

इस संकट से निपटने का एक नया तरीका है ''कृषिवनीकरण''। यह एक भूमि प्रबंधन उपाय है, जिसके माध्यम से हम एक पुरानी पद्धति को आधुनिक ढंग से अपना कर पर्यावरण के अनुकूल फसलों का उत्पादन कर सकते हैं, जंगलों के पेड़, फलों के पेड़ों से लंबे समय तक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, भूमि जलस्तर का संरक्षण कर सकते हैं, साथ ही पशुपालन, मुर्गीपालन और मछलीपालन के लिए आवश्यक पानी और भोजन भी प्रदान कर सकते हैं। कृषिवनीकरण से जैवविविधता और जलसंरक्षण, मिट्टी की संरचना और उर्वरता में वृद्धि होती है और निकटवर्ती पर्यावरण को भी सुधार मिल सकता है।

कृषि वनीकरण मुख्यतः निम्नलिखित उपायों से प्रभावित करता है :

1. वर्षा की मात्रा, वायुमंडलीय आर्द्रता और बाढ़–तूफान के प्रभाव को कम करके गर्म हवाओं और मरुस्थलीकरण के विस्तार को रोकता है।

2. वर्षा जल को मिट्टी के निचले स्तर में संरक्षित करता है, भूमि जलस्तर को ऊपर उठाता है, मिट्टी की उर्वरता, कार्बन की मात्रा, लाभकारी सूक्ष्मजीवों और कीटों की संख्या को बढ़ाता है।

(3) ऊँची जमीन, पहाड़ी क्षेत्रों में कृषिवानिकी, बादल मंडल को आकर्षित करता है, वर्षा की संभावना पैदा करता है, मिट्टी के कटाव को पेड़ों की जड़ों से रोकता है, और धीरे–धीरे वर्षा का पानी उच्च से निम्न स्तर तक बहा सकता है। यह एक स्थायी जलस्रोत बना सकता है।

(4) कृषिवानिकी से भूमि की ऊपरी सतह की तापमान में कमी होती है। भू–भाग ठंडा रहता है, सूर्य की गर्मी सीधे मिट्टी पर नहीं पड़ती। फसल की उत्पादन बढ़ती है। फल, सब्जियाँ, और लकड़ी का उत्पादन बढ़ता है। इसलिए शुद्धजल का संरक्षण और कृषिवानिकी एक–दूसरे से जुड़ी हैं।

धरती माँ की पुकार

अंगिता सिंह
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

धरती माँ ने की ये पुकार,
अब और न करो अत्याचार।
नहीं करो सूनी गोद मेरी,
नहीं करो अब और प्रहार।
आहत होती है हृदय में,
मेरी सुन लो ये पुकार।
मुझमें ही पलने वालों,
क्या तुम सच से हो अंजान।
क्यों अपने स्वार्थ के लिए,
मेरे ही अस्तित्व को मिटा रहे हो।
माँ ही हूँ तुम्हारी कोई गैर नहीं,
ना करो जर्जर मुझे इस तरह ओ प्राणी।
अपने जीवन के सुख के लिए,
लौटा दो मुझे मेरी हरियाली।
क्योंकि इसके बिना एक दिन,
तुम हो जाओगी खाली।
मेरा अस्तित्व ही,
तुम्हारे खुशियों का जीवन है।
धरती माँ ने की ये पुकार,
अब और न करो अत्याचार।

डिजीटल युग में राजभाषा हिन्दी की उपयोगिता

शैलजा ताम्रकार[1] एवं ज्योति ताम्रकार[2]
[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)
[2] शासकीय महाद्यिालय, विजयराघवगढ़, कटनी (म.प्र.)

प्रस्तावना

भारत में कम्प्यूटरों का प्रयोग अभी एक सीमित वर्ग ही कर पाता है। विशेष रूप से हिन्दी में कम्प्यूटर का प्रयोग काफी सीमित है। इसका सही लाभ तब होगा जब इसका प्रयोग देश के कोने–कोने तक पहुँच जायेगा। इस संदर्भ में कई लोग और कई कम्पनियाँ काम कर रही हैं। हिन्दी में विकिपीडिया इस तरफ उठा हुआ एक अभूतपूर्व कदम है। इससे वह सारी जानकारी आम लोगों तक पहुँच सकेगी जो अन्य किसी साधन से दुर्लभ है। कम्प्यूटरों का प्रयोग आम लोग तब शुरू करेंगे जब इसमें लिखी हुई जानकारी उनकी अपनी भाषा में हो। जितने ज्यादा लोग इंटरनेट पर ज्यादा से ज्यादा जानकारी हिन्दी और अन्य प्रचलित भाषाओं में लिखेंगे उतनी ही जल्दी यह लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा।

आधुनिक युग तकनीक का युग है। रोबोनिक्स साइंस एवं आटिफिशियल इंटेलिजेंस ने विकास की गति को बेहद तेज कर दिया है। सूचना क्रांति के इस युग में पूरी दुनिया को एक साथ एक मंच पर ला खड़ा किया है। दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक लोग आपस में जुड़ गए हैं। डिजिटल युग यही है। सूचना एवं संचार केवल विचारों को ही एक–दूसरे तक नहीं पहुँचाती है, बल्कि ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीक को भी एक समाज से दूसरे समाज तक ले जाती है। मानव सभ्यता के विकास में संचार–सूचना का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जितनी गति से सन्देश का प्रसार होता है, विकास की रूप–रेखा को भी उसी रूप में आकलित किया जा सकता है। शुरुआती दौर में, सन्देश पहुँचाने के लिए सन्देश वाहक का उपयोग किया जाता था, जिसमें दूरी के हिसाब से कई–कई दिन लग जाते थे। सूचनाओं के आदान–प्रदान में समय लगने के कारण ज्ञान का प्रसार भी उस तेजी से नहीं हो पता था। कालांतर में, सड़क–परिवहन ने इस दूरी को कम किया तो आधुनिक युग में तकनीक–इंटरनेट ने पूरी दुनिया को एक 'क्लिक' पर ला खड़ा किया, अर्थात अब सेकेंड़ में आप दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक सन्देश भेज सकते है।

इस क्रांतिकारी परिवर्तन ने भाषा को एक वृहत आयाम दिया, भाषागत विविधताओं को विराम मिला और एकरूपता को महत्त्व मिलने लगा। सांस्कृतिक रूप से भी विश्व ग्राम की संकल्पना साकार होने लगी और आज इसी कारण, सांस्कृतिक एवं ज्ञान के एकीकरण से आधुनिक समाज एक साथ विश्व के सभी त्योहारों को मनाता है, घटनाओं पर प्रतिक्रियायें देता है। यही तो ग्लोबल विलेज है। एक शहर से दूसरे शहर में विकास की गति का सबसे बड़ा वाहक तकनीक ही है। आज का युग तकनीक का है, जिसे ''टेक्नोयुग'' भी कह सकते हैं, हम प्रत्येक काम में टेक्नोलॉजी का प्रयोग करते हैं। हम अब टेक्निकली स्मार्ट बन गए हैं। या कुछ इस रास्ते पर चल रहे हैं और इन सब में हमारी नई पीढ़ी हम से और तेजी से दौड़ रही है।

डिजिटल हिंदी और सॉफ्टवेयर

ध्वनियों और सांकेतिक शब्दों से बनी भाषा सदियों से हमारी अभिव्यक्ति और विचारों की संवाहिका रही है। एक समाज को दूसरे समाज के साथ संवाद स्थापित करना एवं आंतरिक सम्बन्ध जोड़ने में भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। यही कारण है कि हिंदी, प्रेम और स्नेह की, अपनत्व की भाषा जैसी लगती है। इसलिए हमें अपनी भाषा से लगाव होना स्वाभाविक है।

गूगल ने भी हिंदी के कंप्यूटर प्रयोग को लगातार उपभोक्ताओं के लिए सरल बनाने का काम किया है। आज हिंदी के अनेक फॉन्ट मॉइक्रोसॉफ्ट उपलब्ध करवा रहा है। यूनिकोड जैसे फॉन्ट और गूगल द्वारा उपलब्ध करवाए जा रहे भाषा इनपुट टूल्स ने समय के अनुसार हिंदी के संचार को कभी बाधित नहीं किया। आज हिंदी का विश्व के बाजार में पूरी तरह वर्चस्व फैल रहा है। अनुवाद, शिक्षा, पत्रकारिता, बैंकिंग, विज्ञापन, सिनेमा, खान–पान, आदि सभी क्षेत्रों में हिंदी एक आधार का काम कर रही है। हिंदी के न जाने कितने ब्लॉग्स, ऑन–लाइन साहित्य, पत्र–पत्रिकाएँ, फेसबुक, ट्विटर, आदि हमारे रोज़मर्रा के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। ये बहुत अच्छी बात है कि आज हर दिन, हर समय हमारी भाषा के पास एक प्राइम टाइम है। जहाँ एक ओर समाचार–पत्रों की बढ़ती तादाद है तो दूसरी ओर उनके पाठकों की संख्या तो बढ़ ही रही है। कोरोना काल में गूगल मीट पर लगभग सभी संस्थाओं की साहित्यिक संगोष्ठियाँ, कवि सम्मलेन, वेबिनार सफलता पूर्वक आयोजित किये गये है। आज जब कि शिक्षा का मुख्य आधार ही डिजिटल संसार है तो हिंदी के विकास की सम्भावनाएँ भी इसी में निहित हैं। फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्स एप्प और दूसरी सोशल मीडिया की नेट वर्किंग साइट्स ने सारी दुनिया को एक मुठ्ठी में कैद कर दिया है। यही कारण है कि सुदूर किसी दूसरे देश या जंगल में बैठा साहित्यिक व्यक्ति भी, अब सभी के संपर्क में लगातार बना हुआ है। अपनी साहित्यिक रचनाओं का अब वह खुद ही प्रकाशक भी बन गया है। डिजिटल क्षेत्र में हिन्दी से जुड़े कई एप मोबाइल और एंड्रॉइड पर उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि टीवी कार्यक्रमों में सबसे अधिक टीआरपी जुटाने वाले कार्यक्रम हिन्दी भाषा में ही संचालित हो रहे हैं।

नई शिक्षा नीति–2020

नई शिक्षा नीति में भी भाषा के सवाल को गंभीरता से लिया गया है। भारतीय भाषाओं में ज्ञान निर्माण को प्राथमिकता देने की बात कही गई है। इसमें डिजिटल माध्यमों की बड़ी अहम भूमिका होगी। डिजिटल माध्यमों के जरिए भाषा ने भिन्न–भिन्न देशों के बीच पुल का काम किया और भारतीय ज्ञान, विज्ञान को लेकर पश्चिमी देशों में जो जिज्ञासा का भाव था उसे पंख दिए। भारत, अपनी समृद्ध वैदिक संस्कृति के विविध संदर्भों के कारण विश्व भर के लोगों का केंद्र रहा है। भारत की मजबूत आध्यात्मिक परंपरा और विश्व बंधुत्व की परिकल्पना भी शेष विश्व के नागरिकों को आकर्षित करती रही है।

तकनीकी क्षेत्र और हिंदी सॉफ्टवेयर

तकनीक के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास और विस्तार हुआ है। लेकिन इस क्षेत्र में हिंदी की स्थिति अभी बेहतर नहीं है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण, की–बोर्ड का उचित मानकीकरण तक न हो पाना है। हालांकि आज कई एप्प अपने आपको हिंदी में ला रहे हैं। ये मुख्यतः बैंकिंग, ई–कामर्स से जुड़े हैं। परन्तु इनका हिंदीकरण पहले एक–दो पन्नों तक ही होता है। इसके बाद सारी सामग्री अंग्रेजी में होती है। आज समस्या यह है कि हम इंटरनेट को भारतीय बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इस कोशिश में फिलहाल अनुवाद से ज्यादा काम नहीं हो पा रहा है। हिंदी में सॉफ्टवेयर निर्माण के लिए थोड़ा ओर अपडेट होने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में थोड़ा संसाधन और कुछ तकनीकी रूप से दक्ष हिंदी प्रेमी युवाओं के आगे आने की ज़रूरत है। सरकारें तो फिलहाल प्रोत्साहन दे ही रही हैं। इस ग्लोबल समाज और डिजिटल संसार में हिन्दी भाषा के कैसे पाठ्यक्रम को आधुनिक एवं उपयोगिता को बढ़ाने की आवश्यकता है। जब तक भाषा को रोजगार या उपयोगिता के अनुसार नहीं बदला जाएगा, वो एक अतिरिक्त विषय की तरह धीरे–धीरे अपनी गुणवत्ता खो देगी।

हिंदी का फलक – इसमें कोई शक नहीं कि आज विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी का शुमार हो रहा है। हिंदी का फलक बहुत बड़ा है। दुनिया में चीन की मंदारिन भाषा के बाद हिंदी बोलने वाले सर्वाधिक हैं। विश्व भर में यदि हिंदी बोलने वाले 50 करोड़ हैं तो हिंदी समझने वाले 80 करोड़। वर्तमान में हिंदी भारत के अलावा फिजी, गयाना, त्रिनिदाद, मारीशस, सूरीनाम, कनाडा और अमेरिका इत्यादि देशों में भी प्रयुक्त हो रही है। लगातार परिवर्तन को अपनाते हुए, हिंदी क्रमशः अपनी साख बढ़ा रही है। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। जो कि हिंदी

की बढ़ती लोकप्रियता का प्रतीक है। और यह एक सकारात्मक संकेत है। भारतवासियों द्वारा हिंदी को आत्मनिर्भर बनने के लिए साथ लेकर चलना न केवल हिंदी के विकास में मदद करेगा, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और पहचान को भी मजबूत करेगा। डिजिटल युग में, हिंदी के फलने–फूलने की तमाम संभावनाएं को हम हिंदी को विश्व स्तर पर एक प्रमुख भाषा बना सकते हैं और इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति और ज्ञान को पूरे विश्व में फैला सकते हैं।

वैश्विक स्तर पर हिंदी अब व्यापार, रोजगार और पहचान की भाषा बन चुकी है, इस पहचान को मजबूत करने में हिंदी सिनेमा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। एक समय में जैसे देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए बहुत से उर्दू भाषी लोगों ने हिंदी सीखी ठीक उसी प्रकार आज देश–विदेश में बहुत से भिन्न–भिन्न, भाषा–भाषी हिंदी सिनेमा एवं डिजिटल माध्यमों के कारण हिंदी सीख रहे हैं। भाषा के माध्यम से वह भारत व भारत की संस्कृति से भी परिचित हो रहे हैं। बहुत सी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शाखाएँ भारत में भी हैं। वह बेहतर व्यापार के लिए अपने कर्मचारियों को हिंदी सीखने के लिए बकायदा प्रोत्साहित करते हैं। इस तरह डिजिटल युग में हिंदी की वैश्विक पहचान निर्मित हुई है। आज भाषा सीमाओं से पार, लोगों तक आसानी से पहुँच रही है। इस पहुँचने में डिजिटल माध्यमों की ही भूमिका रही है डिजिटल युग में अलग–अलग माध्यमों और तकनीकी के जरिए पूरी दुनिया भारतीय नृत्य, संगीत एवं अन्य कलाओं से गहरे रूप में परिचित हो पा रही है। विदेशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत को लेकर लोगों में बड़ी गहरी रुचि है। वहाँ लोग भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ–साथ सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ना चाहते हैं और आज दुनिया के तमाम छोटे–बड़े देशों में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का ज़ोर है। डिजिटल दौर में हिंदी एक ओर वैश्विक स्तर पर स्थापित हो रही है जिसके कई कारण हैं लेकिन वहीं अपने ही देश में हिंदी को लेकर गंभीर उदासीनता है। इस उदासी को समझे बिना वैश्विक ताकत का हर्ष फीका है। भाषा से संस्कृति का गहरा नाता है। इसलिए यह चिंता सिर्फ भाषा के सवाल तक सीमित नहीं रहती है। इसका दूरगामी प्रभाव है, भाषा का कमजोर होना, समाज एवं संस्कृति का कमजोर होना भी है।

राजभाषा हिंदी और कंप्यूटर स्थानीयकरण

भूमंडलीकृत हो रही दुनिया की आधुनिक अर्थव्यवस्था में व्यापारिक गतिविधियों के लिए उभर कर आ रहे बाजार के बहुत व्यापक स्पेक्ट्रम हेतु आपस में प्रतिस्पर्धा है। इस बाजार की जीतने का एक आसान तरीका है : स्थानीयकरण (लोकलाइजेशन)। स्थानीयकरण अपने नए लक्षित उपभोक्ताओं की भाषा में अपनी वकालत करते हुए सामग्री और उत्पाद को प्रस्तुत करता है। स्थानीयकरण का अर्थ सही रूप से सिर्फ भाषा अनुवाद ही नहीं कर देना है बल्कि स्थानीयकरण कई स्तरों पर किया जाता है जैसे स्थानीय अंतवस्तु, रीति–रिवाज, संकेत प्रणाली, सॉर्टिंग, सांस्कृतिक मूल्यों व संदर्भों के साथ सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से स्थानीयकरण। अब स्थानीयकरण (लोकलाइजेशन) की बदौलत मध्यप्रदेश का एक छोटा किसान भी ई–चौपाल के जरिए बटन दबाकर मंडी के भाव और कृषि संबंधी सूचनाएँ पता कर रहा है। दूसरी तरफ हिंदी भारत गणराज्य की राजभाषा भी है। इसका प्रयुक्ति क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके अंतर्गत केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालय, विभाग, कार्यालय, निगम, कंपनी, बैंक, आयोग आदि आते हैं। सूचना प्रोद्योगिकी का इस्तेमाल इन सभी क्षेत्रों में दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। सर्वज्ञात है कि कंप्यूटर ने राजभाषा हिंदी में काम करना सुगम बनाया है।

हिंदी में कंप्यूटर स्थानीयकरण का कार्य काफी पहले शुरू हुआ और अब यह आन्दोलन की शक्ल ले चुका है। हिंदी सॉफ्टवेयर लोकलाइजेशन का कार्य सर्वप्रथम सी–डैक (CDAC) द्वारा 90 के दशक में शुरू किया गया था। हिंदी भाषा के लिए कई संगठन काम करते हैं जिसमें सी–डैक, गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग, केन्द्रीय हिंदी संस्थान और अनेकों गैर–सरकारी संगठन जैसे सराय, इंडलिनक्स आदि प्रमुख हैं। इनमें से एक इंडलिनक्स ने भी अपना काम हिंदी से ही शुरू किया। हिंदी के लिए विभिन्न परियोजनाओं को एक सूत्र में पिरोने के उद्देश्य से सोर्सफोर्ज वेबसाइट पर हिंदी प्रोजेक्ट भी प्रारंभ किया गया है। यहाँ मुख्यत : फेडोरा, ग्नोम, केडीई, मोजिला, और ओपनऑफिस का हिंदी

स्थानीयकरण किया जा रहा है। दूसरी ओर दिल्ली स्थित 'सराय' नामक गैर सरकारी संस्था ने भी हिंदी में कंप्यूटर स्थानीयकरण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पुणे स्थित रेड हैट भी कंप्यूटर पर हिंदी को बढ़ावा दे रही है।

हिंदी के बड़े बाज़ार की नब्ज़ को देखते हुए व्यावसायिक रूप में हिंदी में स्थानीयकरण को सबसे अधिक बढ़ावा बृहत साफ्टवेयर संस्था मॉइक्रोसाफ्ट ने दिया है। मॉइक्रोसाफ्ट ने अपने सॉफ्टवेयर उत्पादों से संबंधित सहायक साहित्य तथा मार्गदर्शक सूत्रों को विशेषज्ञों की सहायता से हिंदी में उपलब्ध कराने के प्रयत्न शुरू किए हैं। बहुप्रचलित विंडोज़ विस्टा और विंडोज़ सेवन जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम के साथ वर्ड, पावर प्वाइंट, एक्सेल, नोटपैड, इंटरनेट एक्स्प्लोरर जैसे प्रमुख साफ्टवेयर उत्पाद अब हिंदी में काम करने की सुविधा देते हैं। लेखन में त्रुटियों को दूर करने के लिए आवश्यक "शब्द–कोश" जैसी सुविधाएँ हिंदी में उपलब्ध है और उनके कार्यान्वयन संबंधी प्रयोग चालू हैं। मॉइक्रोसाफ्ट का लैंग्वेज इंटरफेस पैक स्थानीयकरण का बेहतरीन उदाहरण है। गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने अपनी वेबसाइट (http://rajbhasha-nic-in/) पर राजभाषा हिंदी में काम करने को आसान बनाने के उद्देश्य से हिंदी में कई सॉफ्टवेयर उपकरण उपलब्ध करवाए हैं। जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं :

1. कंप्यूटर की सहायता से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए राजभाषा विभाग ने कंप्यूटर प्रोग्राम (लीला हिंदी प्रबोध, लीला हिंदी प्रवीण, लीला हिंदी प्राज्ञ) तैयार करवा कर सर्व साधारण द्वारा उसका निःशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करवाया है।
2. मंत्र अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद सॉफ्टवेयर प्रशासनिक एवं वित्तिय क्षेत्रों के लिए प्रयोग एवं डाउनलोड हेतु राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करवाया है।
3. श्रुतलेखन नामक उपकरण हिंदी वाक् (स्पीच) से पाठ (टेक्स्ट) हेतु उपलब्ध करवाया है।
4. वाचांतर नामक उपकरण अंग्रेजी वाक् (स्पीच) से हिंदी अर्थ अनुवाद हेतु उपलब्ध करवाया है।
5. सी–डैक पुणे के तकनीकी सहयोग से ई–महाशब्दकोश का निर्माण किया है, जो राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर निशुल्क उपलब्ध है।
6. हिंदी में शब्द संसाधन (word processing) के लिए विशेष रूप से तैयार ई–पुस्तक राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

मोबाइल पर हिंदी समर्थन हेतु निरंतर कार्य चल रहा है। कई सोनी, नोकिया और सैमसंग जैसी कंपनियों ने मोबाइल पर हिंदी प्रदर्शन, हिंदी टंकण, और हिंदी भाषा में इंटरफेस आदि की सुविधा उपलब्ध करवाई है।

हिन्दी के विकास में वेब मीडिया का योगदान

आज के प्रौद्योगिकी के दौर में मीडिया एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरा है और उसमें भी न्यू मीडिया यानि वेब मीडिया के प्रति लोगों का आकर्षण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया का दायरा काफी विस्तृत हो चुका है, ऐसे में विभिन्न भाषाओं का विकास भी वेब मीडिया के तहत ही हो रहा है – आज की स्थिति में वेब और भाषा एक दूसरे के अहम सहयोगी माने जा सकते हैं। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ व्यापक क्षेत्र में हिंदी बोली जाती है वहाँ इसके विकास में वेब मीडिया के योगदान को नजरंदाज़ नहीं किया जा सकता है– ये सच है कि वेब के असर से हिंदी के स्वरूप में इसके मूल स्वरूप से भिन्नता है लेकिन यही भिन्नता ही इस विकास की गाड़ी के पहियें हैं। कि विस्तृत दायरे के साथ हिंदी अपने आप में व्यापक है– वेब मीडिया के प्रयोगों के बावजूद हिंदी के अस्तित्व पर कोई संकट नहीं है। दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों के प्रयोग से ही हिंदी वेब के लायक बनी अन्यथा अपने मूल स्वरुप में हिंदी एक दायरे तक सीमित होकर रह जाती। यूँ तो 80 के दशक में ही हिंदी को कम्प्यूटर की भाषा बनाने का प्रयास शुरू हो चुका था परन्तु वेब के साथ हिंदी का प्रयोग २०वीं सदी के समाप्ति के बाद शुरू हुआ– सन 2000 में यूनिकोड के पदार्पण के बाद 2003

में सर्वप्रथम हिंदी में इन्टरनेट सर्च और मेल की सुविधा की शुरुआत हुई। हिंदी के विकास में यह एक मील का पत्थर साबित हुआ। 21 वीं सदी के पहले दशक में ही गूगल न्यूज, गूगल ट्रांसलेट तथा ऑनलाइन फोनेटिक टाइपिंग जैसे औजारों ने वेब की दुनिया में हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण सहायता की उपरोक्त सभी ऑनलाइन औजार यूँ तो प्रत्यक्ष रूप से कोई बड़ी भूमिका में न रहें हो परन्तु हिंदी के समग्र विकास में इनकी सहायता से इंकार नहीं किया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ महज 10 प्रतिशत से भी कम लोग अंग्रेजी का ज्ञान रखते हैं, वहाँ हिंदी के इस स्वरूप की आवश्यकता बढ़ जाती है। हिंदी के इसी महत्व पर **मशहूर विचारक सच्चिदानन्द सिन्हा ने लिखा है कि "भाषा जो प्रतीकों का समुच्चय होती है, संस्कृतियों के संकलन और सम्प्रेषण का सबसे सरल माध्यम भी होती है। और सम्प्रेषण आम बोलचाल की भाषाओं से भी होता है, बल्कि अधिक सशक्त रूप से"**। यहाँ सम्प्रेषण के एक और सशक्त माध्यम वेब मीडिया" का भी उल्लेख किया जा सकता है। या फिर हम कह सकते हैं कि वेब मीडिया एक ऐसा गुरुकुल है जहाँ प्रत्येक भाषा एक संकाय की भांति प्रतीत होती है। इलेक्ट्रॉनिक संचार के माध्यम और कम्प्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी ने अपनी जगह बना ली है। इससे एक तरफ इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ हिंदी का अपना बाजार भी बन रहा है। इससे हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका मजबूत हो रही है। कुछ इन्ही बातों को ध्यान में रखकर पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति ने कहा था– **"यदि भारत को समझना है तो हिंदी सीखो"**। देबाशीष चक्रवती के 'एग्रीगेटर' से शुरू हुआ हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। **आलोक कुमार के 'नौ दो ग्यारह' नाम के हिंदी के पहले ब्लॉग से श्रीगणेश के बाद आज हजारों की संख्या में हिंदी ब्लॉग वेब में मौजूद हैं।** अपनी अभिव्यक्ति को अपनी भाषा में प्रदर्शित करने का सुख वेब मीडिया में ब्लॉगिंग के माध्यम से प्राप्त होता है। आज जबकि वर्डप्रेस, इन्दिक्जूमला जैसे ढेरों ऐसे मंच उपलब्ध हैं जहाँ हम अपनी बात बेहद स्पष्ट व विस्तृत रूप से रख सकते हैं। यहाँ स्पष्टता से मतलब भाषीय स्वत्रंतता से है। वेब मीडिया के आने से पूर्व सभी कृतिकारों को अपनी बात आम जनमानस तक पहुँचाने में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ता था। ढेरों प्रयास के बावजूद भी वे अपनी कृति को एक सीमित दायरे तक ही पहुँचा पाते थे। वेब मीडिया ने इन सभी सीमाओं को तोड़ा है। आज सभी लेखक गुमनामी की कालिमा को इस माध्यम के प्रकाश की सहायता से खत्म कर सकते हैं।

इन्टरनेट पर हिंदी में खोज आने के बाद हमारी मूल जिज्ञासा का जवाब हिंदी में ही पलक झपकते ही हमारे सामने होता है। और ये सब इसीलिए सम्भव हुआ है क्योंकि इंटरनेट के सागर में नित प्रतिदिन हिंदी ज्ञान स्वरूपी नदियाँ समाहित हो रही हैं। और इसी प्रक्रिया का परिणाम है कि आज भारत से बाहर सात समन्दर पार भी हिंदी सभाएं एवं गोष्ठियां, सम्मेलन, पुरस्कार समारोह आदि आयोजित किये जा रहे हैं। भारत की भाषायी स्थिति और उसमे हिंदी के स्थान को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि हिंदी आज भारतीय जनमानस के सम्पर्क की राष्ट्रीय भाषा है। संख्या की दृष्टि से दुनिया की इस तीसरी सबसे बड़ी भाषा के जानने वालों की यह विशाल जनसंख्या हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क का साक्षात्कार कराती है क्योंकि आज दुनिया के हर कोने में बसे भारतीय वेब मीडिया की सहायता से हिंदी को महत्व देना शुरू कर चुके हैं। उपर्युक्त तथ्यों और बातों के आधार पर ये कहा जा सकता है कि वेब मीडिया ने हिंदी समेत सभी भाषाओं को एक सामान वैश्विक मंच प्रदान किया है। चूँकि हिंदी की अपनी विशेषताएं हैं इसलिए हिंदी अन्य भाषाओं से तेज व सकारात्मक रूप से परिवर्तनशील यानि कि विकासशील है।

इंटरनेट पर राजभाषा हिन्दी

सूचना प्रौद्योगिकी के बदलते परिवेश में हिन्दी भाषा ने अपना स्थान धीरे–धीरे प्राप्त कर लिया है। आधुनिकीकरण के इस युग में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। इंटरनेट पर हिन्दी पढ़ना एवं प्रयोग स्वतः हिन्दी को लोकप्रिय बना सकता है। मॉइक्रोसॉफ्ट ने ऑफिस हिन्दी के द्वारा भारतीयों के लिये कम्प्यूटर का प्रयोग आसान कर दिया है। सही कारण है कि अब हिन्दी न जानने वाले भी इंटरनेट जरिये अपना काम आसानी से कर रहे हैं। समाचार, साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी,

व्यापार, ज्योतिष आदि के वेब पेज अलग–अलग प्रकार की जानकारी उपलब्ध करा सकते हैं। कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आज जो नया ज्ञान विस्फोट हुआ है वह भाषा में भी एक मौन क्रान्ति का वाहक बनकर आया है। इंटरनेट पर हिन्दी, अंग्रेजी जितनी लोकप्रिय तो नहीं है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में इंटरनेट पर हिन्दी की वेबसाइटों की संख्या में काफी तेजी से वृद्धि हुई है। चूँकि इंटरनेट काफी छोटी जगहों तक भी पहुँच गया है, इसलिये हिन्दी साइटों की आवश्यकता भी काफी तेजी से महसूस की जा रही है। अब तो सबसे बड़ी बात ये है कि हिन्दी में ई–मेल की सुविधा भी कई वेबसाइटों द्वारा उपलब्ध कराई जा रही है। इंटरनेट के माध्यम से समाज के छोटे–बड़े सभी व्यक्तियों को दूरस्थ स्थानों तक अविलम्ब उपयोगी और इच्छित सूचना उपलब्ध हो जाती है, जिससे वे अपने व्यवसायिक, सामाजिक और वाणिज्यिक कार्यकलापों में वृदधि कर सकते हैं। सामान्यतः हिन्दी की निम्न तरह की वेबसाइटें देखने को मिलती हैं –

1. कुछ वेबसाइटें हिन्दी समाचारों तथा अखबारों की हैं। इनका उद्देश्य हिन्दी में समाचार उपलब्ध कराना है।
2. कुछ वेबसाइटें जो पूरी तरह से साहित्यिक पत्रिकाओं के लिये समर्पित हैं तथा साइटों पर साहित्यिक के अतिरिक्त अन्य किसी तरह की सूचना को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ये मूलतः भूमण्डलीय साहित्यिक वेबपोर्टल होते हैं।
3. कुछ वेबसाइटें सरकारी, अर्धसरकारी, स्वायत्त संस्थाओं और सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं की हैं जोकि अपने बारे में सारी जानकारी हिन्दी में भी उपलब्ध कराते हैं। ये वेबसाइटें राजभाषा नियमों के तहत हिन्दी में बनाई जाती हैं।
4. कुछ वेबसाइटें हिन्दी भाषा, समाज, साहित्य से जुड़ी जानकारी प्रदान करती हैं।
5. कुछ वेबसाइटें हिन्दी में ई–मेल की सुविधा ही प्रदान करती हैं।
6. विदेशी वेबसाइटों के अलावा कुछ भारतीय वेबसाइटें भी हैं, जोकि सर्च इंजनों की तरह कार्य करते हैं तथा आसानी से, आवश्यकतानुसार किसी भी तरह की सूचना को खोजा जा सकता है।

राजभाषा हिंदी और ई–शासन

भारत सरकार की राष्ट्रीय ई–शासन योजना का उद्देश्य, भारत में ई–शासन (E-Governance) की नींव रखना तथा इसकी दीर्घावधिक अभिवृद्वि के लिए प्रेरणा उपलब्ध कराना है। ई–शासन का विकास लगातार प्रशासन के सूक्ष्मतर पहलुओं को लघु रूप देने के लिए किए गए उपायों, जैसे नागरिक केन्द्रित, सेवा उन्मुखीकरण और पारदर्शिता के लिए सरकारी विभागों के कम्प्यूटरीकरण से प्रारंभ हुआ है। इस योजना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र की जानकारियों को इंटरनेट पर सरल, विश्वसनीय पहुँच–संभव बनाने के लिए दूर–दराज के गाँवों तक मजबूत देशव्यापी तंत्र को तैयार किया जा रहा है और अभिलेखों का बड़े पैमाने पर डिजिटाइजेशन किया जा रहा है। इसका अंतिम लक्ष्य नागरिक सेवाओं को नागरिकों के घरों के अधिक समीप लाना है। इस प्रकरण में राजभाषा हिंदी की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। हिंदी भाषी क्षेत्रों में सरकारी अभिलेख जैसे भूमि, वाहन, कृषि संबंधी जानकारियाँ इंटरनेट पर इस योजना के तहत हिंदी में जनता को उपलब्ध करवाई जा रही हैं। एक ओर सरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 संबंधी सार्वजनिक सूचनाएँ, हिंदी के माध्यम से अपनी वेबसाइटों पर उपलब्ध करवाने की प्रक्रिया चल रही है। तो दूसरी भारत सरकार के **भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (भा.वि.प.प्रा.) द्वारा नागरिकों के लिए बना, जा रहे आधार कार्ड में हिंदी का अधिकाधिक इस्तेमाल हो रहा है। आधार 12 अंकों की एक विशिष्ट संख्या है जिसे भा.वि.प.प्रा. सभी निवासियों के लिये जारी कर रहा है**। संख्या को केन्द्रीकृत डाटा बेस में संग्रहित किया जा रहा है एवं प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत जनसांख्यिकी एवं बायोमैट्रिक सूचना फोटोग्राफ, दसों अंगुलियों के निशान एवं आंख की पुतली की छवि के साथ लिंक किया जा रही है। ये सभी सूचनाए हिंदी माध्यम में उपलब्ध करवाई जा रही हैं।

राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी ब्लॉग्स की भूमिका

आज का युग विज्ञान और तकनीक का है, जिसमें हम पग–पग पर तकनीक से टकराते है। जो लोग इस तकनीक को अपना लेते है, वह अपने काम आसानी से कर लेते हैं और जो नहीं कर पाते या जिन्हें इसके लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है, वह अपना काम जैसे–तैसे पूरा कर लेते है। जो इस झंझट में नहीं पड़ना चाहते हैं, वह समय के साथ चलने वाली स्पर्धा से पिछड़ जाते है और भविष्य में एक दिन उनके मन में भी विचार आता है कि यदि वह समय की माँग को समझकर तकनीक के साथ चल पड़ते तो आज वह वहाँ होते जहाँ उनके साथी खड़े हैं। इसका एक साधारण सा उदाहरण है कि आजकल कम्प्यूटर द्वारा आसानी से रेल का टिकट बुक किया जा सकता है। रेल टिकट काउंटर पर लंबी लाइन में लगकर पर्चा भरने से अच्छा है, कंप्यूटर पर रेल विभाग की ऑनलाइन साईट पर जाकर मिनटों में रेल का कन्फर्म टिकट प्राप्त किया जा सकता है। कहने का तात्पार्य है कि तकनीक और कंप्यूटर ने हमारे कई काम आसान कर दिया हैं। भारत की सरकार भी आज–कल डिजिटल इंडिया का सपना देख रही है। ऐसी स्थिति में क्यों न सूचना प्रौद्योगिकी का भरपूर लाभ उठाया जा, और इसी के माध्यम से हमारी राजभाषा हिंदी के विकास के लक्ष्य को भी साधा जा? आज–कल कंप्यूटर पर हिंदी में काम करना बहुत आसान हो गया है, खासकर गूगल हिंदी इनपुट और माइक्रोसॉफ्ट इंडिक लैंगवेज टूल की सहायता से अंग्रेजी की–लेआउट के जरिए अंग्रेजी की ही गति से हिंदी में भी कंप्यूटर पर आसानी से काम किया जा सकता है।

ऐसे में हम एक ऑनलाइन 'चौपाल' लगा कर हमारे विचारों को हमारी ही भाषा में स्थान दे सकते हैं। गूगल का ब्लॉगर एक ऐसा ही ई–टूल है, जिसके जरिए हम हमारे विचारों को इंद्रजाल–इंटरनेट के जरिए जन–जन तक पहुँचा सकते हैं। विकिपीडिया के अनुसार चिट्ठा (अंग्रेजी का ब्लॉग्स), बहुवचन चिट्ठे (अंग्रेजी में ब्लॉग्स) एक प्रकार के व्यक्तिगत जालपृष्ठ (वेबसाइट) होते हैं, जिन्हें दैनन्दिनी (डायरी) की तरह लिखा जाता है। हिंदी के प्रचार और प्रसार में सूचना प्रचार–प्रसार में यही चिट्ठे (ब्लॉग) हमारे इलेक्ट्रॉनिक 'देवदूत' साबित हो सकते हैं, जो कलियुग में नारद मुनी का काम कर सकते हैं। यदि आप अपने विचारों को पूरे विश्वों में एक साथ पहुँचाना चाहते हैं, तो आप अपने पसंदीदा विषय पर ब्लॉग्स बनाकर अपनी बातों को पूरे विश्व में कही भी पहुँचा सकते हैं और उसे रोज अद्यतन भी कर सकते हैं। आज कल हम देखते हैं कंप्यूटर पर कई ब्लॉग्स हैं, जो हिंदी में हैं और नव–नवीन विषयों पर अपने ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं।

इसमें हिंदी भाषा, ज्ञान–विज्ञान, तकनीकि–प्रौद्योगिकी, कथा, कहानियॉ, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल जगत और अन्य विषयों के साथ–साथ इतिहास, भूगोल और भौतिक विज्ञान जैसे कई विषयों का समावेश हैं। विशेषतः ''अनुनाद सिंह जी'' ने इस क्षेत्र में भगीरथ प्रयास किया है। कंप्यूटर पर ऐसे कई विषयों पर आज जानकारी उपलब्ध हो गई जिन विषयों की पुस्तकें प्रायः दुर्लभ समझी जाती है। प्राचीन ग्रंथों के पीडीएफ फाइलों का ब्लॉग्सों के माध्यम से आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है। इससे अध्ययन और अनुसंधान दोनों में सहायता हो रही है। खासकर ऐसी पुस्तकें जिनकी प्रतियां आज किसी लाइब्रेरी में भी मिलना मुश्किल हैं ऐसे कई विषयों की पुस्तकों का संकलन आसानी से उपलब्ध हो जाता है। साथ ही ब्लॉग्स बनाने वाले व्यैक्तिक के विचार और दर्शन से भी परिचित हो सकते हैं। हिंदी में लिखी गई बहुत सी पुस्तकें आज भी आम जन तक नहीं पहुँच पाई हैं, जिन्हें ब्लॉग्स पर दी गई लिंक के माध्यम से सरलता से डाउनलोड किया जा सकता है, सोशल मीडिया पर शेयर किया जा सकता है और अपने पाठकों को इसकी लिंक भी भेजी जा सकती हैं। चिट्ठा बनाने के कई तरीके होते हैं, जिनमें सबसे सरल तरीका है, किसी अंतर्जाल पर किसी चिट्ठा वेबसाइट जैसे ब्लॉगस्पॉट या लाइवजर्नल या वर्डप्रेस आदि जैसे स्थलों में से किसी एक पर खाता खोल कर लिखना शुरू करना। एक अन्य प्रकार की चिट्ठेकारी सूक्ष्म चिट्ठाकारी कहलाती है। इसमें अति लघु आकार के पोस्ट्स होते हैं। आज के संगणक जगत में चिट्ठों का भारी चलन चल पड़ा है। कई प्रसिद्ध मशहूर हस्तियों के चिट्ठा लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं और उन पर अपने विचार भी भेजते हैं। चिट्ठों पर लोग अपने पसंद के विषयों पर लिखते हैं और कई चिट्ठे विश्व भर में मशहूर होते हैं जिनका हवाला

कई नीति–निर्धारण मुद्दों में किया जाता है। चिट्ठा का आरंभ 1992 में लांच की गई पहली जालस्थल के साथ ही हो गया था। आगे चलकर 1990 के दशक के अंतिम वर्षो में जाकर चिट्ठाकारी ने जोर पकड़ा। आरंभिक चिट्ठा संगणक जगत संबंधी मूलभूत जानकारी के थे। लेकिन बाद में कई विषयों के चिट्ठा सामने आने लगे। वर्तमान समय में लेखन का हल्का सा भी शौक रखने वाला व्यक्ति अपना एक चिट्ठा बना सकता है, चूंकि यह निःशुल्क होता है और अपना लिखा पूरे विश्व के सामने तक पहुंचा सकता है। हिंदी के प्रचार को इन ब्लॉग ने पर लगा दिए हैं। खासकर ऐसी पुस्तकें जिनको प्रकाशित करने में समस्या आती है या फिर जो पुस्तकें प्रकाशित होने पर भी पाठकों तक नहीं पहुँच पाती हैं, ऐसी पुस्तकों की सामग्री को आसानी से पाठकों तक मात्र एक क्लिक करने पर ही पहुँचाया जा सकता है, जिस पर पाठक बैठे–बैंठे ही अपनी प्रतिक्रिया भी दे सकते हैं। ऐसे कई ब्लॉग हैं, जिनका यहाँ जिक्र करना आवश्यक हैं, जैसे हिंदू महासागर, राजभाषा हिंदी, प्रतिभास, विज्ञानविश्व, शब्दों का सफर, ज्ञानवाणी, गणित और विज्ञान, सौर इंडिया वाटर पोर्टल, भारत विद्या, वैज्ञानिक भारत, विचार वाटिका, श्यामस्मृति, विजानाति–विज्ञान आदि विशेष हैं। किसी ने कहा भी है, कि 'आज का ब्लॉग्स कल की पुस्तकें है'। अर्थात कागज– कलम लेकर अपने विचारों को लिखने के बजाए यदि आप उसे सीधे कंप्यूटर पर टाइप कर पाते है तो वह आपके विचारों की इलेक्ट्रॉनिक पांडुलिपि बन जाती है।

डिजिटल हिन्दी का भविष्य

कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन तथा टैबलिट आदि डिजिटल उपकरण हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। आजकल लगभग इन सभी उपकरणों में हिन्दी में काम करना सम्भव है। भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यूनिकोड सिस्ट्म ने हिन्दी को सभी कम्प्यूटिंग डिवाइसों तक पहुँचा दिया है। यूनिकोड सिस्ट्म के कारण कम्प्यूटर पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में काम करना अंग्रेजी जैसा ही सरल हो गया है। इसी कारण अब इंटरनेट पर हिन्दी चिट्ठों तथा वेबसाइटों की भरमार है। ऑपरेटिंग सिस्ट्मों की बात करें तो माइक्रोसॉफ्ट विण्डोज, लिनक्स तथा ऍपल के मॅक ओऍस आदि डैस्कटॉप ऑपरेटिंग सिस्ट्मों के अतिरिक्त आइऍओस तथा ऍण्डरॉइड जैसे मोबाइल ऑपरेटिंग सिस्ट्मों में भी इण्डिक यूनिकोड का समर्थन आ गया है। कम्प्यूटर पर ऑफिस सुइट जैसे मॉइक्रोसॉफ्ट ऑफिस, लिब्रे ऑफिस इत्यादि में भारतीय भाषाओं में ठीक उसी तरह काम किया जा सकता है जैसे अंग्रेजी में फलस्वरूप कम्प्यूटर पर भारतीय भाषायें अब केवल टाइपिंग तक सीमित न रहकर शार्टिंग, ईडक्सिंग, सर्च, मेल मर्ज, हैडर–फुटर, फुटनोट्स टिप्पणियाँ (कमेंट) आदि सब कम्प्यूटरों कार्यो में सक्षम हो गयी हैं। यहाँ तक कि आप फाइलों के नाम भी हिन्दी (या किसी अन्य भारतीय भाषा) में दे सकते हैं। वर्तमान में विण्डोज युक्त कम्प्यूटरों में हिन्दी समर्थन पूरी तरह अन्तर्निर्मित है।

प्रकाशन उद्योग द्वारा अत्यधिक उपयोग किये जाने वाले ग्राफिक्स तथा डीटीपी पैकेजों फोटोशॉप, कोरलड्रॉ तथा इनडिजाइन आदि में हिन्दी यूनिकोड सर्मथन आने से भविष्य में प्रकाशन उद्योग भी यूनिकोड को पूरी तरह अपनायेगा। यूनिकोड के प्रति बढ़ती। जागरुकता और प्रकाशन के सॉफ्टवेयर पैकेजों के यूनिकोड मित्र संस्करण आने के मद्देनजर इस दशक के अंत तक कम्प्यूटर और इटंरनेट पर सारा कार्य यूनिकोड हिन्दी में होने लगेगा। इंटरनेट पर भी अब अंतर्राष्ट्रीय वर्ण–कूट मानक यूनिकोड खूब लोकप्रिय हो रहा है और सभी प्रमुख वेबसाइटों जैसे गूगल, विकिपीडिया आदि इसे अपना चुकी हैं। यूनिकोड आधारति वेबसाइटों को देखने के लिये पाठक के पास सम्बन्धित फॉण्ट होने की अनिवार्यता भी नहीं है। अगर कोई वेबसाइट यूनिकोड में है तो उसे किसी भी यूनिकोड सक्षम कम्प्यूटर पर देखा जा सकता है। यूनिकोड की लोकप्रियता संसार भर में दिन–दूनी रात–चौगुनी बढ़ती जा रही है तथा इसके साथ ही हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी वेबसाइटों, ब्लॉग, ऑनलाइन वेब आधारित औजारों/उपकरणों/सुविधाओं का प्रयोग धड़ाधड़ा बढ़ता जा रहा है। ईमेल में सीधे हिन्दी में सम्प्रेषण किया जा रहा है। मोबाइल पर भी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में संक्षिप्त सन्देश (SMS) तथा इंटरनेट संचार किया जाने लगा है।

कम्प्यूटर का प्रयोग और हिन्दी की उपयोगिता

उपयोगिता शब्द से यही समझ में आता है कि किसी वस्तु के उपभोग से जरूरत पूरी होती है। कम्प्यूटर के माध्यम से भी हिन्दी ने काफी लोगों को लाभान्वित होने का मौका मिला है। हिन्दी में शोध करने वाले छात्र–छात्राओं को कम्प्यूटर के माध्यम से हिन्दी भाषा पर कुछ काम करने का मौका मिलता है और यह काम तेजी से आगे बढ़ रहा है। ठीक इस तरह डिजिटल हिन्दी के माध्यम से हर व्यक्ति मन में आए सवालों का समाधान कर सकता है। हिन्दी की सामग्री सीमित है लेकिन इसे पूरी तरह से विकसित होने में समय लगेगा। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि कम्प्यूटर के प्रयोग से हिन्दी की पूरी उपयोगिता ही समाप्त हो गई है। किसान से लेकर हर प्रकार का आने वाला व्यक्ति कम्प्यूटर के युग में हिन्दी भाषा के माध्यम से अपने सवालों का हल निकालने में सफल रहा है और आने वाले समय में यह उपयोगिता और ज्यादा बढ़ेगी।

निष्कर्ष

ज्ञान के क्षेत्र में इन्सानों की सबसे बड़ी उपलब्धि इन्टरनेट की खोज हैं। इस युग में जो इन्टरनेट उपयोग नहीं करता, तो वह व्यावहारिक रूप से निरक्षर माना जाता हैं। आज पूरी दुनिया में इन्टरनेट का उपयोग हो रहा हैं, भले ही कुछ देशों में यह प्रयोग कम हैं और कुछ में ज्यादा भारत की 8% से भी कम आबादी इन्टरनेट का उपयोग करती हैं। यह अनुपात विकसित देशों में 90% आबादी की तुलना मे काफी कम हैं। सूचना प्रोद्योगिकी की शुरुआत भले ही अमेरीका में हुई हो, फिर भी भारत की मदद के बिना यह आगे नहीं बढ़ सकती थी। गूगल के एक वरिष्ठ अधिकारी की ये स्वीकारोक्ति काफी महत्वपूर्ण हैं की आने वाले कुछ वर्षों में भारत दुनिया के बड़े कंप्यूटर बाजारों में से एक होगा और इन्टरनेट पर जिन तीन भाषाओं का दबदबा होगा वे हैं– हिंदी, मेड़रिन और अंग्रेजी, इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती हैं कि आज भारत में 8 करोड़ लोग इन्टरनेट का उपयोग करते हैं। इस आधार पर हम अमेरिका, चीन और जापान के बाद चौथे नंबर पर हैं। जिस रफ़्तार से यह संख्या बढ़ रही हैं, वह दिन दूर नहीं जब भारत में इन्टरनेट उपयोगकर्ता विश्व में सबसे अधिक होगें। आमतौर पर यह धारणा हैं कि कंप्यूटरों का बुनियादी आधार अंग्रेजी हैं। इन्टरनेट पर हिंदी के पोर्टल अब व्यावसायिक तौर पर आत्मनिर्भर हो रहे हैं। कई दिग्गज आईटी कंपनियां चाहे वो याहू हो, गूगल हो या कोई और ही सब हिंदी अपना रही है। मॉइक्रोसॉफ्ट के डेस्कटॉप उत्पाद हिंदी में उपलब्ध हैं। आई बीऍम, सन–मैक्रो सिस्ट्म, ओरिक्ल ने भी हिंदी को अपनाना शुरू कर दिया है। इन्टरनेट एक्सप्लोरर, नेटस्केप, मोजिला, क्रोम आदि इन्टरनेट ब्राउजर भी खुल कर हिंदी का समर्थन कर रहे हैं। आम कंप्यूटर उपभोक्ताओं के लिये कामकाज से ले कर डाटाबेस तक हिंदी में उपलब्ध हैं। ज्ञान के किसी भी क्षेत्र का नाम ले, उससे संबंधित हिंदी वेबसाईट आपका ज्ञानवर्धन के लिये उपलब्ध हैं। आज यूनिकोड के आने से कंप्यूटर पर अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं पर काम करना बहुत ही आसान हो गया हैं। इंटरनेट पर हिंदी का दायरा बहुत तेज गति से लगातार बढ़ रहा है। देश की उन्नति में राष्ट्रभाषा का अहम योगदान होता है। राष्ट्रभाषा ही देश के नागरिकों को एकता के सूत्र में पिरोते हए हमारे विचार व संवाद एक–दूसरे तक पहुंचाती है। इसके चलते हिंदी देशवासियों के बीच एक सेतु की तरह है। इस सेतु को मजबूत व सुविधाजनक बनाने की जरूरत है। इससे सभी इसका उपयोग कर सकेंगे और मातृभाषा का फैलाव होगा। मातृभाषा को सम्मान मिलने से देश का गौरव भी बढ़ेगा। दुनिया में हमारी अलग पहचान होगी व हम दूसरों के लिए खास महत्व रखेंगे।

यह सत्य है कि वर्तमान भारतीय समाज में राजभाषा हिंदी की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। सरकारी फाइलों और कागजी दस्तावेजों से निकल कर अब यह आम लोगों के मोबाइल और पर्सनल कंप्यूटरों तक पहुँच रही है। कहा जा सकता है कि राजभाषा हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी और कंप्यूटर स्थानीयकरण ने नई ऊर्जा का संचार किया है। वह दिन दूर नहीं है कि जब राजभाषा हिंदी में सभी नागरिक सेवाएँ और सरकारी काम करना सहज और सुलभ होगा।

"राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिये आवश्यक है"
महात्मा गांधी

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में कृषिवानिकी की भूमिका

पूजाश्री मिश्रा, सस्मिता बेहरा, मानस रंजन नायक एवं सुभाष चंद्र महापात्र
सर्व भारतीय कृषिवानिकी अनुसंधान परियोजना, ओ.यू.ए.टी., भुवनेश्वर

वर्तमान समय में पृथ्वी पर बढ़ती जनसंख्या और भोजन शैली में परिवर्तन हमारे भविष्य के खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा चुनौती है। समय बदलने के साथ लोगों का जीवन यापन और जीविका भी बदल रही है। प्राकृतिक पर्यावरण में भी परिवर्तन आ रहा है। जलवायु की तेजी से बदलती स्थिति एक भयानक परिस्थिति पैदा कर रही है। कृषि के बिना जनजीवन की कल्पना करना कठिन है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण कृषि क्षेत्र में होने वाली हानियों को सहना पड़ रहा है।

परीक्षणों से पता चला है कि जलवायु परिवर्तन के कारण हमारे देश में 2040 तक सभी फसलों में औसतन 9–10 प्रतिशत उत्पादन में कमी आएगी। इसका मुख्य कारण अनियमित वर्षा और तापमान में वृद्धि है। वैश्विक ताप और जलवायु परिवर्तन जीवों पर विपत्ति पैदा कर रही है। ग्रीन हाउस गैसों जैसे मिथेन, नाइट्रिक ऑक्साइड, फ्लोरिनेटेड गैसों, और कार्बनडाइऑक्साइड की वृद्धि जीवन के लिए धीरे–धीरे असहनीय हो रही है। वर्तमान स्थिति में प्रकृति और पर्यावरण को बचाने की कोशिश करना आवश्यक है।

वनों में मौजूद हरे पेड़–पौधे ही जलवायु के प्रतिकूल प्रभाव को कम कर सकते हैं। अधिक गर्मी, हानिकारक कार्बनडाइऑक्साइड गैस की मात्रा को कम करते हैं। गर्मी को अवशोषित कर और कार्बनडाइऑक्साइड को ऑक्सीजन में बदलकर प्राकृतिक संतुलन बनाए रखते हैं। जैवविविधता वन का मूल आधार है, वैसे ही किसान के खेत में फसल की विविधता भी जरूरी है जिससे हमारे प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखा जा सके। भूजलस्तर बढ़ता है, मिट्टी की संरचना और उर्वरता बढ़ती है, रोग–कीट का प्रभाव कम होता है।

कृषिवानिकी एक पुरानी कृषि पद्धति है, जिसे हम फसलों में उत्पादन बढ़ाने के लोभ में भूल गए हैं। कृषिवानिकी एक भूमि प्रबंधन पद्धति है जिसके द्वारा हम कृषि क्षेत्र में, जंगल के बाहर की जगहों पर लंबे समय तक चलने वाले पेड़ लगाकर जंगल का विकल्प बनाते हैं, प्राकृतिक जंगल पर निर्भरता कम करते हैं। कृषिवानिकी से किसान जनसाधारण अपनी जरूरतों के जंगल उत्पाद जैसे जलावन लकड़ी, घरेलू उपयोग की लकड़ी, औषधि (जड़ी–बूटी), लाख, शहद, तसर आदि प्राप्त कर सकते हैं। प्राकृतिक संसाधन जैसे जल, वायु, भूमि का उचित उपयोग होता है। मृदा अपरदन और खाद की हानि भी कम होती है।

कृषिवानिकी पद्धति में लंबे समय तक चलने वाले जंगल के पेड़ या फलदार पेड़ों की जड़ें अधिक गहराई तक जाती हैं। मिट्टी की निचली सतह से पोषक तत्व और पानी संग्रहीत करते हैं जबकि अंतःफसल की जड़ें कम गहराई तक जाती हैं और केवल मिट्टी की ऊपरी सतह में खेला करती हैं। कम गहराई से पानी और पोषक तत्व लाती हैं इसलिए लंबे समय तक चलने वाले पेड़ और अंतःफसल के बीच कृषिवानिकी प्रणाली प्रभावी होती है।

पेड़ की सूखी पत्तियाँ फसल के मूल मिट्टी में गिरकर सड़ जाती हैं और यह जैविक खाद में परिवर्तित हो जाती हैं। इस से मिट्टी की भौतिक गुणवत्ता बढ़ती है। मिट्टी में लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ती है, जिससे मिट्टी का तापमान, पोषण और जलधारण क्षमता बढ़ती है। कृषिवनीकरण के माध्यम से जैवविविधता का संरक्षण होता है। इससे मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि होती है और हानिकारक कीट–पतंगों की संख्या कम हो जाती है।

कृषिवनीकरण जलवायु अनुकूल कृषि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें फसल की खेती के साथ पशु–पक्षी पालन और वनीकरण को विशेष प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार के वनीकरण द्वारा स्थायी पेड़ न केवल मिट्टी को संरक्षित करते हैं बल्कि निकटवर्ती पर्यावरण के पोषण चक्र में भी सहायता करते हैं। यह मिट्टी की संरचना, उर्वरता और जैवविविधता की रक्षा करता है।

कृषिवनीकरण को सही तरीके से संचालित कर कृषि क्षेत्र में हरियाली बढ़ाई जा सकती है, जिससे जलवायु परिवर्तन को धीमा किया जा सकता है। कृषिवनीकरण के लिए प्राथमिक स्तर पर प्रकाश की आवश्यकता वाली फसलें जैसे–अनाज, तिलहन और दलहनी फसलें, चारा, घास, फूल, फल, सब्जियाँ, पत्तेदार सब्जियाँ आदि अंतःफसल के रूप में लगाई जाती हैं। कृषिवनीकरण पद्धति में जंगल के पेड़ या फलों के अच्छे किस्म के पेड़ लगाए जाते हैं। ये दीर्घकालिक पेड़ 8–10 वर्षों में फल देने योग्य हो जाते हैं। ये पेड़ सीधे बढ़ सकते हैं, कम पानी की जरूरत होती है, सूखे को सहन कर सकते हैं, तेजी से बढ़ते हैं और पत्ते, फूल और फल भरपूर मात्रा में देते हैं। इस प्रकार के सभी गुणवाले पेड़ फसल के रूप में लगाए जाते हैं।

बड़े पेड़ एक पंक्ति में पूर्व–पश्चिम दिशा में ऐसी दूरी पर लगाए जाते हैं जिससे उनकी छाया अन्य पेड़ों पर न पड़े। स्थायी पेड़ 4–5 वर्षों के हो जाने के बाद, जब छाया अधिक हो जाती है, तब छाया सहन करने वाली फसलें जैसे–हल्दी, अदरक, पालक और मूल फसलें जैसे–अरवी, आलू, शकरकंद आदि लगाई जाती हैं। कृषिवनीकरण पद्धति में अल्पकालिक फल देने वाले पेड़ –सहजन, अमरूद लगाए जाते हैं। कृषिवनीकरण के माध्यम से पर्यावरण की सुरक्षा आसानी से हो सकती है। इससे मिट्टी, वायु, जल, जंगल सुरक्षित रहते हैं। कृषिवनीकरण द्वारा हमारे शहर और गाँव में पड़ी बेकार, बंजरभूमि, नदी किनारे, तालाब किनारे, ऊबड़–खाबड़ पहाड़, परती जमीन, सड़क किनारे खाली जगह आदि को हराभरा बनाया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कई जगहों पर जंगल की आग, गर्मी का प्रभाव (सूखा और गर्म हवा), वर्षा की कमी से मरुस्थल का आकार बढ़ रहा है, तापमान वृद्धि, आर्द्रता, हवा की अस्थिर गति और सूर्य की तीव्रता आदि से जीवन और अनुकूलता में कमी आ रही है जिससे आम जनता को नुकसान हो रहा है। फसली मौसम, सब्जियों की फसल नष्ट हो जाती है, जिससे इसकी कीमत बढ़ जाती है और लोगों की आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। यदि प्रतिकूल पर्यावरण लंबे समय तक बना रहे तो सभी लोग व्यक्तिगत स्तर पर असहाय महसूस करते हैं।

जलवायु के हानिकारक तीव्र परिवर्तन को रोकने के लिए एक बेहतर उपाय के रूप में "कृषिवनीकरण" को अपनाना चाहिए जिससे भूमि का बेहतर प्रबंधन, जल का सुचारू उपयोग, मिट्टी की नमी और उर्वरता में वृद्धि होती है। इससे जीवाणुओं और लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ती है। कृषिवनीकरण हमें बाढ़, तूफान, अनियमित बारिश, गर्म हवा, सूखा, जल संकट आदि जलवायु जनित नुकसान से बचा सकता है।

मनुष्यकृत जलवायु के प्रतिकूल परिवर्तन को उसी मनुष्यकृत कृषिवनीकरण पद्धति द्वारा अनुकूल अवस्था में लाया जा सकता है। इससे कई प्रतिकूलताओं को रोका जा सकता है।

"राष्ट्रभाषा, हिन्दी ही बन सकती है क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह स्थान अन्य भाषा को कभी नहीं मिल सकता"।

–महात्मा गाँधी

खेती में पेड़ों का महत्व

ललिता सैनी, ए.एच. सिपाई एवं एफ.के. चौधरी
सरदार कृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, सरदार कृषिनगर–385506 (गुजरात)

भारतीय किसानों को आज मिट्टी में भारी क्षरण (डिग्रेडेशन) एवं क्षति और पारिस्थितिकी तंत्र तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के प्रति खतरों की चुनौतियों से निपटना होगा। इस संदर्भ में यह जाँच बेहद जरूरी है कि खेती में पेड़ों की क्या भूमिका है और किस प्रकार वे आर्थिक रूप से फायदेमंद एवं उपयोगी हो सकते हैं। भारतीय खेती प्रणाली में पेड़ एक अति–आवश्यक अंग हैं क्योंकि ये खाद्य पदार्थ, औषधियाँ, आय एवं कृषि की कच्ची सामग्रियां प्रदान करते हैं। भारतीय किसान पारम्परिक रूप से संभवतः 1,000 से भी अधिक सालों से वन खेती करते रहे हैं। हमारे किसान मिट्टी में क्षरण को रोकने और पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के लिए खेत की जमीन के किनारे पेड़ लगाते थे। पारिस्थितिकी तंत्र में स्थायित्व बनाए रखने में पेड़ों की भूमिका पारम्परिक ज्ञान पर आधारित है और यह तरीका देश भर में खेती की प्रणालियों में शामिल किया गया था।

लेकिन, हरित क्रांति के अंग के रूप में प्रौद्योगिकीय प्रगति की दस्तक के साथ खेती में पेड़ों की भूमिका की उपेक्षा की गई और रासायनिक उर्वरकों एवं रासायनिक कीटनाशकों का भारी इस्तेमाल किया गया। यह उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया, पर अनुसंधान दर्शाता है कि औद्योगिक तरीकों की खेती की तकनीकों ने मिट्टी की गुणवत्ता बिगाड़ी, मिट्टी का अधःपतन किया और जल एवं वायु को प्रदूषित किया है।

पारम्परिक खेती प्रणालियों पर अध्ययन के अनुभव कहते हैं कि जब पेड़ों के साथ खेती की जाए तो उससे किसानों, विशेषकर जीवन–निर्वाही किसानों को कई फायदे होते हैं, जो पेड़ों के बड़े होने पर उनसे आर्थिक लाभ उठा सकते हैं। खेत की उसी भूमि पर एक साथ फसलें और पेड़ उगाने पर वे एक–दूसरे के साथ अंतर–क्रिया करते हैं, जो कई बार किसानों के लिए फायदेमंद होता हैं। इससे खेत की समग्र उत्पादकता बढ़ती है, साथ ही मिट्टी को मल्चिंग के लिए पत्ते और खाद एवं किसानों को जलाने की लकड़ियाँ मिलती हैं तथा मिट्टी के कटाव पर लगाम लगती है। खेत पर विभिन्न रूपों में पेड़ उगाए जाते हैं। भारत में कुछ किसान बाड़–पंक्तियों के रूप में पेड़ उगाते हैं, जो खेत की रक्षा के लिए उसके चारों ओर एक बाड़ का रूप लेते हैं और तेज़ हवाएं रोकते हैं। कुछ बार किसान मिट्टी का कटाव रोकने के लिए अपने खेत की मेढ़ के चारों ओर पेड़ उगाते हैं। भारत के पश्चिमी समुद्री तट के आसपास के किसान लवण–प्रभावित इलाकों में मिट्टी–सुधार के लिए एकासिया निलोटिका (बबूल), एकासिया टोरटिलिज (इजराइली बबूल), प्रोसोपस जुलिफलोरा (अंग्रेजी बबूल/विलायती बबूल) और यूकेलिप्टस प्रजातियों के पेड़ उगाते हैं। 1990 के दशक के आखिरी सालों में खेत–वानिकी ने जोर पकड़ना शुरू किया। लेकिन, मुख्य रूप से बड़ी जोत के किसान खेत–वानिकी के प्रति आकर्षित हुए क्योंकि ये पेड़ उगाने के लिए अपनी जमीन का एक हिस्सा अलग रख सकते थे और खाद्य पदार्थ एवं सब्जियाँ उगाने के लिए बाकी हिस्से का उपयोग कर सकते थे। पर, यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए टिकाऊ नहीं है क्योंकि पेड़ों को काटने से पहले इनके विकास में लंबा समय लगता है और कभी–कभी तो 7–10 साल तक लग जाते हैं। इसलिए, छोटे एवं सीमांत किसान कृषि–वानिकी अपनाने में सक्षम नहीं होते। पर, वे अपने खेत के चारों ओर पेड़ जरूर उगा सकते हैं, जो छाया, खाद के लिए कचरा, उनके खेत के लिए नाइट्रोजन की आपूर्ति (फिक्सेशन) के अलावा कुछ सालों में एक बार आकर्षक वित्तीय लाभ देते हैं।

गुजरात में कृषि वृक्षारोपण के लिए महत्वपूर्ण पेड़

वर्तमान में नौ देशी प्रजातियाँ – नीम (अजार्डिक्टा इंडिका), देशी बबूल (एकासिया निलोटिका), नीलगिरी (यूकेलिप्टस जाति), सरु (कजूरीना जाति), अडूसा (ऐलैंथस जाति), सागवान (टेकोना ग्रैंडिस), सुबबूल (ल्यूकेनिया लुकोसिफुलूस), बंगाली बबूल (एकासिया औरिकलिफोर्मिस) और बाँस कृषि वृक्षारोपण के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक प्रजातियाँ हैं। इन कृषिवानिकी के पेड़ों से राज्य के लकड़ी के उत्पादन और अर्थव्यवस्था में भी सुधार हुआ है। उत्तर गुजरात में कृषिवानिकी वृक्षारोपण में नीम देशी बबूल और अरदुसा तीन मुख्य वृक्ष प्रजातियाँ हैं। अच्छी गुणवत्ता वाले रोपों की आपूर्ति के साथ पैकिंग और प्लाईवुड उद्योगों में इसकी बढ़ती माँग के कारण अर्डुसा एक प्रमुख प्रजाति बन गई है। मध्य गुजरात में नीलगिरी, देसी बबूल और नीम कृषिवानिकी के वाणिज्यिक वृक्षारोपण में मुख्य प्रजाति है। सरु और बंगाली बबूल का रोपण दक्षिण गुजरात के उच्च वर्षा क्षेत्रों में बढ़ रहा है, हालांकि सागवान, खैर और बाँस भी किसानों द्वारा पसंद किए जाते हैं। प्रतिकूल जलवायु और मिट्टी की स्थिति के कारण सौराष्ट्र और कच्छ में अपेक्षाकृत कम कृषिवानिकी बागान हैं। इस क्षेत्र में किसानों द्वारा सरु, नीम और सीताफल पसंद किए जाते हैं। फलों की प्रजातियों में आम (मेनजीफेरा इंडिका), ड्रम स्टिक या सरगवा (मोरिंगा ओलीफेरा), सीताफल या कस्टर्ड एप्पल (एनोना स्क्वामोसल), आंवला (एम्बिलका ओफ्फिसिनालिस), बेर (ज़िज़िफसमॉरिटियना), जामुन (सीजीजियम क्यूमिनी), नारियल (कोकोस नुस्फेरा), चीकू (एकरस सपोटा) और अमरूद या जामफल (सीडियम गुजावा) महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजातियाँ हैं।

नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ (एन.एफ.टी.)

नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ (एन.एफ.टी.) यानी नाइट्रोजन स्थिरिकरण करने वाले पेड़ अक्सर टिकाऊ कृषि–वानिकी प्रणालियों के प्रमुख अंग माने जाते हैं। एन.एफ.टी. द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन फिक्स करने पर पेड़ों एवं फसलों के उत्पादन और मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार आता है। यदि उपज अधिक हो तो पेड़ों से फलियों का संग्रहण आर्थिक रूप से फायदेमंद होता है। ये प्रजातियां न सिर्फ चरागाह की उत्पादकता में वृद्धि करती है, बल्कि मिट्टी के शारीरिक गुणों, जैविक पदार्थ एवं मिट्टी के संरक्षण, नमी और पोषक तत्वों की रिसाइक्लिंग को बढ़ावा देती है। ये प्रजातियां बहुत कम शाखाओं में सीधे उगती हैं, इसलिए खेत पर कतारों में रोपे गए पेड़ सूर्य की रोशनी एवं नमी के लिए प्रतिस्पर्धा किए बिना फसलों को तेज़ हवाओं से बचाते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरिकरण करने वाले पेड़ों के उदाहरण

कैजुरिना वर्ग (जंगली सारू/विलायती सारू) : ओड़ीशा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के किसानों ने कृषि–वानिकी और खेत–वानिकी में एक बड़े स्तर पर कैजुरिना की खेती को अपनाया है। इस पेड़ की प्रजातियों की पसंद का मुख्य कारण है कि ये वार्षिक फसलों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। इसमें कम पानी की जरूरत पड़ती है, सूखा–सहनशीलता है, आसानी से प्रबंधन होता है और रोपण एवं रखरखाव के लिए न्यूनतम श्रमिकों की जरूरत होती है। कैजुरिना के खंभों का मचान बनाने, झोपड़ों के केंद्र में खंभा लगाने, छत बनाने और खदान की टेक लगाने में भी उपयोग किया जाता है। जड़ की ग्रंथियों में एक्टिनोरहिजाल्सिम्बिओंट और फ्रैंकिया होते हैं, जो कैजुरिना को प्रतिवर्ष 40–80 किलो की दर से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को फिक्स करने में समक्ष बनाते हैं।

फैबिसियाई (तरवार) : तेजी से उगने वाले इस पेड़ में असाधारण रूप से उच्च ग्रंथीकरण होता है, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन की उच्च मात्रा को निश्चित करने में मदद करता है और इस प्रकार मिट्टी में सुधार एवं पेड़ों का शीघ्र विकास होता है। इसकी मुख्य रूप से पान के झाड़ के आरोही के रूप में खेती की जाती है।

ग्लीरिसिडिया सेपियम (मैद्रे पेड़) : ग्लीरिसिडिया एक असरदार जीवंत बाड़ बनाता है। वर्षा के मौसम में समय–समय पर एक या दो माह में एक बार इन बाड़ों को कतरने से चारे या हरित खाद के लिए एक बड़ी मात्रा में पत्ते–पत्तियाँ मिलते हैं।

पोंगामिया पिन्नाटा (करंज) : यह एक सदाबहार पेड़ है, जिससे महत्वपूर्ण वसायुक्त तेल का उत्पादन होता है और उसका चिकनाइयों एवं घरेलू लैम्पों में इस्तेमाल किया जाता है। यह आम तौर पर नदी किनारों पर पाया जाता है और छाया एवं खाद के लिए इसे खेतों में उगाया जाता है। बीज से निकाले जाने वाले पोंगाम तेल का चिकित्सीय उद्देश्यों में इस्तेमाल किया जाता है।

सेनेगलियकटेचु (कत्था, खैर) : अपने शीघ्र विकास, नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता, अनुपजाऊ, अम्लीय, क्षारीय, लवणीय या मौसमी जलजमाव वाली मिट्टी के प्रति सहनशीलता एवं शुष्क मौसम और 600–1,000 मिमी.. वर्षा के प्रति सहनशीलता के कारण यह अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में कृषि–वानिकी के लिए एक क्षमतावान पेड़ प्रजाति है। इसकी अंदरूनी लकड़ी आकर्षक फर्नीचर, नक्काशी के अलावा निर्माण कार्यों के लिए भी उपयोगी है। यह पेड़ कागज की लुगदी का एक अच्छा स्रोत है और बड़ी मात्रा में कूड़ा–कचरा पैदा करता है, जिससे मिट्टी समृद्ध होती है। यह पेड़ प्रति हेक्टेयर लगभग 207 किलो वायुमंडलीय नाइट्रोजन की फिक्सिंग में भी सक्षम है।

प्रचलित बाजार की आवश्यकता के अनुसार किसानों द्वारा पसंद किए गए पेड़ों की कटाई का रोटेशन/अवधि

प्रजातियाँ	कटाई का रोटेशन/अवधि
नीम (अजार्डिक्टा इंडिका)	15–25 वर्ष
बंगाली बबूल (एकासिया औरिकलिफोर्मिस)	10–12 वर्ष
सरु (कजूरीना जाति)	8–12 वर्ष
देसी बबूल (एकासिया निलोटिका)	10–15 वर्ष
अडूसा (ऐलैंथस जाति)	8–12 वर्ष
नीलगिरी (यूकेलिप्टस जाति)	6–8 वर्ष

खेती में पेड़ों के फायदें

- खेती के साथ उपयोगी पेड़ उगाने पर वे भूमि के अधिकतम इस्तेमाल का प्रबंधन करते हैं और मिट्टी की बेहतर रक्षा एवं उत्पादन के टिकाऊ तरीके के लिए भूमि के प्राकृतिक रूप को निखारते हैं।
- लोग आमदनी, खाद्य पदार्थों, पोषण और ईंधन एवं चारा जैसी उपयोगी चीजों के लिए पेड़ों पर आश्रित रहते हैं।
- खेती–योग्य भूमि पर पेड़ उगाने से फसल की नाकामी और खाद्य असुरक्षा के दौरान आय का एक अच्छा स्रोत मिलता है। पेड़ उगाने से छोटे किसानों को सर्वाधिक फायदा होता है क्योंकि बुरे समय में उन्हें आय का एक निश्चित स्रोत मिलता है।
- पेड़ किसान की विविध जरूरतें पूरी करते हैं, उत्पादन को बनाए रखते हैं और पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करते हैं।
- पेड़ अनुत्पादनशील या अकल्पनीय आपात स्थितियों में वित्तीय मदद करते हैं।
- पेड़ आजीविका सृजन करते हैं और कृषि–वानिकी आधारित उद्योगों के लिए मददगार होते हैं।
- पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड सोख कर जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव कम करते हैं।

चुनौतियाँ

- उत्पादों के लिए विकसित बाजारों का अभाव
- जागरूकता की कमी
- वित्तीय सहायता का अभाव
- प्रौद्योगिकियों के साथ अपरिचितता
- पेड़ों, फसलों और जानवरों के बीच प्रतिस्पर्धा
- स्पष्ट लाभ क्षमता का अभाव

- प्रदर्शन स्थलों का अभाव
- प्रशिक्षण या विशेषज्ञता का अभाव
- अधिक समय की लागत
- गुणवत्ता वाली पौध / बीज की कमी
- अतिरिक्त प्रबंधन का खर्च
- तकनीकी सहायता का अभाव
- अपर्याप्त भूमि

केलिगोनम पोलिगोनाइडिस या फोग मरू क्षेत्र का मेवा

***धर्मेन्द्र त्रिपाठी, सी.एल. खटीक, के.सी. वर्मा एवं हरफूल सिंह**
कृषि अनुसंधान केन्द्र, (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर) फतेहपुर सीकर
*सहायक आचार्य कृषिवानिकी एवं प्रभारी अखिल भारतीय समन्वित कृषिवानिकी अनुसंधान परियोजना,
कृषि अनुसंधान केन्द्र, फतेहपुर सीकर

केलिगोनम या फोग की करीब 60 प्रजातियाँ झाडी या छोटे वृक्षों के रूप में उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी एशिया व दक्षिणी यूरोप में पाई जाती है। इनमें से केलिगोनम पोलिगोनाइडिस (*Calligonum polygonoides* Linn) जिसे स्थानीय भाषा में फोग, फोगाली, फोक तथा तूरनी आदि नामों से पुकारा जाता है। यह पोलिगोनेएसी कुल का सदस्य है। फोग सफेद व काली रंग की झाड़ी है, जिसमें शाखित शाखाएं होती है। यह अत्यंत शुष्क एवं ओंस दोनों परिस्थिति में जीवित रह सकता है। भारत में यह उत्तरी पंजाब व पश्चिमी राजस्थान में अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त, पाकिस्तान में बागोही पहाडियों मे आर्मीनिया व सीरिया में भी मिलता है। पश्चिमी राजस्थान में केलिगोनम पोलीगोनाइडिस सामान्यतः 80 मिमी. से 500 मिमी. वर्ष वाले तथा 32–40 डिग्री से. तापमान वाले इलाकों में मिलता है। यह रेतीले इलाकों, टिब्बों तथा चटटानी क्षेत्रों में भी उग सकता है।

इसमें पुष्पण प्रायः फरवरी के अंत से मार्च के मध्य तक होता है। फल सामान्यतः मार्च के अंत तक या अप्रैल मध्य तक परिपक्व हो जाते है। इसके एक पौधे से डेढ़ से 4 किलो तक बीज प्राप्त हो सकता है। इन्हें कायिक जनन द्वारा कलमों से भी उगाया जा सकता है। यह धीरे–धीरे बढ़ने वाला पादप है तथा 7–8 वर्षो में एक छोटे वृक्ष की ऊँचाई तक ही पहुँच पाता है।

रेगिस्तान में अत्यंत उपयोगी है फोग

- इसकी टहनियों का तथा पत्तियों का फेन्सिंग व चारे के रूप में तथा जड़ों का ईधन के रूप में उपयोग होता है।
- इसका उपयोग न केवल चारे व ईधन हेतु होता है, वरन इसमें मृदा बांधने का भी गुण होता है इसीलिए इसे मृदा स्थिरीकरण में प्रयुक्त किया जाता है।
- गाँवों में इसके पुष्पों व पुष्प कलियों का उपयोग सलाद के रूप में दही के साथ रायते के रूप में किया जाता है।
- इसके अतिरिक्त यह ऊँटों व अन्य जानवरों हेतु भी पौष्टिक खाद्य भी है। इसके पुष्पों में प्रोटीन अधिक होता है तथा प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट का अनुपात 1:5 होता है।
- इसके पुष्पों का प्रयोग आग से जलने पर दवा के रूप में तथा इसकी पत्तियों का जूस, आकलेटेक्स के विष के प्रतिरोधी के रूप में होता है।
- इसकी जड़ों का सत्व कटेचू के साथ मिलाकर गले की खराश दूर करने में प्रयुक्त होता है।
- फोग का जलीय पेस्ट अफीम के नशे को दूर करने तथा बिच्छू का जहर उतरने के लिए एक एंटीडॉट के रूप में काम में लिया जाता है।
- इस पेड़ का सत्व टाईफोइड के निवारण में प्रयुक्त करते हैं।
- इसके काढ़े को जानवरों के मूत्र समस्याओं के निवारण में किया जाता है।
- इसकी कलियाँ दही के साथ लेने से लू के आघात से बचाव होता है।
- भील एवं गरासिया जाति द्वारा इसके काढ़े से कुल्ले करके मसूढ़ों की सूजन कम करने में भी किया जाता है।

फोग में होते हैं उच्च पोषण क्षमता वाले पोषक तत्व

फोग के फलों में उच्च पोषण क्षमता वाले पोषक तत्व पाए जाते है। फोग के बिना पके फलों में निम्नलिखित पोषक पदार्थ पाए जाते हैं–

18% प्रोटीन, 71.1% कार्बोहाईड्रेट, 9.1% रेशे, 0.7mg/100g विटामिन B2, 670mg/100g कैल्शियम, 420mg/100g फॉस्फोरस तथा 12.7mg/100g आयरन।

एक अध्ययन के अनुसार फोग के पौधे की जड़ों, फूलों, कलियों तथा बीजों में फ्लवोनोइडस, एल्केलोईडस, टेनिन, स्टेरॉयड, फिनॉल्स, टेर्पेनोईडस आदि पाए जाते हैं। इसकी कलियों में एथिल होमोवनिलेट (11.79:) नामक वसीय तेल तथा जड़ों में ड्रीमेनोल (29.42%) नामक वसीय तेल पाया जाता है।

फोग का राजस्थान में सांस्कृतिक महत्व

फोग का राजस्थान में सांस्कृतिक महत्व भी है। गाँवों में फोग के बारे मे कई प्रकार की किवदंतियां प्रचलित है, जैसे– सांगर फोग, थाली को मेवों अर्थात खेजडी की फली व फोग के पुष्प मरू क्षेत्र में शुष्क मेवे के समान है। इसी प्रकार सांगर गनी, केर तिल, आक गना, कपास, फोगास फोटिया बादली बंधे समे की आस भी है, अर्थात यदि खेजड़ी की फली अच्छी है तो गेंहूं की फसल अच्छी होगी, केर अच्छा हो रहा है तो तिल की फसल उत्तम होगी। इस प्रकार आक की वृद्धि अच्छी होने पर कपास की फसल अच्छी होगी तथा फोग से पुष्प अच्छा होगा तो अच्छा समय आने वाला है।

रेड डेटा बुक के संकटग्रस्त पादप की सूची में शामिल है फोग

ईंधन एवं कोयले के लिए इसकी जड़ों के अत्यधिक दोहन के करना रेगिस्तान में फोग की मात्रा लगातार घटती जा रही है। इसी अत्यधिक दोहन के कारण फोग के पौधे को IUCN की रेड डाटा बुक में संकटग्रस्त पादप की सूची में रखा गया है।

इस प्रकार फोग (केलिगोनम पोलगोनाइडिस) मृदा संरक्षण में, शुष्क मेवे के रूप में, स्थानीय दवाई के रूप में तथा ग्रामीणों के सांस्कृतिक महत्त्व के रूप में अत्यन्त उपयोगी है, परन्तु लगातार दोहन के कारण इसकी संख्या अब बहुत कम रह गई है तथा इसके लुप्त होने के आसार बन गए हैं।

खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी मरू भारत के शुष्क और अर्द्ध-शुष्क पारिस्थितिकीय प्रणाली के लिए एक वरदान

छवि सिरोही[1], के.सी. अहलावत[1], विरेंद्र दलाल[1], संग्राम बी. चव्हाण[2], ए.के. हाण्डा[3] एवं ए. अरूणाचलम[3]
[1]वानिकी विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004 (हरियाणा)
[2]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रेस प्रबंधन संस्थान, मालेगाँव, पुणे–413115 (महाराष्ट्र)
[3]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

कृषिवानिकी एक समन्वित भूमि उपयोग प्रथाओं का समूह है, जिसके अंतर्गत कृषि फसलों और पेड़ों को विभिन्न तरीकों में लगाया जाता है। यह प्रणाली भूमि की क्षमता और उत्पादकता को बढ़ाने का एक ठोस तरीका है, जिसमें फसल, चारा, मिट्टी की उर्वरता, औषधीय और पर्यावरणीय मूल्यों और लकड़ी के उत्पादन में लाभ होता है। कृषिवानिकी दृष्टिकोण अर्थव्यवस्था का स्रोत है और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग का माध्यम है। यह सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने, वन क्षेत्र को बढ़ाने और क्षेत्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी मदद कर सकता है। वर्तमान में, भूमि उपयोग और CO_2 के कारण होने वाले वैश्विक तापमान से संबंधित समस्याओं का समाधान करने के लिए कृषिवानिकी प्रणालियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। कृषि भूमि में पेड़ लगाना पर्यावरण में सुधार करता है, संसाधनों के उपयोग और स्थिरता में लाभकारी होता है। पेड़ किसानों को खाद्य फसलों के अलावा फलों या लकड़ी के बायोमास से अतिरिक्त आय भी प्रदान कर सकते हैं। कृषिवानिकी प्रणालियाँ प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाने और सुधारने के लिए नीतियों और प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं और शुष्क क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के रूप में भी कार्य करती हैं। यह दृष्टिकोण अन्य भूमि उपयोग प्रथाओं की तुलना में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को नियंत्रित बनाए रखने में अपनी प्रभावशीलता साबित कर चुका है। कृषिवानिकी प्रणालियाँ, जो स्थायी प्रबंधन गतिविधियों के साथ एकीकृत भूमि उपयोग प्रथा हैं, सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से सकारात्मक और आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छा दृष्टिकोण हो सकता है।

शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में एक तेजी से बढ़ती आबादी की माँगों का सामना करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। कम और अनियमित वर्षा,अत्यधिक तापमान और उच्च वेग वाली गर्म हवाएं इन क्षेत्रों की विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में पोषक तत्वों की कमी और पानी की कमी स्थायी प्रतिबंधन होते हैं। ये कारक संयुक्त रूप से इन क्षेत्रों में कई कृषि, पारिस्थितिकीय,सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का कारण बनते हैं। इस क्षेत्र में इस स्थिति के बावजूद, खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणालियाँ खाद्य, चारा, लकड़ी, जैव विविधता प्रदान करती हैं और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करती हैं। भारतीय कृषि प्रणाली में खेजड़ी का महत्व अद्वितीय है। भारत के शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में खेजड़ी वृक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका है जो पारिस्थितिकीय संतुलन को सुधारने और स्थायी कृषिवानिकी प्रणाली को विकसित करने में मदद करती है। खेजड़ी विश्वभर में उष्णकटिबंधीय और उपउष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाई जाती है क्योंकि इसकी सूखे और उपक्षेत्र में बर्दाश्त करने की क्षमता होती है। खेजड़ी इन क्षेत्रों में पारंपरिक कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि इसकी गहरी जड़ने वाली प्रणाली और नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता होती है। खेजड़ी के वृक्ष शुष्कता और अस्तित्व की कठिनाइयों में भी अच्छा विकास कर सकते हैं और इसलिए इनका प्रयोग कृषिवानिकी और पशुपालन के संयंत्रों में किया जाता है। खेजड़ी एक बहुउपयोगी, सदाबहार, धीमी वृद्धि वाला, जलस्तर से निकटस्थ, कांटेदार वृक्ष है। यह विश्वभर में शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सामान्य पेड़ों में से एक है। इस प्रजाति को अत्यधिक पर्यावरणीय स्थितियों को सहन करने की क्षमता होती है और यह रेगिस्तानी जैसी स्थितियों में उग सकता है। इसके अतिरिक्त, यह अत्यधिक तापमान (10°C से 50°C)के तहत भी उग सकता है। इसके पत्ते, छाल और फलियाँ प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, फाइबर, कैल्शियम, फॉस्फोरस और लोहा से भरपूर होती हैं। हरी फलियाँ विशेष रूप से सब्जी और अचार के रूप में उपयोग की जाती हैं। यह लकड़ी, ईंधन लकड़ी, चारा, छाया प्रदान करने और शुष्क क्षेत्रों में रेतीले टीलों को स्थिर करने के लिए एक अच्छा स्रोत है। इसके अतिरिक्त, पौधे के सभी भाग, पत्तियाँ, फलियाँ, छाल, फूल और बीजों में औषधीय गुण होते हैं।

खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी

खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी के महत्व :

1. **जल संरक्षण :** खेजड़ी वृक्ष अत्यंत कम पानी में भी अच्छी वृद्धि करते हैं और इससे जल संरक्षण को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इनके वृक्षारोपण से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और पानी की बचत होती है।
2. **पशु पालन में उपयोग :** खेजड़ी वृक्ष से मिलने वाला चारा पशु पालन के लिए अच्छी स्तर पर उपयुक्त होता है। इनके फल और पत्तियों से भी पशुओं को पोषण मिलता है।
3. **वातावरण संरक्षण :** खेजड़ी वातावरण संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह प्राकृतिक वनस्पतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके वृक्षारोपण से भूमि की उर्वरता में सुधार होता है, जल संचयन और जल संवर्धन में मदद मिलती है। खेजड़ी के पत्ते, छाल, और फलियाँ प्राकृतिक तरीके से खाद्य और चारा प्रदान करती हैं, जिससे यह जैव विविधता को बढ़ावा देती है। इसके वृक्ष भूमि की धरोहर को बचाने में मदद करते हैं और प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।
4. **आर्थिक लाभ :** खेजड़ी वृक्ष का उपयोग विभिन्न उत्पादों के लिए किया जा सकता है और इससे किसानों को आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है।
5. **जैव विविधता का संरक्षण :** विभिन्न फसलों और जातियों के रोपण के माध्यम से जैव विविधता का संरक्षण करना महत्वपूर्ण है, जो पारिस्थितिकीय नियंत्रण और स्थानीय (खाद्य, चारा, और लकड़ी) और वैश्विक (कार्बन संग्रहण) महत्वपूर्ण परिसेवाओं को प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
6. खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणालियाँ प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षण करती हैं और शुष्क पारिस्थितिकीय प्रणाली के प्रबंधन में सुधार करती हैं।
7. खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणालियाँ दो या अधिक घटकों को शामिल करती हैं, जिससे कृषि प्रणाली को विविधता प्राप्त कराई जाती है और स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य और जीविका सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है।
8. खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणालियाँ बहुविविध होने के कारण एकलफसल से अधिक प्रतिरोधी होती हैं और जलवायु परिवर्तन के जोखिम को कम करती हैं। इस रणनीति में कई प्रजातियों और फसलों के रोपण से जोखिम को कम करने की प्रक्रिया, दीर्घकालिक उत्पादन को स्थिर करती है,आहार विविधता को बढ़ावा देती है और कम प्रौद्योगिकी और सीमित संसाधनों के साथ भी लाभों को अधिकतम करती है।

भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणाली एक ऐसी कृषिवानिकी प्रणाली है जो सबसे सामर्थ्यपूर्ण होगी। खेजड़ी आधारित कृषिवानिकी प्रणालियों का विवरण अच्छी तरह से दस्तावेजीकृत है कि इस क्षेत्र में यह न केवल किसानों की आय और परिवार का पोषण बढ़ाती है,बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी लाभ प्रदान करती है। प्राचीनकाल से ही, खेजड़ी शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में भूमि और वनस्पति संसाधनों के उत्कृष्टीकरण के लिए प्राकृतिक समाधान का कारण रही है।

हार्डविकिया बिनाटा (अंजन)- अर्ध शुष्क क्षेत्र का एक मूल्यवान पेड़

जितेंद्र सिंह, कमल, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा एवं सुरेश रमणन एस.
भा.कृ.अनु.परि.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

हार्डविकिया बिनाटा रॉक्स ब भारतीय मूल का एक मध्यम से बड़ा पर्णपाती वृक्ष है, जो मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी भारत के अर्ध शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में मूलरूप से पाया जाता है। इसे अंजन, कामारा और आचा के नाम से जाना जाता है, और व्यावसायिक रूप से इसे भारतीय काली लकड़ी या अंजन के रूप में जाना जाता है। जीनस हार्डविकिया का प्रतिनिधित्व केवल एक प्रजाति, *हार्डविकिया बिनाटा* द्वारा किया जाता है। इस प्रजाति के पेड़ जलवायु और एडैफिक स्थितियों के आधार पर ऊँचाई में 9–30 मीटर और परिधि में 0.9–3 मीटर तक पहुँच सकते हैं। इसके लिए उपयुक्त स्थान की विशेषता गर्म और शुष्क ग्रीष्मकाल, लंबे समय तक सूखा और तीव्र धूप है। यह बलुआ पत्थर, क्वार्टजाइट, शिस्ट, नीस और मिट्टी के नीचे बजरी और गहरी चट्टानों वाले क्षेत्रों सहित विभिन्न मिट्टी संरचनाओं पर अच्छी तरह से बढ़ता है। इसमें शुष्क क्षेत्रों में चट्टानी और उथली मिट्टी पर जीवित रहने की क्षमता है जहाँ अन्य वन वृक्ष प्रजातियाँ पनपने के लिए संघर्ष करती हैं। लकड़ी, ईंधन लकड़ी, चारा, कोयला बनाने, फाइबर, फर्नीचर बनाने और मिट्टी और जल संरक्षण के लिए उपयोग किया जाता है।

फीनोलॉजी

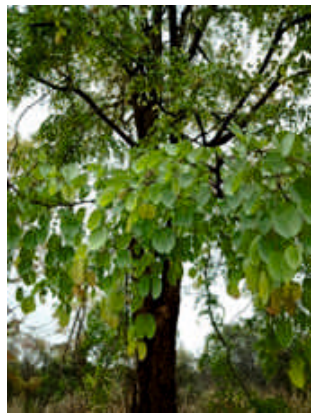

एच. बिनाटा पेड़ की नई पत्तियाँ तांबे के रंग की होती हैं और अप्रैल के दौरान हरी और रोएंदार हो जाती हैं। परिपक्व पत्तियाँ मार्च में गिरती हैं और अप्रैल में फिर से उगने लगती है, जिससे पेड़ थोड़े समय के लिए पत्तीरहित हो जाता है। अप्रैल और मई में, पेड़ को गर्मी से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए बिनालिग्निफाइड शाखाओं को गिरा देना चाहिए। पुष्पक्रम का विकास और चरम पुष्पन जुलाई से सितंबर में होता है, फलियाँ नवंबर में दिखाई देती हैं और मई में पकती हैं। एक अच्छा बीज वर्षहर 3 या 5 साल में होता है, सूखे से अच्छी गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। बीज–प्रचारित पेड़ 20–25 साल में फूल देना शुरू कर देते हैं, जबकि कॉपिस–उगाए गए पेड़ 7 साल की उम्र में फूल देना शुरू कर सकते हैं।

वितरण और पारिस्थितिकी

इसको शुद्ध फसल के रूप में या अन्य वृक्ष प्रजातियों के साथ मिलकर विकसित किया जा सकता है। इसके वितरण क्षेत्र में शुष्क और गर्म गर्मी का मौसम, बार–बार सूखा और बरसात के मौसम में न्यूनतम वर्षा होती है। अधिकतम तापमान 47°C से 48°C के बीच रहता है, न्यूनतम 1 से 10°C और कम वर्षा 250 मिमी. से 1000 मिमी. प्रतिवर्ष होती है। *एच. बिनाटा* गहरी और छिद्रपूर्ण मिट्टी पर पनपता है जिसमें अंतर्निहित चट्टानें होती हैं, और अम्लीय से तटस्थ मिट्टी को सहन कर सकता है। दक्षिणी भारत में, यह ट्रैपरॉक की उथली कठोर बजरी वाली मिट्टी पर सामूहिक पैच के रूप में उगता है। कर्नाटक के बेल्लारी वन प्रभाग में, यह सामूहिक रूप से उगता है, जिसे हार्डविकिया बिनाटा प्रभाग के रूप में जाना जाता है।

प्रचार और पत्तियों के चारे की गुणवत्ता सम्बंधी विशेषताएँ

एच. बिनाटा को बीजों के साथ–साथ वानस्पतिक विधि बीज के माध्यम से, वानस्पतिक माध्यम से, और एयर लेयरिंग माध्यम से भी आसानी से प्रचारित किया जा सकता है।

क्रूडप्रोटीन :	9.86–11.2%	शुष्कपदार्थ :	42.21%
कार्बनिकपदार्थ :	93.2%	क्रूडफाइबर :	28.16%
ईथरअर्क :	6.17%	कुलराख सामग्री :	8.92%
एसिडडिटर्जेंटलिग्निन :	15.85%	हेमी–सेलूलोज :	16.43%
सेलूलोज :	18.36–25.7%	शुष्क पदार्थ :	52.41%
कार्बनिक पदार्थ :	56.46%	अपरिष्कृत प्रोटीन :	44.53%
ईथर अर्क :	48.96%	क्रूड फाइबर :	50.21%
नाइट्रोजन मुक्त अर्क :	62.66%		

वानस्पतिक वर्णन

हार्डविकिया बिनाटा एक ऐसा पेड़ है जो मध्यम से बड़ा हो सकता है, तने जिसकी ऊँचाई 9–30 मीटर और चौड़ाई 0.9 से 3 मीटर तक होती है। इसके गूदे बेलनाकार और सीधे होते हैं, साफ गूदे की लंबाई 7 से 15 मीटर होती है। पौधे के विकास के चरण के दौरान, तने की छाल भूरी और चिकनी हो जाती है, पूर्ण विकसित पेड़ों में यह गहरे भूरे रंग की हो जाती है और दरारयुक्त हो जाती है। पेड़ का मुकुट शंक्वाकार होता है और पुराने पेड़ों में पार्श्व में बाहर की ओर फैला होता है। शाखाएँ हरे–भरे पत्तों वाली पतली होती हैं, जबकि पत्तियाँ चमड़े जैसी, भूरी–हरी और छोटी होती हैं। पुष्पक्रम या तो अक्षीय या टर्मिनल पैनिकल रेसमेम्स है जिसमें छोटे पीले हरे उभयलिंगी फूल लगते हैं। फल एक अघुलनशील फली, चपटा, लांसोलेट आकार का, उभरा हुआ, नुकीला, संकुचित, लाल–भूरे रंग का, बाहरी सतह पर समानांतर अनुदैर्ध्य शिराओं वाला होता है। बीज भूरे, चपटे, गैर–एंडोस्पर्मिक, उप–रेनिफॉर्म और गोल आकार के होते हैं। मूसला जड़ मजबूत और सीधी होती है, मिट्टी के अंदर गहराई तक जाती है और कठोर तने को तोड़ देती है। पार्श्व जड़ प्रणाली मजबूत लेकिन कम फैलने वाली होती है।

उपयोग

इमारती लकड़ी: लकड़ी को इसकी कठोरता और घनत्व के कारण कक्षा के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जो इसे मध्यम टिकाऊ और मजबूत बनाता है। यह अत्यधिक क्षय और दीमक प्रतिरोधी है। हार्टवुड गहरे लाल भूरे रंग का होता है, जबकि सैपवुड हल्के सफेद रंग का होता है। इसकी टिकाऊपन और भारीपन के कारण लकड़ी का उपयोग घरों, पुलों, बीमों, कृषि उपकरणों और रेलवे स्लीपरों के निर्माण में किया जाता है। हार्टवुड में खिंचाव हो सकता है।

ईंधन की लकड़ी: पेड़ की शाखाएँ उच्च गुणवत्ता वाली ईंधन लकड़ी हैं, जिनका उपयोग स्थानीय लोग करते हैं,इस्का कैलोरी मान लगभग 4952 किलो कैलोरी / किग्रा है।

चारकोल बनाना: उत्पादन के लिए उपयोग की जाने वाली लकड़ी अपने उच्च मूल्य के कारण अत्यधिक कैलोरी युक्त होती है।

चारा: *एच. बिनाटा* की पत्तियाँ अपने उच्च कच्चे प्रोटीन, खनिज सामग्री और स्वादिष्ट स्वाद के कारण छोटे और बड़े दोनों जुगाली करने वालों के लिए अत्यधिक पौष्टिक होती हैं।

खाद और गीली घास: पेड़ की पत्तियों का उपयोग खाद के उत्पादन और गीली घास के रूप में किया जाता है।

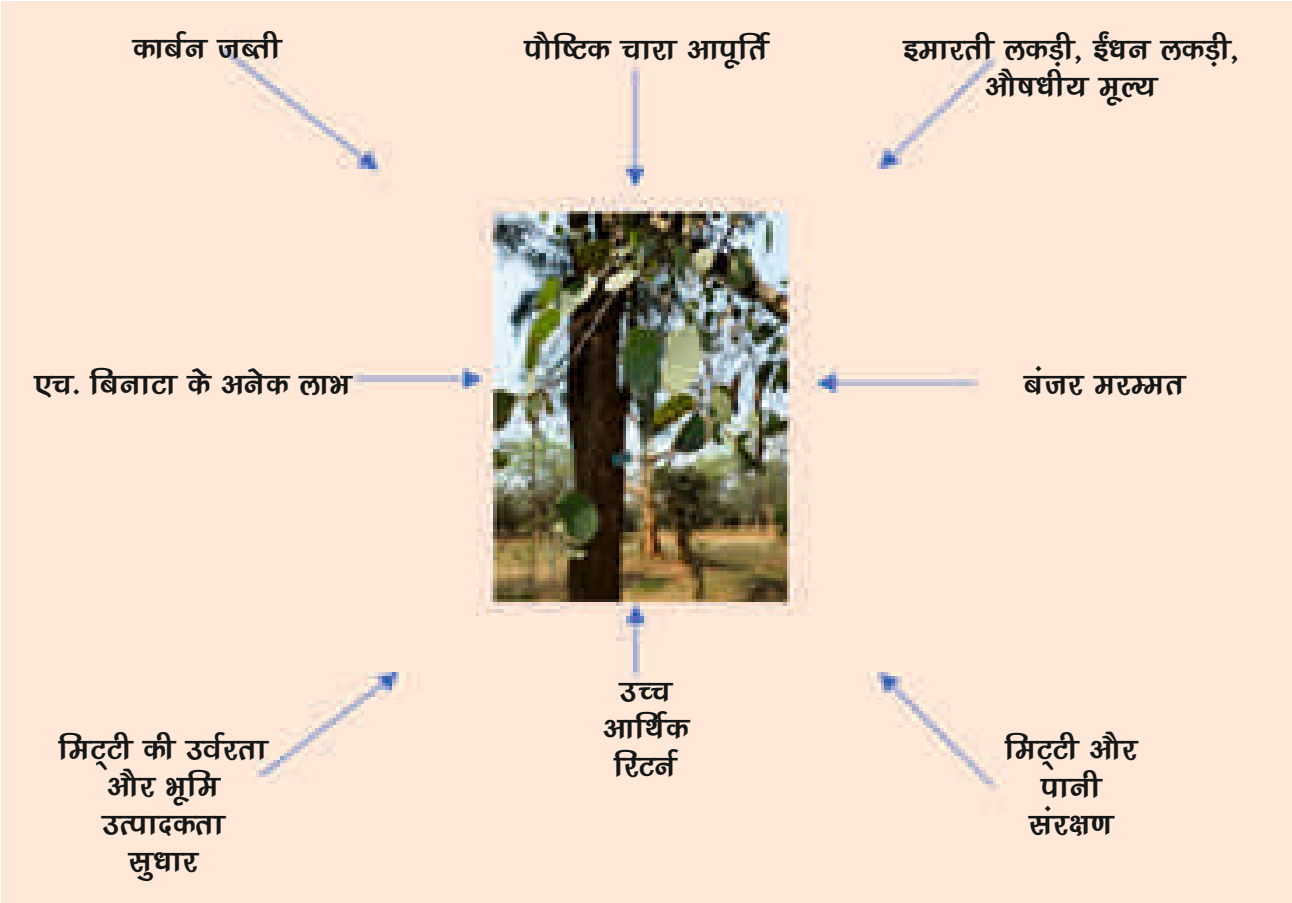

रस्सी बनाना: युवा पेड़ की छाल मजबूत लाल भूरे फाइबर का एक मूल्यवान स्रोत है जिसे "येपी फाइबर" कहा जाता है, जिसका उपयोग रस्सी और लकड़ी के मिश्रण बनाने में किया जाता है।

औषधीय उपयोग: *एच. बिनाटा* में औषधीय गुण हैं, छाल और पत्ती के अर्क संभावित एंटीफंगल और जीवाणुरोधी एजेंट हैं। रूट यूडेड्स कैंसर–विरोधी साबित हुए हैं।

कीट और बीमारियाँ

नर्सरी में एफिड के हमले से *एच. बिनाटा* की पौध को नुकसान हो सकता है, विशेष रूप से युवा पौधों और कॉपपिस शूट में, जिन्हें हिरण, मवेशी, बकरी और भैंस भारी मात्रा में चरते हैं, जबकि परिपक्व पेड़ों में कोई महत्वपूर्ण कीट या रोग कीट नहीं होते हैं।

कृषिवानिकी पद्धतियाँ

एच. बिनाटा अपनी नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता, गहरी भेदन वाली मूसला जड़ के कारण एक आदर्श कृषिवानिकी वृक्ष है। यह मिट्टी की उर्वरता को बहाल कर सकता है और अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में अधिकांश कृषि योग्य फसलों के अनुकूल है। *एच.बिनाटा* के साथ एवेना सैटिवा, ट्राइफोलियम अलेक्जेंड्रिनम, अरहर–गेहूं, ज्वार–गेहूं, सरसों, चना, सूरजमुखी, अरंडी और घास जैसी फसलों की अंतरफसल खेती भी उपयुक्त है। पेड़ छंटाई प्रथाओं, अच्छी कटाई और परागण क्षमता के लिए उपयुक्त है। यह थोड़े समय के लिए पत्ती रहित रहता है, जिससे यह सिल्वीचारा के तहत चारा उत्पादन के लिए उपयुक्त हो जाता है। एच. बिनाटा के कई उपयोग हैं, जिनमें ईंधन, चारा, लकड़ी का कोयला बनाना, फाइबर, लकड़ी, फर्नीचर बनाना और मिट्टी और जल संरक्षण शामिल हैं।

सेमी. शुष्क क्षेत्रमें एच. बिनाटा की पूरी क्षमता का दोहन करने के लिए आगे का रास्ता

अर्ध–शुष्क क्षेत्र में *एच. बिनाटा* की क्षमता महत्वपूर्ण है। इसकी क्षमता का पूरी तरह से दोहन करने के लिए, किसानों को इसके महत्व और चारे की गुणवत्ता विशेषताओं के साथ–साथ इसकी जलवायु शमन क्षमता के बारे में शिक्षित करने की आवश्यकता है। अनुसंधान संगठनों और प्रमाणित नर्सरियों को बंजर भूमि वृक्षारोपण, वनीकरण कार्यक्रमों और अंकुर आपूर्ति के लिए बेहतर गुणवत्ता वाले रोपण स्टॉक को सुनिश्चित करना चाहिए। अनुसंधान संगठनों को उच्च बायोमास उपज देने वाले और तेजी से बढ़ने वाले विशिष्ट जीनोटाइप विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। वृक्षों और वृक्ष–आधारित उत्पादों के लिए ऋण, बीमा और बाजार समर्थन सुविधाओं सहित संस्थागत बुनियादी ढाँचा बनाया जाना चाहिए। कृषिवानिकी मॉडल में कौशल और क्षमता विकसित करने के लिए किसानों के लिए एक व्यापक प्रशिक्षण योजना विकसित की जानी चाहिए। खेत में उगाई जाने वाली लकड़ी की प्रजातियों और गैर–लकड़ी वन उत्पादों की कटाई, परिवहन और बिक्री से संबंधित कानूनों और विनियमों को एकरूप किया जाना चाहिए, और किसानों को अपने उत्पाद बेचने का अधिकार होना चाहिए। उत्पादकों और लकड़ी और गैर–लकड़ी वन उत्पाद उद्योगों के बीच संबंध स्थापित किए जाने चाहिए और किसान–अनुकूल साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए। एच. बिनाटा की जनसंख्या घट रही है, और इसके संरक्षण के लिए बड़े पैमाने पर प्रसार पर अनुसंधान संगठनों और वन विभागों द्वारा पहल की जानी चाहिए।

Agrisearch with a human touch
केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान
"परती भूमि की बहाली, कृषिवानिकी से हो हरियाली"

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाने वाली जंगली सब्जियाँ और उनकी औषधीय विशेषताएँ

कमल, जितेन्द्र सिंह, जागृति कुशवाहा, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा एवं सुरेश रमणन एस.
भा.कृ.अनु.परि.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

गेठी (*डायोस्कोरिया बल्बीफेरा*)

उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों के करीब 2000 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में एक कंदमूल पाया जाता है। जिसे गेठी के नाम से जाना जाता है। यह औषधीय गुणों का धनी हैं। इसको एयर पोटैटो भी कहा जाता है। आलू के आकार की दिखने वाली गेठी गर्म तासीर की होती है। पहाड़ों में बरसात के बाद अक्टूबर और नवम्बर के महीने में यह बेलों में लगी देखने को मिल जाएंगी। इसके बारे में चरक संहिता में भी लिखा गया है। इसका मुख्य रूप से नाइजीरिया देश में उत्पादन होता है। इसको उबालकर या फिर राख में भूनकर खाया जाता है। कुछ लोग इसे सलाद के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं।

औषधीय विशेषताएँ

गेठी को दवाई के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। यह खाँसी ठीक करने में लाभदायक है। इसमें ग्लूकोज और फाइबर काफी मात्रा में होता है। जिस वजह से यह एनर्जी बूस्टर का भी काम करती है। इसमें कॉपर, आयरन, पोटेशियम, मैग्नीज भी होता है। यह विटामिन बी का एक बेहतरीन स्रोत है। इसका लेप लगाने से फोड़े फुंसी भी ठीक हो जाती हैं। इसका सेवन कोलेस्ट्रोल को कम करने में भी मदद करता है। शरद ऋतु के दौरान गेठी बाजार में देखने को मिल जाएगी इसकी कीमत 60 से 70 रुपये प्रति किलो तक होती है। हालांकि पहाड़ का यह कंदमूल अब विलुप्ति होने की कगार पर है। औषधीय गुणों से भरपूर इस पहाड़ी सब्जी को संरक्षित करना बेहद जरूरी है।

रामकरेला (*सिलेंथरा पेडाटा*)

उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाने वाली कई तरह की सब्जियाँ खाने में जितनी स्वादिष्ट होती हैं, उतनी ही औषधीय गुणों की भी धनी होती हैं। इन्हीं में एक नाम रामकरेला है। आमतौर पर करेला स्वाद में कड़वा होता है। लेकिन पहाड़ में पाए जाने वाले रामकरेले का स्वाद कड़वा नहीं होता है। इसी वजह से कुछ जगहों पर इसे मीठा करेला के नाम से भी जाना जाता है। पहाड़ में इसे अलग–अलग नाम से जाना जाता है। जिसमें जंगली करेला, परमोला, शामिल हैं। वैसे इसे रामकरेला क्यों कहा जाता है। इस सब्जी के साथ एक किवदंती जुड़ी है। कहा जाता हैं कि भगवान राम ने वनवास के दौरान इसका सेवन किया था। जिस वजह से इसे यह नाम मिला वहीं कुछ लोगों का कहना है। कि यह कई बीमारियों के लिए रामबाण इलाज माना गया है। जिस वजह इसे यह नाम दिया गया।

औषधीय विशेषताएँ

उत्तराखंड के पहाड़ी राज्यों में रामकरेले का उत्पादन सितंबर और अक्टूबर के महीने में होता है। इसकी खासियत यह है, किं कम मेहनत के बावजूद भी इसका ज्यादा उत्पादन हो जाता हैं। इस पहाड़ी करेले में भरपूर मात्रा में आयरन पाया जाता है। जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। इसके अलावा इसमें एंटीऑक्सीडेंट प्रॉपर्टीज भी होती है। यह खून में कॉलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद करता है। साथ ही यह शुगर और हाई ब्लड प्रेशर को ठीक रखने में भी फायदेमंद है।

- **ब्लड शुगर कंट्रोल के लिए**

  रामकरेला शुगर के मरीजों के लिए बहुत ही फायदेमंद होती है। यह शरीर में इंसुलिन के लेवल को मेंटेन करती है। जिससे हाई ब्लड शुगर की प्रॉब्लम नहीं होती है। रामकरेला खाने से डायबिटीज को कंट्रोल में रखा जा सकता हैं साथ ही टाइप 2 डायबिटीज के खतरे से बचा जा सकता हैं।

- **ब्लड प्रेशर**

  उच्च रक्तचाप मरीजों के लिए भी यह बहुत ही लाभकारी होती है। इसे खाने से ब्लड प्रेशर सही रहता है। यह कोलेस्ट्रॉल को कम कर ब्लड प्रेशर को सही रखती है।

- **मोटापे के लिए**

  शारीरिक वजन के लिए भी रामकरेला अच्छा होता है। यह फाइबर से भरपूर होती है। यह भूख को कंट्रोल करने में मदद करती है। जिससे वजन कम कर सकते हैं। इस सब्जी को खाने से बार–बार भूख नहीं लगती है। रामकरेला खाने से वजन को कम कर आसानी से मोटापे को कम कर सकते हैं।

लिंगड़ा (*डिप्लाजिम एस्क्यूलेंटम*)

पहाड़ में कई तरह की वनस्पतियाँ देखने को मिल जाएंगी। जबकि यह वनस्पतियाँ औषधीय गुणों से भरपूर होती हैं। इन्हीं में एक वनस्पति है लिंगड़ा। जिसे लिंगुड़ा भी कहते हैं पहाड़ों में इसकी सब्जी बनाकर खाई जाती हैं इसके इस्तेमाल से तमाम बीमारियों से बचा जा सकता है। लिंगड़ा एक जंगली वनस्पति हैं.यह पौधा पहाड़ी क्षेत्रों में नमी वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। दुनियाभर में इस वनस्पति की करीब 400 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। 1900 से 2200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाने वाला यह वनस्पति एक खाद्य फर्न है।

औषधीय विशेषताएँ

लिंगुड़ा की सब्जी को प्रोटीन, कैल्शियम और विटामिन समेत कई पोषक तत्वों का खजाना माना जाता है। करीब 1 कप लिंगुड़ा की सब्जी में 6 ग्राम प्रोटीन, 3 ग्राम फाइबर, 2 मिलीग्राम आयरन, 31 मिलीग्राम विटामिन सी, 8 ग्राम कार्बन और 1 ग्राम फैट पाया जाता है। इस सब्जी में कई पावरफुल फैटी एसिड और भरपूर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं। इस सब्जी में पोटेशियम की मात्रा भी भरपूर होती है। इसमें कैलोरी और फैट की मात्रा कम होती है। जिसकी वजह से इस पहाड़ी सब्जी को सेहत के लिए चमत्कारी माना जा सकता है। लिंगुड़ा की सब्जी का अचार बनाकर भी खाया जा सकता है। बरसात के मौसम में यह सब्जी 60 से 70 रुपये प्रति किलो में मिलती है।

- यह सब्जी फाइबर का अच्छा स्रोत है। लिंगुड़ा की सब्जी खाने से शरीर में जमे बैड कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद मिल सकती है। इससे हार्ट डिजीज का खतरा भी कम हो जाता है।
- शुगर के मरीजों के लिए भी यह सब्जी बेहद लाभकारी साबित हो सकती है। इसमें पोटेशियम की भरपूर मात्रा होती हैं। जिसकी वजह से लिंगुड़ा की सब्जी का सेवन करने से ब्लड शुगर कंट्रोल करने में मदद मिलती है।
- ब्लड प्रेशर को कंट्रोल करने में भी लिंगुडा की सब्जी बेहद कारगर साबित हो सकती है। इसमें मौजूद पोषक तत्व ब्लड प्रेशर को मेंटेन रखते हैं। यह सब्जी पेट की सेहत के लिए भी बेहद लाभकारी होती है।
- लिंगुड़ा की सब्जी खाने से शरीर का इम्यून सिस्टम बेहतर हो सकता है क्योंकि इसमें विटामिन सी की भरपूर मात्रा होती है। कमजोर इम्यूनिटी वाले लोगों के लिए यह सब्जी वरदान साबित हो सकती है।

तरूड़, तौड़ या तैडू (*डाइसकोरिया डेल्टोइडिया*)

तल्ड (तरूड़) जिसे उत्तराखंड के कुमाऊँ में तौड़ या 'तरूड़' और गढ़वाल में ''तैडू'' या "तेडू" के नाम से जाना जाता है। तरूड़ एक तरह का कंद मूल आहार है। जिसकी सब्जी बनाई जाती हैं और यह पहाड़ो में ज्यादा उगया जाता है।तरूड़ का पौधा बेल के रूप में हिमालयी क्षेत्रों में कश्मीर से लेकर हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, असम, अरुणाचल प्रदेश और पश्चिमी चीन तक विभिन्न स्थानों में समुद्र तल से 500 से 3000 मीटर तक की ऊँचाई वाले स्थानों में बंजर जमीन पर या जंगलों में जंगली बेल के रूप में उगता पाया जाता है। पहाड़ों में कहीं–कहीं घरों में भी लोग इसे पहाड़ी खेतों के मेंड़ के ढलान पर या बड़े घड़े के अंदर भी उगाते हैं। कुमाऊँ में घर पर उगाये गए तरूड़ को घर तरूड़ और जंगल से प्राप्त तरूड़ के बण तरूड़ कहते हैं। तरुड़ को हमारे देश में विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे तल्ड, तरूल, तैड़ आदि, अंग्रेजी में इसे हिमालयन वाइल्ड यम या नेपाल यम के नाम से जाना जाता है।

औषधीय विशेषताएँ

चिकित्सकीय उपयोग में तरूड़ मुख्य रूप से सक्रिय यौगिक डायोसजेनिन के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण वनस्पति माना जाता है। प्रोजेस्टेरोन और अन्य स्टेरॉयड दवाओं के निर्माण के लिए आधुनिक चिकित्सा में डायोसजेनिन का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।ये गर्भ निरोधकों के रूप में और जननांग अंगों के विभिन्न विकारों के उपचार के साथ–साथ अस्थमा और गठिया जैसे अन्य रोगों के उपचार में उपयोग किए जाते हैं। डायोसजेनिन का प्रयोग चिकित्सा विज्ञान में सेक्स हॉरमोन तथा गर्भ–निरोधक के अलावा बॉडी बिल्डर्स द्वारा शरीर का स्तर बढ़ाने के लिए भी किया जाता हैं।

हर राष्ट्र के पास अपना चिन्तन होता है, अपनी भावनाएँ होती है जिसे वह अपनी भाषा में व्यक्त करता है। मैं यह मानता हूँ कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होती, बल्कि उससे बोलने वालों के संस्कृति और संस्कार भी जुड़े होते हैं। भाषा जहाँ अपनी सांस्कृतिक विरासत से उपजी हुई होती है, वहीं वह इस विरासत को आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाती भी है। इसलिए भाषा का प्रश्न केवल एक अभिव्यक्ति के माध्यम का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक विरासत और हमारे देश के लोगों के संस्कार से भी जुड़ा है। फिर लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति में तो भाषा का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि जनता भी कामकाज में सक्रिय रूप से भाग ले सकती है, जबकि राजकाज ऐसी भाषा में हो, जिसे वहाँ की जनता अच्छी तरह से समझ सकें।

– डॉ. शंकर दयाल शर्मा

राष्ट्रभाषा का प्रचार करना, मैं राष्ट्रीयता का एक अंग मानता हूँ।

– डा. राजेन्द्र प्रसाद

कृषिवानिकी को बढ़ावा देने में उद्योगों की भूमिका

आकाँक्षा जैन, प्रियंका सिंह, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा, अंगिता सिंह, रिंकू सिंह, अंकित वर्दिया एवं सुरेश रामणन एस.

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

भारत में वनों को मुख्य रूप से सामाजिक और पर्यावरणीय संसाधन, और गौण रूप से व्यावसायिक संसाधन के रूप में माना जाता है। एशियाई क्षेत्र में लकड़ी और लकड़ी उत्पादों के प्रमुख उत्पादकों और उपभोक्ताओं में से एक है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण तथा तकनीकी विकास ने लकड़ी और लकड़ी के उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए महत्वपूर्ण माँग उत्पन्न की है भारत के वनों में कम उत्पादकता (0.7 घन मीटर हेक्टेयर वर्ष) के साथ–साथ प्राकृतिक वनों से लकड़ी प्राप्त करने में कानूनी प्रतिबंध हैं जिसके परिणामस्वरूप कच्चे माल की पूर्ति के लिए कृषि और कृषिवानिकी प्रणालियों की स्थापना पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। लकड़ी आधारित औद्योगिक क्षेत्र में कृषिवानिकी के सकारात्मक योगदान के अलावा भारत में कृषिवानिकी पारंपरिक रूप से निर्वाह खेती के रूप में की जानी जाती है। तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय (टीएनएयू) ने औद्योगिक कृषिवानिकी में एक मूल्य श्रृंखला बनाकर अनुसंधान का बीड़ा उठाया है जिसे शुरू में तकनीकी संगठनात्मक और विपणन हस्तक्षेपों के माध्यम से 200 हेक्टेयर कृषि भूमि में प्रदर्शित किया गया था। लुगदी लकड़ी प्लाइवुड लकड़ी और माचिस की लकड़ी की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए बाजार समर्थन प्रणाली के प्रावधान ने पेड़ उगाने वाले किसानों के बीच एक महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। इन मूल्य श्रृंखला नवाचारों और हस्तक्षेपों को बनाए रखने के लिए एक संस्थागत तंत्र अर्थात् कंसोर्टियम ऑफ इंडस्ट्रियल एग्रोफोरेस्ट्री, 2015 में स्थापित किया गया था जिसने सभी मूल्य श्रृंखला को जोड़ा और संपूर्ण उत्पादन से लेकर उपभोग प्रणाली तक के मुद्दों को हल करने में सहायता की। पिछले कुछ वर्षों से कृषिवानिकी किसानों की सामाजिक और पर्यावरणीय चिंताओं की सुरक्षा के साथ–साथ क्षेत्र वृद्धि उत्पादकता और लाभप्रदता में सुधार के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। औद्योगिक कृषिवानिकी मॉडल पर कंसोर्टियम–आधारित मूल्य श्रृंखला में न केवल भारत के भीतर बल्कि वैश्विक परिदृश्य में कहीं और भी बहुत अच्छी प्रतिकृति क्षमता है।

प्रमुख लकड़ी आधारित उद्योग

1988 की राष्ट्रीय वन नीति ने देश में पहली बार लकड़ी आधारित उद्योगों के लिए दिशानिर्देश और नियम प्रदान किए हैं और इन लकड़ी आधारित उद्योगों को अपने स्वयं के कच्चे माल के संसाधन उत्पन्न करने का निर्देश दिया है। उद्योगों को प्रशासित मूल्य पर कच्चे माल की नियमित आपूर्ति की प्रथा लगभग बंद हो गयी। नीति दिशानिर्देश में लकड़ी आधारित उद्योगों को आवश्यक इनपुट, प्रौद्योगिकी, ऋण सुविधाएं प्रदान करके और मूल्य सहायक तंत्र सुनिश्चित करके किसानों और व्यक्तियों के साथ सीधे संबंध के माध्यम से अपने स्वयं के वृक्षारोपण स्थापित करने का निर्देश दिया गया है। हालाँकि, कई उद्योगों ने नई नीति को गंभीरता से नहीं लिया है, लेकिन कई उद्योगों ने विभिन्न हितधारकों के साथ मिलकर औद्योगिक लकड़ी वृक्षारोपण कार्यक्रम में प्रवेश किया है। जो उद्योग मुख्य रूप से लकड़ी और लकड़ी के अवशेषों का उपयोग करते हैं उन्हें वन या लकड़ी आधारित उद्योग माना जाता है। लकड़ी आधारित उद्योग जो कच्चे माल के लिए जंगल या वृक्षारोपण पर निर्भर हैं, वे हैं लुगदी और कागज, माचिस, लिबास, प्लाईवुड, पार्टिकल बोर्ड, खेल के सामान, कृषि उपकरण, निर्माण उद्योग आदि।

लकड़ी की विकसीय पद्धति और माँग

वर्ष	माँग (मिलियन)	प्रति वर्ष औसत प्रतिशत वृद्धि
2000	5800	
2005	7400	552
2010	9500	568
2015	12300	589
2020	15300	488

स्रोत–फूड एग्रीकल्चर आर्गेनाईजेशन (2009)

कृषिवानिकी के पर्यावरणीय और सामाजिक लाभ

कृषिवानिकी भूमिगत जल के स्तर को बढ़ाने में सहायक होता है। कृषिवानिकी कृषकों को आर्थिक सुरक्षा भी प्रदान करती है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे– बाढ़, सूखा आदि के प्रभावों को इसके माध्यम से कम किया जा सकता है फसल के क्षतिग्रस्त होने पर वैकल्पिक स्रोत के तौर पर वानिकी का विकल्प कृषक के पास रहता है। कृषिवानिकी मौजूदा समय की माँग है। आज जिस प्रकार निरंतर कम होती कृषि योग्य भूमि पर बढ़ती जनसँख्या का दबाव है वह जल्द ही विश्व में खाद्यान्न संकट एवं वैश्विक पर्यावरण के लिए संकट का कारण बनेगा अतः जलवायु परिवर्तन से लड़ने, रोजगार सृजन, खाद्य सुरक्षा की समस्या को दूर करने, वनोन्मूलन के संकट से निपटने इत्यादि अनेक मोर्चों पर कृषिवानिकी एक सशक्त हथियार है इसके अनेक लाभ हैं जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है :

1. कृषिवानिकी में भूमि का सुनियोजित एवं वैज्ञानिक उपयोग किया जाता है। इसका लाभ यह है कि भूमि से अनुकूलतम लाभ की प्राप्ति होती है।
2. दैनिक जीवन में उपयोग के लिए काष्ठ – लकड़ी, पशुओं के लिए चारा ,जलावन आदि की प्राप्ति कृषिवानिकी से होती है तथा साथ ही प्राकृतिक वनों से इसका दोहन कम होता है।
3. कृषिवानिकी भूमिगत जल के स्तर को बढ़ाने में सहायक होता है।
4. मृदा संरक्षण का वास्तविक अर्थ केवल मृदा को ह्रास से बचाना नहीं, बल्कि उसकी गुणवत्ता को भी बनाए रखना है कृषिवानिकी से मृदा का संरक्षण भी संभव हो पाता है। पेड़ों की जड़ें मिट्टी को कटाव को रोक कर मृदा संरक्षण तो करती ही हैं साथ ही जैविक घटकों के कारण मिट्टी की उर्वरता भी बनी रहती है वृक्षों की जड़ें मिट्टी में गहराई तक जाकर नमी एवं वायु प्रवाह के संतुलन में योगदान देती हैं।
5. कृषिवानिकी कृषकों को आर्थिक सुरक्षा भी प्रदान करती है प्राकृतिक आपदाओं जैसे– बाढ़, सूखा आदि के प्रभावों को इसके माध्यम से कम किया जा सकता है फसल के क्षतिग्रस्त होने पर वैकल्पिक स्रोत के तौर पर वानिकी का विकल्प कृषक के पास रहता है।
6. इसके अंतर्गत जल छाजन प्रबंधन के तहत वानस्पतिक आवरण का अच्छादन सम्यक रूप से बढ़ाया जा सकता है और वनों के पुनर्जीवीकरण में सहायता मिलती है।
7. कई प्रकार के वृक्षों को जैविक खाद अथवा जैव पीड़कनाशी के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है। नीम , करंज (पोंगामिया) इत्यादि इसके अच्छे उदाहारण हैं अब कई ऐसे पौधे हैं जिनकी खेती जैव–ईंधन बनाने के लिए भी की जाती है जट्रोफा इसका सर्वोत्तम उदाहारण है।

8. कृषिवानिकी से किसान कम लागत तथा अल्प–अवधि में अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कृषिवानिकी कई प्रकार से रोजगार सृजन में भी सहायक सिद्ध हुआ है

कृषिवानिकी को बढ़ावा देने में उद्योगों की भूमिका

कृषिवानिकी के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास (आरएंडडी) की बहुत गुंजाइश है। कृषिवानिकी प्रजातियों के कई उच्च उपज देने वाले क्लोन विकसित किए गए हैं, जिन्हें क्षेत्र में प्रदर्शित करने की आवश्यकता है, ताकि वृक्ष उत्पादक अपने बागानों की उत्पादकता बढ़ा सकें। यूकेलिप्टस, चिनार, सागौन, ऐलेन्थस, खेजड़ी आदि के उच्च उपज देने वाले और रोग प्रतिरोधी क्लोन निरंतर अनुसंधान के माध्यम से विकसित किए जाने की आवश्यकता है। अनुसंधान एवं विकास तथा विस्तार गतिविधियों में केंद्र सरकार से सहायता की आवश्यकता है। हरियाणा राज्य में प्लाईवुड और विनियर उद्योग के विस्तार में पोपलर के बागानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पोपलर की लकड़ी के वैकल्पिक उपयोगों को विकसित करने के लिए आगे अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है ताकि इसकी विपणन क्षमता का विस्तार किया जा सके। माँग और आपूर्ति में भिन्नता के कारण यूकेलिप्टस और पोपलर की लकड़ी की कीमतों में कई उतार–चढ़ाव आए हैं, जिससे हमेशा यह खतरा बना रहता है कि किसान कृषिवानिकी के प्रति उदासीन हो सकते हैं। इस मुद्दे को अधिक गंभीरता और प्राथमिकता के साथ उठाया जाना चाहिए और लकड़ी के आयात निर्यात की मार्केटिंग और सरकारी नीतियों से जुड़े मुद्दों पर तुरंत काम करने की आवश्यकता है।

भारत में प्रमुख लकड़ी आधारित उद्योग

भारत में प्रमुख लकड़ी आधारित उद्योग हैं कागज और पेपर बोर्ड, समाचार प्रिंट निर्माण उद्योग फर्नीचर पैकेजिंग रेयॉन ग्रेड पल्प ऑटोमोबाइल कृषि उपकरण रेलवे स्लीपर खेल के सामान, हस्तशिल्प प्लाईवुड लिबास पार्टिकल बोर्ड एमडीएफ बोर्ड, माचिस बॉक्स खनन जलग्रहण क्षेत्र पेंसिल उद्योग आदि। लघु रोटेशन प्रजातियाँ मुख्य रूप से लुगदी और कागज उद्योग, पैकेजिंग, खेल के सामान प्लाईवुड माचिस और अन्य विविध उद्योगों के लिए उपयोग की जाती हैं। लकड़ी उत्पादों के दृष्टिकोण में अन्य महत्वपूर्ण कारकों में प्राकृतिक वनों से कटाई में गिरावट और लकड़ी की आपूर्ति के प्रमुख स्रोत के रूप में लगाए गए जंगलों का उद्भव शामिल है।

कृषिवानिकी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हरियाणा राज्य ने लंबी छलांग लगाई है। यह एकमात्र तरीका है जिससे राज्य अपने हरित आवरण क्षेत्र को बढ़ा सकता है। वन विभाग कृषिवानिकी को बढ़ावा देने के लिए किसानों और अन्य वृक्ष उत्पादकों को हर साल 2.5 लाख पौधें मुफ्त वितरित करता रहा है। हाल ही में विभाग ने पौधों को सब्सिडी वाली कीमत पर बेचने का फैसला किया है। कृषिवानिकी ने वन की कमी वाले हरियाणा राज्य को खेतों में उगाई गई लकड़ी पर आधारित बड़ी संख्या में लकड़ी आधारित उद्योगों का समर्थन करने में सक्षम बनाया है। यमुनानगर कस्बा वस्तुतः प्लाईवुड और विनियर उद्योग का राष्ट्रीय केंद्र बन गया है। निजी क्षेत्रों से पेड़ों की कटाई और लकड़ी के पारगमन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाने की हमारी नीति ने भी लकड़ी के व्यापार और लकड़ी आधारित उद्योगों को विस्तार देने में मदद की है। हमारा प्रयास अनुकूल परिस्थितियां बनाना है ताकि लकड़ी आधारित उद्योग और कृषिवानिकी गतिविधि एक साथ आगे बढ़ सकें।

कृषिवानिकी में लकड़ी की क्षमता (यमुनानगर, हरियाणा के मामले का अध्ययन)

यमुनानगर जिले की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी अपनी आजीविका के रूप में कृषि पर निर्भर है। औसत भूमि जोत 8.53 हेक्टेयर है। वर्ष में दो मुख्य फसलें होती हैं खरीफ और रबी। खरीफ में मक्का और चावल तथा रबी में गेहूँ चना और आलू उगाये जाते हैं। हाल के वर्षों में गन्ने की बड़े पैमाने पर फसल भी उगाई गई है। सत्तर के दशक के मध्य में यूकेलिप्टस (सफेदा) लहर ने आकार लेना शुरू किया। इसने धीरे–धीरे जिले के सभी हिस्सों में गति पकड़ ली। हालाँकि अस्सी के दशक के मध्य के बाद यूकेलिप्टस के बागान को गंभीर झटका लगा और कई छोटे किसानों ने निराशा और

यमुनानगर की इण्डस्ट्री में प्लाइवुड का निर्माण

असंतोष के कारण अपने खेतों से यूकेलिप्टस के पेड़ों को उखाड़ना शुरू कर दिया। इसका कारण यूकेलिप्टस की फसल की कटाई के बाद प्राप्त कम कीमतों के कारण किसानों को मिलने वाला आर्थिक झटका था। इसका परिणाम यह हुआ कि किसानों द्वारा यूकेलिप्टस का लगभग कोई रोपण नहीं किया गया। यह स्थिति नब्बे के दशक की शुरुआत तक जारी रही। हालाँकि हाल ही में, कृषिवानिकी वृक्षारोपण में लोकप्रिय प्रजाति के रूप में यूकेलिप्टस का उपयोग विभिन्न उपयोगों और बेहतर बाजार स्थितियों के कारण वापस लौट आया है। आज जो बाजार मूल्य प्राप्त हो रहा है वह उस मूल्य से बहुत दूर है जो किसानों को अस्सी के दशक के अंत में उनकी उपज के लिए मिलता था। इस बदलाव के लिए जिम्मेदार कुछ कारक थे। (हरियाना फॉरेस्ट. गोवेर्मेंट. इन)

पैकिंग मामलों में यूकेलिप्टस की लकड़ी के उपयोग जैसे नए बाजार के रास्ते खुलना।

नब्बे के दशक की शुरुआत में हरियाणा वन विकास निगम लिमिटेड द्वारा बाजार में हस्तक्षेप किया गया जिसने किसानों से एक निश्चित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर यूकेलिप्टस की खरीद शुरू की। इससे बाजार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने और गिरी हुई कीमतों को बढ़ावा देने में मदद मिली जो उसके बाद बढ़ती रही।यूकेलिप्टस क्रेट्स के लिए बाजार का पुनरुद्धार और फर्नीचर बनाने और यहां तक कि घर निर्माण गतिविधियों में इस लकड़ी का उपयोग बढ़ रहा है। इसलिए बड़े पैमाने पर पोप्लर के बागान लगाए गए खासकर जिले के विभिन्न हिस्सों में सिंचित उपजाऊ अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी पर। इसके अलावा लकड़ी आधारित उद्योगों ने भी कृषिवानिकी में चिनार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यमुनानगर में लकड़ी आधारित उद्योग

हरियाणा राज्य सामाजिक एवं कृषिवानिकी में अग्रणी रहा है। सत्तर के दशक की शुरुआत में वन विभाग द्वारा प्रदान की गई प्रोत्साहन राशि से किसानों ने यूकेलिप्टस के बागानों को अपनाया। यमुनानगर की स्थानीय पेपर मिल को लुगदी बनाने के लिए यूकेलिप्टस की आवश्यकता थी। बहुउपयोगी लकड़ी होने के कारण यूकेलिप्टस को फर्नीचर उद्योग में उपयोग के लिए अपनाया गया। इस प्रकार सामान्य रूप से हरियाणा राज्य में और विशेष रूप से यमुनानगर में यूकेलिप्टस की बहुत माँग थी। अस्सी के दशक के मध्य तक किसानों को अपनी यूकेलिप्टस की लकड़ी के लिए बहुत अच्छे दाम मिल रहे थे जब बाजार में बहुतायत के कारण यूकेलिप्टस की लकड़ी की कीमतें गिर गईं। इस घटना में बड़े पैमाने पर किसानों के खेतों से यूकेलिप्टस के पेड़ों को उखाड़ा गया और यूकेलिप्टस के बागानों का क्षेत्र केवल बंजर और बंजर भूमि में सिमट गया। खेतों में फसल के स्थान पर या फसल के साथ यूकेलिप्टस उगाना अब कोई लाभदायक व्यवसाय नहीं रहा। उसी दौरान वेस्ट इंडिया मैच कंपनी को माचिस की डिब्बियां और माचिस की तीलियां बनाने के लिए चिनार जैसी मुलायम लकड़ी की जरूरत पड़ी। उत्तरी हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब राज्यों की जलवायु और मिट्टी चिनार की तीव्र वृद्धि के लिए उपयुक्त थी। व्यापक नहर सिंचाई से भी मदद मिली क्योंकि पोपलर को बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। सघन नहर सिंचाई प्रणाली के कारण, इन क्षेत्रों में जल स्तर बहुत ऊँचा है जिससे क्षेत्र में पोप्लर की वृद्धि में आसानी होती है। कृषिवानिकी के लिए एक बहुत अच्छी प्रजाति होने के कारण पोप्लर को क्षेत्र के बड़े और छोटे दोनों किसानों ने आसानी से अपनाया। मुख्य रबी फसल गेहूं की खेती पोप्लर के बागान के साथ आसानी से की जा सकती है क्योंकि सर्दियों के दौरान पोप्लर पत्ती रहित हो जाता है जिससे कृषि फसल को अधिकांश सूर्य की रोशनी मिलती है।

निष्कर्ष

भूमि उत्पादन प्रणाली की पारिस्थितिकी सुरक्षा के लिए कृषिवानिकी सबसे किफायती, टिकाऊ और स्थिर विकल्प है। जहाँ वन और बंजर भूमि में वृक्षारोपण की औसत उत्पादकता लगभग 4 से 5 घन मीटर प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है, वहीं सिंचित भूमि में बीज–मार्ग कृषिवानिकी वृक्षारोपण से औसत उत्पादकता 10 से 15 घन मीटर प्रति हेक्टेयर सुनिश्चित होती है। चिनार और क्लोनल यूकेलिप्टस वृक्षारोपण से औसत उत्पादकता 25 से 30 घन मीटर प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक बढ़ गई है। इस प्रकार, सभी पहलुओं से, कृषिवानिकी एक सस्ता, लाभदायक और टिकाऊ विकल्प है। हालाँकि, अभी भी प्रजातियों की उपयुक्तता, विपणन, नीति और औद्योगिकीकरण से जुड़ी समस्याएँ हैं जिनके लिए चर्चा और विचार–विमर्श की बहुत आवश्यकता है।कृषि वानिकी प्रजातियों के कई उच्च उपज देने वाले क्लोन विकसित किए गए हैं, जिन्हें क्षेत्र में प्रदर्शित करने की आवश्यकता है, ताकि वृक्ष उत्पादक अपने बागानों की उत्पादकता बढ़ा सकें। यूकेलिप्टस, चिनार, सागौन, ऐलेन्थस, खेजड़ी आदि के उच्च उपज देने वाले और रोग प्रतिरोधी क्लोन निरंतर अनुसंधान के माध्यम से विकसित किए जाने की आवश्यकता है। अनुसंधान एवं विकास तथा विस्तार गतिविधियों में केंद्र सरकार से सहायता की आवश्यकता है। हरियाणा राज्य में प्लाईवुड और विनियर उद्योग के विस्तार में पोपलर के बागानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पोपलर की लकड़ी के वैकल्पिक उपयोगों को विकसित करने के लिए आगे अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है ताकि इसकी विपणन क्षमता का विस्तार किया जा सके। माँग और आपूर्ति में भिन्नता के कारण यूकेलिप्टस और पोपलर की लकड़ी की कीमतों में कई उतार–चढ़ाव आए हैं, जिससे हमेशा यह खतरा बना रहता है कि किसान कृषिवानिकी के प्रति उदासीन हो सकते हैं। इस मुद्दे को अधिक गंभीरता और प्राथमिकता के साथ उठाया जाना चाहिए और लकड़ी के आयात और निर्यात की मार्केटिंग और सरकारी नीतियों से जुड़े मुद्दों पर तुरंत काम करने की आवश्यकता है।

बाहरी वन - मानव स्वास्थ्य और प्रकृति के लिए वरदान

आकाँक्षा जैन, प्रियंका सिंह, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा, अंगिता सिंह, रिंकू सिंह, अंकित वर्दिया एवं सुरेश रामणन एस.

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता का नुकसान भावी पीढ़ियों के लिए गंभीर मुद्दे हैं और दुनिया भर के वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं के बीच बहस का एक स्रोत हैं। कृषि–वन सामुदायिक वन गाँव के जंगल सड़क के किनारे वृक्षारोपण शहरी वृक्षारोपण और वनों के बाहर के अन्य पेड़ (टीओएफ) वैश्विक जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने जैव विविधता के नुकसान को कम करने और स्थिरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जंगल सभी पेड़ नहीं हैं और सभी पेड़ जंगल नहीं हैं लगभग सभी देशों में आम तौर पर भारी मात्रा में वृक्ष संसाधन मौजूद हैं हालाँकि पिछले एक दशक से टीओएफ के पारिस्थितिक और सामाजिक लाभों को मान्यता मिल रही है। टीओएफ का उल्लेख सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में कार्लोविट्ज (1713) की पुस्तक सिल्विकल्टुरा ओइकोनॉमिका में किया गया था। तथापि पेड़ प्राचीन काल से ही कृषिवानिकी और शहरी वृक्षारोपण और टीओएफ सूची के रूप में जंगल के बाहर मानव सभ्यता से जुड़े रहे हैं।

बाहरी वनों का महत्व

बाहरी वन विशेष रूप से शहरी परिवेश को सौंदर्य प्रदान करने के अलावा, वे प्रदूषक सिंक हैं, निर्दिष्ट वन क्षेत्रों के बाहर उगने वाले पेड़ या अन्य लकड़ीदार वनस्पतियों को वन के बाहर के पेड़ के रूप में जाना जाता है। इन पेड़ों में कई पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ और आर्थिक लाभ हैं जैसे कृषि खाद्य आपूर्ति और माल और सेवाएँ प्रदान करके आय जैव विविधता का संरक्षण और कार्बन का संग्रह करके उनकी संभावित भूमिका। वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके मिट्टी की नमी को बनाए रखकर जल–बहाव को नियंत्रित करके ऊपरी मिट्टी के नुकसान और कूड़े के गिरने को कम करके और सूक्ष्म जलवायु को नियंत्रित करके मिट्टी की उर्वरता में सुधार करते हैं जिससे फसल की पैदावार बढ़ जाती है। बाहरी वन विशेष रूप से शहरी परिवेश को सौंदर्य प्रदान करने के अलावा, वे प्रदूषक सिंक हैं, ओजोन के स्तर को कम करते हैं, धूल के प्रवाह को रोकते हैं, ध्वनि प्रदूषण को कम करते हैं और हवा के तापमान को ठंडा करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये पेड़ उपयोगी लकड़ी के संसाधन हैं और देशी जंगलों पर दबाव को कम करेंगे।

कारण जिनसे पता चलता है कि पेड़ हमारे प्राकृतिक स्वास्थ्य के लिए अच्छे हैं

जिस तरह पेड़ मिट्टी को स्थिर करके वन्यजीवों के लिए समृद्ध आवास प्रदान करके तूफानी पानी को सोखकर और छानकर तापमान को ठंडा करके पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को लाभ पहुँचाते हैं वे मानव स्वास्थ्य को भी कई तरह के लाभ पहुँचाते हैं। औषधीय पेड़ों से शहरी पेड़ों तक जिन पर मानव समाज हजारों सालों से जीवन रक्षक दवाओं के लिए निर्भर रहा है शहरी पेड़ जो खतरनाक रूप से उच्च तापमान से शहरवासियों को छाया प्रदान करते हैं पेड़ों के लाभों को अगर हम कुछ कम भी कर देंगे फिर भीं इनके लाभों को हम आंक नहीं पायगे। ऐतिहासिक अभिलेखों पर नजर डालें तो यह स्पष्ट है कि आरंभिक मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए पेड़ों पर निर्भर थे –इसलिए आप कह सकते हैं कि वे हमारे अस्तित्व के मूल में ही बुने हुए हैं। हम उनके पोषक तत्वों से भरपूर फलों में पोषण पाते हैं उनके अंगों में आश्रय पाते हैं उनके औषधीय यौगिकों में उपचार पाते हैं हानिकारक प्रदूषकों को अवशोषित करते समय सुरक्षा पाते हैं और उनकी उपस्थिति में आश्चर्य करते हैं। आधुनिक समय में शोध ने केवल वही प्रमाणित किया है जो स्वदेशी लोग हमेशा से जानते थे पेड़ हमारे अस्तित्व की कुंजी हैं वैश्विक स्तर पर ग्रह के स्वास्थ्य के लिए और व्यक्तिगत रूप से उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले स्वास्थ्य लाभों के लिए।

मानव स्वस्थ के लिए वृक्षों का मूलभूत उपयोग

औषधीय पौधे विकासशील देशों में ग्रामीण लोगों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत प्रदान कर सकते हैं, विशेष रूप से जंगली कटाई वाली सामग्री की बिक्री के माध्यम से, जो गरीब परिवारों की कुल आय में 15–30% का योगदान देता है। औषधीय पौधों के महत्व को हिमालयी क्षेत्र में तेजी से पहचाना जा रहा है और विशेष रूप से पारिस्थितिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से ग्रामीण आजीविका के लिए उनके महत्व के बावजूद, मूल औषधीय पौधों की प्रजातियों की प्रचुरता और विविधता को क्षरण के परिणामस्वरूप देशी पुराने–विकास वनों में ओवरस्टोरी की संरचनात्मक विशेषताओं में बदलाव से खतरा है

दुनिया के अन्य क्षेत्रों में, यह बताया गया है कि जहाँ नष्ट हुए वनों को फिर से बढ़ने की अनुमति दी गई है, वहाँ पहले से लुप्त हो चुकी कमजोर प्रजातियों की पुनरावृत्ति की संभावना अधिक है हालाँकि, हिमालय के जंगलों में ऐसे अध्ययन दुर्लभ हैं, इसलिए वनों के क्षरण और उसके बाद वनों के पुनर्विकास से अंडरस्टोरी वनस्पतियों की विविधता में किस हद तक बदलाव आता है, इसका मूल्यांकन संभव नहीं हो पाया है। औषधीय उपयोग के अलावा, आयुर्वेदिक जड़ी–बूटियों का उपयोग कीट नियंत्रण, प्राकृतिक रंगों और खाद्य पदार्थों, चाय और इत्र के निर्माण जैसे उद्देश्यों के लिए भी किया जा सकता है। अगर हम दुनिया भर के विभिन्न शोधों को देखें, तो पाएंगे कि उपचार और रोजमर्रा की जिंदगी में उपयोग के लिए प्राकृतिक जड़ी–बूटियों की ओर रुख करने वाले लोगों के मामलों में अचानक उछाल आया है। मूल बातों पर वापस जाने पर, लोगों ने महसूस किया है कि रासायनिक रूप से उपचारित उत्पाद उनके जीवन के लिए कितना खतरा पैदा करते हैं और इसलिए वे आयुर्वेद और इसके सिद्धांतों को अपने जीवन का मुख्य आधार बनाकर स्वस्थ जीवन शैली अपना रहे हैं।

औषधीय पौधों के नाम और उनके पारंपरिक उपयोग

प्रकृति ने हमें अनगिनत अद्भुत पौधों प्रदान करके हम पर बड़ी कृपा की है। आप जितना अधिक उनसे परिचित होंगे, उतना ही वे आपको आश्चर्यचकित करेंगे। आदिवासी मान्यताओं के अनुसार संसार में पाए जाने वाले हर एक पेड़–पौधे में कोई ना कोई औषधीय गुण जरूर होता है, ये बात अलग है कि औषधि विज्ञान के अत्याधुनिक हो जाने के बावजूद भी हजारों पेड़–पौधे ऐसे हैं, जिनके औषधीय गुणों की जानकारी किसी को नहीं। सामान्यतः मध्यम आकार के पेड़ और बड़े–बड़े वृक्षों और उनके तमाम अंगों में गजब के औषधीय गुणों की भरमार होती है। ये सिर्फ फल, फूल, पत्ते, सब्जियाँ और ऑक्सीजन ही नहीं बल्कि आयुर्वेदिक औषधियों का भी खजाना हैं। आयुर्वेद में कुछ औषधीय पौधे और जड़ी–बूटियाँ शामिल हैं, जो कई स्वास्थ्य समस्याओं का प्रभावी ढंग से इलाज या उपचार कर सकते हैं और हमारे समग्र स्वास्थ्य के लिए अच्छे साबित हो सकते हैं। ये पौधे लंबे समय से भारतीय परंपरा का हिस्सा रहे हैं और प्राचीन काल से ही विभिन्न औषधीय प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाते रहे हैं। आइए जानते हैं ऐसे कौन से औषधीय पौधे हैं,जो बाहरी वन में पाए जाते है। जिन्हें आप उपयोग कर सकते हैं और कई बीमारियों से छुटकारा भी पा सकते हैं।

1) **अमलतासः** झूमर की तरह लटकते पीले फूल वाले इस पेड़ को सुंदरता के लिये अक्सर बाग–बगीचों में लगाया जाता है हालांकि जंगलों में भी इसे अक्सर उगता हुआ देखा जा सकता है। अमलतास का वानस्पतिक नाम केस्सिया फिस्टुला है। अमलतास के पत्तों और फूलों में ग्लाइकोसाइड, तने की छाल टैनिन, जड़ की छाल में टैनिन के अलावा ऐन्थ्राक्विनीन, फ्लोवेफिन तथा फल के गूदे में शर्करा, पेक्टीन, ग्लूटीन जैसे रसायन पाए जाते है। पेट दर्द में इसके तने की छाल को कच्चा चबाया जाए तो दर्द में काफी राहत मिलती है। पातालकोट के आदिवासी बुखार और कमजोरी से राहत दिलाने के लिए कुटकी के दाने, हर्रा, आँवला और अमलतास के फलों की समान मात्रा लेकर कुचलते है और इसे पानी में उबालते है, इसमें लगभग पाँच मिली शहद भी डाल दिया जाता है और ठंडा होने पर रोगी को दिया जाता है।

2) **अर्जुनः** अर्जुन का पेड़ आमतौर पर जंगलों में पाया जाता है और यह धारियों–युक्त फलों की वजह से आसानी से पहचान आता है, औषधीय महत्व से इसकी छाल और फल का ज्यादा उपयोग होता है। अर्जुन की छाल में अनेक प्रकार के रासायनिक तत्व पाये जाते हैं जिनमें से प्रमुख कैल्शियम कार्बोनेट, सोडियम व मैग्नीशियम प्रमुख है। आदिवासियों के अनुसार अर्जुन की छाल का चूर्ण तीन से छह ग्राम गुड़, शहद या दूध के साथ दिन में दो या तीन बार लेने से दिल के मरीजों को काफी फायदा होता है। वैसे अर्जुन की छाल के चूर्ण को चाय के साथ उबालकर ले सकते हैं। चाय बनाते समय एक चम्मच इस चूर्ण को डाल दें इससे उच्च–रक्तचाप भी सामान्य हो जाता है।

3) **अशोकः** ऐसा कहा जाता है कि जिस पेड़ के नीचे बैठने से शोक नहीं होता, उसे अशोक कहते हैं। अशोक का पेड़ सदैव हरा–भरा रहता है, जिस पर सुंदर, पीले, नारंगी रंग फूल लगते हैं। अशोक का वानस्पतिक नाम सराका इंडिका है। अशोक की छाल को कूट–पीसकर कपड़े से छानकर रख लें, इसे तीन ग्राम की मात्रा में शहद के साथ दिन में तीन बार सेवन करने से सभी प्रकार के प्रदर में आराम मिलता है। पातालकोट के आदिवासियों के अनुसार यदि महिलाएं अशोक की छाल 10 ग्राम को 250 ग्राम दूध में पकाकर सेवन करें तो माहवारी सम्बंधी परेशानियां दूर हो जाती हैं।

4) **कचनारः** हल्के गुलाबी लाल और सफेद रंग लिये फूलों वाले इस पेड़ को अक्सर घरों, उद्यानों और सड़कों के किनारे सुंदरता के लिये लगाया जाता है। कचनार का वानस्पतिक नाम बाउहीनिया वेरीगेटा है। मध्यप्रदेश के ग्रामीण अँचलों में दशहरे के दौरान इसकी पत्तियाँ आदान–प्रदान कर एक दूसरे को बधाईयाँ दी जाती है। इसे सोना–चाँदी की पत्तियाँ भी कहा जाता है। पातालकोट के आदिवासी हर्बल जानकार जोड़ों के दर्द और सूजन में आराम के लिये इसकी जड़ों को पानी में कुचलते है और फिर इसे उबालते है। इस पानी को दर्द और सूजन वाले भागों पर बाहर से लेपित करने से काफी आराम मिलता है। मधुमेह की शिकायत होने पर रोगी को प्रतिदिन सुबह खाली पेट इसकी कच्ची कलियों का सेवन करना चाहिए।

5) **गुन्दाः** गुन्दा मध्यभारत के वनों में देखा जा सकता है, यह एक विशाल पेड़ होता है जिसके पत्ते चिकने होते है, आदिवासी अक्सर इसके पत्तों को पान की तरह चबाते है और इसकी लकड़ी इमारती उपयोग की होती है। इसे रेठु के नाम से भी जाना जाता है, हलाँकि इसका वानस्पतिक नाम कार्डिया डाईकोटोमा है। इसकी छाल की लगभग 200 ग्राम मात्रा लेकर इतने ही मात्रा पानी के साथ उबाला जाए और जब यह एक चौथाई शेष रहे तो इससे कुल्ला करने से मसूड़ों की सूजन, दांतो का दर्द और मुंह के छालों में आराम मिल जाता है। छाल का काढ़ा और कपूर का मिश्रण तैयार कर सूजन वाले हिस्सों में मालिश की जाए तो फायदा होता है।

6) **जामुनः** जंगलों, गाँव के किनारे, खतों के किनारे और उद्यानों में जामुन के पेड़ देखे जा सकते हैं। जामुन का वानस्पतिक नाम सायजायजियम क्युमिनी है। जामुन में लौह और फास्फोरस जैसे तत्व प्रचुरता से पाए जाते है, जामुन में कोलीन तथा फोलिक एसिड भी भरपूर होते है। पातालकोट के आदिवासी मानते है कि जामुन के बीजों के चूर्ण की दो–दो ग्राम मात्रा बच्चों को देने से बच्चे बिस्तर पर पेशाब करना बंद कर देते हैं। जामुन के ताजे पत्तों की लगभग 50 ग्राम मात्रा लेकर पानी (300 मिली) के साथ मिक्सर में रस पीस लें और इस पानी को छानकर कुल्ला करें, इससे मुंह के छाले पूरी तरह से खत्म हो जाते है।

7) **नीमः** प्राचीन आर्य ऋषियों से लेकर आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान नीम के औषधीय गुणों को मानता चला आया है। नीम व्यापक स्तर पर संपूर्ण भारत में दिखाई देता है। नीम का वानस्पतिक नाम अजाडिरक्टा इंडिका है। नीम में मार्गोसीन, निम्बिडिन, निम्बोस्टेरोल, निम्बिनिन, स्टियरिक एसिड, ओलिव एसिड, पामिटिक एसिड, एल्केलाइड, ग्लूकोसाइड और वसा अम्ल आदि पाए जाते हैं। नीम की निबौलियों को पीसकर रस तैयार कर

लिया जाए और इसे बालों पर लगाया जाए तो जूएं मर जाते हैं। डाँग– गुजरात के आदिवासियों के अनुसार नीम के गुलाबी कोमल पत्तों को चबाकर रस चूसने से मधुमेह रोग मे आराम मिलता है।

8) **नीलगिरीः** यह पेड़ काफी लंबा और पतला होता है। इसकी पत्तियों से प्राप्त होने वाले तेल का उपयोग औषधि और अन्य रूप में किया जाता है। नीलगिरी की पत्तियाँ लंबी और नुकीली होती हैं जिनकी सतह पर गांठ पाई जाती है और इन्हीं गाठों में तेल संचित रहता है। नीलगिरी का वानस्पतिक नाम यूकेलिप्टस ग्लोब्यूलस होता है। शरीर की मालिश के लिए नीलगिरी का तेल उपयोग में लाया जाए तो गम्भीर सूजन तथा बदन में होने वाले दर्द नष्ट से छुटकारा मिलता है, वैसे आदिवासी मानते है कि नीलगिरी का तेल जितना पुराना होता जाता है इसका असर और भी बढता जाता है। इसका तेल जुकाम, पुरानी खांसी से पीड़ित रोगी को छिड़ककर सुंघाने से लाभ मिलता है।

9) **पलाशः** मध्यप्रदेश के लगभग सभी इलाकों में पलाश या टेसू प्रचुरता से पाया जाता है। इसका वानस्पतिक नाम ब्युटिया मोनोस्पर्मा है। पलाश की छाल, पुष्प, बीज और गोंद औषधीय महत्त्व के होते हैं। पलाश के गोंद में थायमिन और रिबोफ्लेविन जैसे रसायन पाए जाते पलाश के बीजों को नींबूरस में पीसकर दाद, खाज और खुजली से ग्रसित अंगो पर लगाया जाए तो फायदा होता है।

10) **पीपलः** पीपल के औषधीय गुणों का बखान आयुर्वेद में भी देखा जा सकता है। पीपल का वानस्पतिक नाम फाइकस रिलिजियोसा है। मुँह में छाले हो जाने की दशा में यदि पीपल की छाल और पत्तियों के चूर्ण से कुल्ला किया जाए तो आराम मिलता है। डाँगी आदिवासी पीपल की छाल घिसकर चर्म रोगों पर लगाने की राय देते हैं। कुष्ठ रोग में पीपल के पत्तों को कुचलकर रोगग्रस्त स्थान पर लगाया जाता है तथा पत्तों का रस तैयार कर पिलाया जाता है।

11) **फालसाः** फालसा एक मध्यम आकार का पेड़ है जिस पर छोटी बेर के आकार के फल लगते है। फालसा मध्यभारत के वनों में प्रचुरता से पाया जाता है। फालसा का वानस्पतिक नाम ग्रेविया एशियाटिका है। खून की कमी होने पर फालसा के पके फल खाना चाहिए इससे खून बढ़ता है। अगर शरीर में त्वचा में जलन हो तो फालसे के फल या शर्बत को सुबह–शाम लेने से अतिशीघ्र आराम मिलता है।

12) **बरगदः** बरगद को 'अक्षय वट' भी कहा जाता है, क्योंकि यह पेड़ कभी नष्ट नहीं होता है। बरगद का वृक्ष घना एवं फैला हुआ होता है। बरगद का वानस्पतिक नाम फाइकस बेंघालेंसिस है। पातालकोट के आदिवासियों के अनुसार बरगद की जटाओं के बारीक रेशों को पीसकर दाद–खाज खुजली पर लेप लगाया जाए तो फायदा जरूर होता है

निष्कर्ष

पेड़–पौधे प्रकृति का दिया हुआ वरदान हैं, जो मानव जीवन चक्र में अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं। हमें सांस लेने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, जिसे पेड़ उत्सर्जित करते हैं। पेड़ तूफानी पानी के बहाव की मात्रा को कम करते हैं, जिससे कटाव, प्रदूषण और संभवतः हमारे जलमार्गों में बाढ़ के परिणाम भी कम होते हैं। कई वन्यजीव प्रजातियों का आवास पेड़ों द्वारा प्रदान किया जाता है। मानव रोगों के उपचार के लिए प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार के औषधीय पेड़–पौधों का उपयोग किया जाता रहा है। इन पौधों में विशिष्ट सक्रिय यौगिक होते हैं जो उनके चिकित्सीय प्रभावों के लिए जिम्मेदार होते हैं औषधीय पौधे आपके स्वास्थ्य को बेहतर बनाने और आपके समग्र कल्याण को बढ़ाने का एक प्राकृतिक और प्रभावी तरीका हो सकते हैं। हालांकि, उपचार के विकल्प के रूप में औषधीय पौधों का उपयोग करने से पहले एक स्वास्थ्य देखभाल पेशेवर से परामर्श करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे अन्य दवाओं के साथ परस्पर क्रिया कर सकते हैं और उनके दुष्प्रभाव हो सकते हैं।

खाद्य सुरक्षा और शुद्ध जलवायु लक्ष्य के लिए कृषिवानिकी समाधान

प्रियंका सिंह, आकाँक्षा जैन, आर.पी. द्विवेदी, सुशील कुमार, बिजोय चंदा एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

दुनिया की बढ़ती आबादी और उपभोग के तरीकों में बदलाव के कारण पर्यावरण पर दबाव बढ़ रहा है, जिससे 2030 तक दो अरब अतिरिक्त लोगों के लिए भोजन का उत्पादन करने की आवश्यकता पैदा हो रही है, साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के आधार को संरक्षित और संवर्धित करना भी जरूरी है, जिस पर वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की भलाई निर्भर करती है। किन्तु वर्तमान समय में कृषि के असंवहनीय विस्तार से मिट्टी के कटाव, कृषि रसायनों के माध्यम से जल प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन जैसी गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो रहीं हैं। वायुमंडल में मानवीय गतिविधियों के कारण पहले से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैसें (नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन) हैं। औद्योगिक, कृषि और वनों की कटाई की प्रथाएँ इन महत्वपूर्ण गैसों की प्रचुरता में इजाफा करती हैं जो हमारे ग्रह को गर्म कर रही हैं। रिकॉर्ड गर्मी की लहरों, सूखे, बवंडर और बारिश के साथ लगातार होने वाले गंभीर मौसम और प्राकृतिक आपदाओं के माध्यम से यह और भी स्पष्ट हो गया है। 2024 के मई महीने में, तापमान के वैश्विक जलवायु रिकॉर्ड टूट गए और पिछले 174 वर्षों में ज्यादा तापमान बढ़ता देखा है। महासागर का तापमान रिकॉर्ड स्तर पर पहुँच रहा है, साथ ही बर्फ की चादरें भी पिघल रही हैं। ये सभी परिवर्तन वानिकी और कृषि को बहुत गहराई से प्रभावित करेंगे। कृषि और वानिकी दो ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर खोज की जा रही है क्योंकि वे जलवायु अनुकूलन और शमन समाधान खोल सकते हैं जिनका सभी क्षेत्रों में सकारात्मक लाभ होगा। इस बात की भी काफी उम्मीद है कि कृषिवानिकी प्रणालियाँ जलवायु परिवर्तन से निपटने में एक मूल्यवान सहयोगी साबित हो सकती हैं, जो प्रतिवर्ष 0.31 बिलियन मीट्रिक टन कार्बन हटाने की पेशकश करती हैं इस क्षमता के बावजूद, जलवायु–केंद्रित कृषिवानिकी को कम आंका गया है।

हमारे पास वैश्विक कृषि भूमि पर अधिक पेड़ लगाने के लिए जानकारी और स्थान है। विज्ञान उन स्थानों की पहचान करने में मदद कर सकता है जहाँ कृषिवानिकी में जलवायु परिवर्तन शमन के लिए सबसे अधिक संभावना है, साथ ही कृषि उत्पादन और वन्यजीव आवास का समर्थन करने सहित कई अन्य लाभ भी प्रदान करता है। जलवायु परिवर्तन पहले से ही अमेरिका में कृषि और वानिकी उत्पादन को प्रभावित कर रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका का कृषि विभाग इन चुनौतियों का समाधान करने और समाधान विकसित करने में सबसे आगे है। कृषि और वानिकी में जलवायु परिवर्तन के निहितार्थों को समझना हमारे देश के लिए प्रभावी रणनीतियों और परिणामों के साथ आगे बढ़ने के लिए महत्वपूर्ण है, यह सुनिश्चित करते हुए कि हमारे भोजन और आश्रय संसाधन सुरक्षित रहें।

कृषिवानिकी का जलवायु परिवर्तन में अनुकूलन दृष्टिकोण

कृषिवानिकी एक भूमि उपयोग प्रणाली है जो वृक्षारोपण, फसल उत्पादन और पशुपालन को इस तरह से एकीकृत करती है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यंत उपयुक्तहै। यह उत्पादकता, लाभप्रदता, विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की संवहनीयता को बढ़ाने के लिये कृषि भूमि और ग्रामीण भू–दृश्य के साथ वृक्षों व झाड़ियों को एकीकृत करता है। चित्र क्रमांक 1 स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है की कृषिवानिकी एक गतिशील, पारिस्थितिकी पर आधारित, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रणाली है, जो खेतों एवं कृषि भू–दृश्य में काष्ठीय बारहमासी पादप के एकीकरण के माध्यम से उत्पादन में विविधता एवं संवहनीयता लाती है। कृषिवानिकी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। यह देश की ईंधन लकड़ी आवश्यकताओं के लगभग आधे हिस्से, लघु इमारती लकड़ी की माँग के लगभग दो–तिहाई हिस्से, प्लाईवुड आवश्यकता के 70–80

प्रतिशत भाग, लुग्दी उद्योग के लिये कच्चे माल के 60 प्रतिशत भाग और हरा चारा के 9–11 प्रतिशत हिस्से की पूर्ति करती है। वृक्ष उत्पाद और वृक्ष द्वारा प्रदत्त सेवाएँ ग्रामीण आजीविका में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। फल, चारा, ईंधन, फाइबर, उर्वरक और इमारती काष्ठ खाद्य व पोषण सुरक्षा एवं आय सृजन में योगदान करते हैं, साथ ही फसल खराब होने पर बीमा के रूप में कार्य करते हैं।

कृषिवानिकी या वृक्ष–आधारित खेती एक स्थापित प्रकृति–आधारित गतिविधि है जो कार्बन–तटस्थ विकास में सहायता कर सकती है। यह वनों के बाहर वृक्षावरण का विस्तार करती है, प्राकृतिक वनों की तरह कार्बन प्रच्छादन में योगदान करती है और इस तरह उन पर से दबाव को कम करती है और किसानों की आय बढ़ाने में मदद करती है। कृषिवानिकी प्रणालियों में उगाए जाने वाले नाइट्रोजन–फिक्सिंग वृक्ष प्रति वर्ष लगभग 50–100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर फिक्सिंग में सक्षम हैं। यह कृषिवानिकी प्रणाली के सबसे आशाजनक घटकों में से एक है। गिरी हुई पत्तियाँ अपघटित हो ह्यूमस का निर्माण करती हैं और पोषक तत्व प्रदान कर मृदा की गुणवत्ता को समृद्ध करती हैं। यह उर्वरक आवश्यकता को भी कम करती है। रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता के कारण कृषिवानिकी जैविक खेती को पूरकता प्रदान कर सकती है। कम रसायनों के उपयोग से जलवायु पर मानवजनित प्रभावों को कम करने में भी मदद मिलेगी। कृषिवानिकी कटाव नियंत्रण एवं जल प्रतिधारण, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण, कार्बन भंडारण, जैव–विविधता संरक्षण और स्वच्छ हवा में मदद करती है और समुदायों को चरम मौसमी घटनाओं का मुकाबला कर सकने में सक्षम बनाती है। कृषिवानिकी निम्नलिखित विषयों में भारत को अपने अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों को पूरा करने में भी मदद कर सकती है। कृषिवानिकी के प्रति अब तक भारत का रुख अत्यंत सकारात्मक रहा है। वर्ष 2014 में भारत रोजगार, उत्पादकता और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिये एक 'राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति' अपनाने वाला विश्व का पहला देश बना।

चित्र क्रमांक 1 – जलवायु परिवर्तन का प्रबंधन एवं विभिन्न प्रकार के लाभ प्रदान करने में कृषिवानिकी की सक्षमता

बेहतर पोषण प्राप्त करने हेतु कृषिवानिकी का योगदान

वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती अगले कुछ दशकों में खाद्य उत्पादन को लगभग दोगुना करने की आवश्यकता है, खासतौर से विकासशील देशों से तेजी से बढ़ती माँग के कारण। उपज में वृद्धि हासिल करने के लिए, रासायनिक इनपुट, आनुवंशिक सुधार और मशीनीकरण का उपयोग अब पारंपरिक हो गया है, हालाँकि, पारंपरिक कृषि कई सामाजिक और पर्यावरणीय समस्याओं का एक प्रमुख कारण रही है, जिसमें जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता और पारिस्थितिकीतंत्र की अखंडता की हानि, भूमि क्षरण, जल असुरक्षा और सामाजिक प्रणालियों का विघटन शामिल है। परिणामस्वरूप, अब व्यापक सहमति है कि हमें उपज पर वर्तमान संकीर्ण फोकस से हटकर अधिक ''बहुक्रियाशील'' कृषि की ओर बढ़ने की जरूरत है, जो टिकाऊ गहनता के शीर्षक के तहत व्यापक सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों का सम्मान करती है वास्तव में, मिट्टी और पारिस्थितिकी प्रणालियों का चल रहा क्षरण खाद्य उत्पादन की स्थिरता को खतरे में डालता है, जैसा कि वैश्विक पर्यावरणीय परिवर्तन करता है। यहाँ, हम सबसे पहले सुझाव देते हैं कि सतत् विकास लक्ष्य बहुक्रियाशील कृषि के लिए एक व्यापक और सुसंगत रूपरेखा प्रदान करते हैं, क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीय समझौता पहले से ही खाद्य सुरक्षा (एसडीजी 2) को पर्यावरणीय, जलवायु और सामाजिक लक्ष्यों के साथ जोड़ता है कि कैसे कृषिवानिकी में एक अत्यधिक बहुक्रियाशील विकल्प पहले से ही मौजूद है।

भोजन मानव जीवन के लिए मौलिक है, और इसलिए हम मानते हैं कि बहुउद्देशीय कृषि को पहले खाद्य सुरक्षा के एसडीजी को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से उपज बढ़ाने में सक्षम होना चाहिए। एक बार वह मानदंड संतुष्ट हो जाने के बाद, जो विकल्प अन्य एसडीजी को सबसे मजबूती से आगे बढ़ाते हैं (या उन्हें कम से कम गंभीर रूप से समझौता करते हैं) उन्हें प्राथमिकता मिलेगी। इसके अलावा, प्रत्येक कृषि दृष्टिकोण विभिन्न सामाजिक समूहों और विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लिए एसडीजी को अलग–अलग तरीके से प्रभावित करेगा। चूंकि खाद्य सुरक्षा और सामान्य रूप से एसडीजी विकासशील दुनिया के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक हैं इसलिए हम अपनी चर्चा छोटे पैमाने के कृषकों पर केंद्रित करते हैं उस भौतिक और मानव भूगोल के भीतर, कृषि के सबसे बहुक्रियाशील रूपों में से एक कृषिवानिकी है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन वैश्विक खाद्य सुरक्षा, सतत् विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए एक गंभीर खतरा है। उम्मीद है कि 2050 तक दुनिया की आबादी में एक तिहाई की वृद्धि हो जाएगी, जिसमें सबसे ज्यादा वृद्धि विकासशील देशों में होगी। एफएओ का अनुमान है कि अगर मौजूदा आय और खपत वृद्धि के रुझान निरंतर जारी रहे, तो खाद्य और चारे की अपेक्षित बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन में 60 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी। बढ़ती वैश्विक आबादी को भोजन उपलब्ध कराने और आर्थिक विकास तथा गरीबी उन्मूलन के लिए आधार प्रदान करने के लिए, कृषि में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए जाने चाहिए। जलवायु परिवर्तन के कारण यह कार्य और भी कठिन हो जाएगा। कृषिवानिकी प्रणालियों में जलवायु अनिश्चितता को कम करने और उसका जवाब देने की क्षमता होती है। कृषिवानिकी प्रणालियाँ, सामान्य तौर पर, स्वैच्छिक रूप से शमन और अनुकूलन दोनों तकनीकों को शामिल करती हैं और वंचित किसानों के जलवायु परिवर्तन को कम करते हुए खाद्य सुरक्षा की गारंटी देने के लिए कई विकल्प प्रदान करती हैं। एक बहुमुखी, पर्यावरण के लिए लाभकारी संसाधन प्रबंधन रणनीति में खेतों पर पेड़ शामिल हैं। खेत में पेड़ों का उपयोग विनियमन, संरक्षण और उत्पादन के लिए किया जाता है। जिसमें कार्बन पृथक्करण को कम करने के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में कार्य करता है। कृषिवानिकी सबसे आशाजनक तत्वों में से एक है, खासकर ग्रामीण, छोटे किसानों के लिए जिन्हें लंबे समय तक सूखे, अधिक गंभीर बाढ़ और अधिक अनियमित वर्षा जैसी अधिक कठिन जलवायु परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। इसे जलवायु संवेदनशीलता को कम करने के लिए एक व्यवहार्य विधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि कार्बन, लकड़ी ऊर्जा, बेहतर मिट्टी की उर्वरता, बेहतर स्थानीय जलवायु परिस्थितियों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं से संसाधन और आय का उत्पादन भी किया जाता है।

कृषिवानिकी जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और विविध भूमि–उपयोग पैटर्न, संधारणीय आजीविका और आय धाराओं, उच्चवन और कृषि उत्पादन, और मौसम के कारण उत्पादन घाटे में कमी को बढ़ावा देकर इसके प्रभावों के प्रति लचीलापन बढ़ाती है। कृषिवानिकी ने किसानों की सदमे के प्रति संवेदनशीलता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पेड़ संवेदनशीलता को कम करते हैं, कृषिप्रणाली को अधिक लचीला बनाते हैं, और जलवायु से संबंधित खतरों से आवासीय सुरक्षा प्रदान करते हैं। निर्वाह किसान उन लोगों में से हैं जो वर्तमान जलवायु उतार–चढ़ाव के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील हैं। कई कृषिवानिकी प्रणालियों में जलवायु अनिश्चितता को कम करने और उसका जवाब देने की क्षमता होती है। कृषिवानिकी प्रणालियाँ, सामान्य तौर पर, स्वैच्छिक रूप से शमन और अनुकूलन दोनों तकनीकों को शामिल करती हैं और वंचित किसानों को जलवायु परिवर्तन को कम करते हुए खाद्य सुरक्षा की गारंटी देने के लिए कई विकल्प प्रदान करती हैं।

हिन्दी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। हिन्दी जबकि राष्ट्रीय एकता की ओर अग्रसर होने में एक कदम है, उसका विरोध करना अकारण होगा। यह अन्ततः प्रान्तीय कार्य का एक माध्यम स्वरूप होगी और भारतीय एकता को एक सूत्र में बाँध रखने में सहायक होगी।

–नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिये ऐसी भाशा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता समझता है।

–महात्मा गाँधी

भाषा राष्ट्रीय एकता का सशक्त साधन है। हिन्दी इस दृष्टि से एकता का अच्छा माध्यम बन सकती है।

– लाल बहादुर भास्त्री

कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला–जुला कर रख सकें इसलिए हिन्दी को बढ़ावा देना सबका काम है।

–इंदिरा गाँधी

मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा जब हिन्दी विश्व की सांस्कृतिक भाषा होगी।

–सुमित्रा नन्दन पंत

अर्ध-शुष्क उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अनार की खेती का आर्थिक और वित्तीय विश्लेषण

प्रियंका सिंह, अशोक यादव, आर.पी. द्विवेदी, सुशील कुमार, आकाँक्षा जैन, बिजोय चंदा एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

अनार एक उच्चमूल्य वाली फसल है और अनार का वृक्ष अत्यधिक आर्थिक महत्व रखता है। अनार अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में अच्छी उपज देता है। यह गर्म, शुष्क गर्मी और ठंडी सर्दी में अच्छी तरह से पनपता है, बशर्ते सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो। फल के विकास और पकने के दौरान पेड़ को गर्म और शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। 2020–21 में, 30.88 लाख टन के उत्पादन और 6.9 टन हेक्टेयर की उत्पादकता के साथ 2.7 लाख हेक्टेयर में इसकी खेती की गई है। देश में अनार के क्षेत्रफल और उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। वर्ष 2025 तक अनार का क्षेत्रफल बढ़कर 20 प्रतिशत तक हो जाने का अनुमान है जिसके फलस्वरूप वर्ष 2025 में उत्पादन में 10 गुना वृद्धि और निर्यात लगभग सात गुना होने की उम्मीद है।

महत्त्व

ताजे फलों और जूस के अलावा वाइन और प्रसंस्कृत उत्पादों की भी पूरे विश्व में माँग है। अनार के वृक्ष के सभी भाग के चिकित्स्य महत्व है और इनका उपयोग चमड़ा और रंगाई उद्योग में भी किया जाता है। इसके फल का कैलोरिफिकमान 65% होता है। यह सोडियम का एक समृद्ध स्रोत है और इसमें राइबोफ्लेविन, थायमिन, नियासिन, विटामिन सी, कैल्शियम और फॉस्फोरस भी अच्छी मात्रा में होता है।

अनार की बाग लगाने के लिए बहुत सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि कई बार किसान बाग लगा देते हैं, लेकिन जानकारी के अभाव में कई बार नुकसान भी उठाना पड़ सकता है। अनार की खेती करने के उपर्युक्त विधि अनुसार कलम लगाकर और तैयार किये गए पौध को व्यवस्थित देख–रेख करनी पड़ती है (चित्र क्रमांक 1) क्योंकि अनार उपोष्ण जलवायु का पौधा है। यह अर्द्ध शुष्क जलवायु में अच्छी तरह उगाया जा सकता है। फलों के विकास व पकने के समय गर्म और शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। फल के विकास के लिए तापमान 38 डिग्री सेल्सियस सही होता है। अनार की खेती के लिए जल निकास वाली रेतीली दोमट मिट्टी सबसे सही होती है। फलों की गुणवत्ता और रंगभारी मृदाओं की अपेक्षा हल्की मृदाओं में अच्छा होता है।

छोटे किसानों के लिए अनार के बाग का प्रारंभिक निवेश और स्थापना लागत का विवरण

इस अनुभाग में हम मुख्य रूप से देश के अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में अनार की खेती से होने वाली लागत और रिटर्न के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। अनार एक बारहमासी फल है जो रोपण के दो से चार साल बाद फल देना शुरू कर देता है जिससे उत्पादक अच्छी खासी आय अर्जित करता है। अनार की खेती में बुनियादी ढांचे की स्थापना सबसे अहम है। इसमे न केवल प्रारंभिक निवेश के लिए किए गए खर्च शामिल हैं बल्कि वे लागत भी शामिल हैं जो पेड़ों को पोषण के लिए चाहिए होता है जब तक पेड़ों में फल लगना ना आरम्भ हो जाए। शुरुआत में अनार के बाग की स्थापना के लिए उच्च निवेश की आवश्यकता होती है उसके बाद रख–रखाव लागत आती रहती है। प्रारंभिक निवेश में शामिल हैं – भूमि के किराये के मूल्य (अगर भूमि किराये पे ली गई है), बोरवेल और सहायक उपकरण, स्प्रेयर, रोपण सामग्री (अनार के पौधे), गड्ढे खोदने और रोपण का शुल्क, फेंसिंग, ड्रिपसेट की स्थापना आदि। रख–रखाव की लागत में होने वाली लागत है फल लगने के समय तक बाग का रख–रखाव करना जो रोपण के दो साल बाद तक होता है और इनमें शामिल है श्रम, उर्वरक, खाद, संयंत्र पर व्यय, सुरक्षा रसायन, सिंचाई, आदि। दिए गए सारणी 1 में अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में एक हेक्टेयर में अनार के बगीचे को लगाने में होने वाले प्रारंभिक निवेश और रख–रखाव लागत की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई है।

चित्र क्रमांक 1 अनार की खेती के लिए उपयोगी चरण

सारणी 1: एक हेक्टेयर में अनार के बगीचे की स्थापना का लागत विवरण

विशिष्ट	लागत (रूपए प्रति हेक्टेयर)
प्रारंभिक निवेश	
भूमि के किराये के मूल्य (अगर भूमि किराये पर ली गई है)	10550.00
बोरवेल और सहायक उपकरण	65054.25
रोपण सामग्री (अनार के पौधे)	18850.00
स्प्रेयर	3025.00
गड्ढे खोदने और रोपण का शुल्क	30842.00
फेंसिंग	4020.00
ड्रिपसेट की स्थापना	45245.00
कुल	177586.25
रख-रखाव लागत (फल लगने के पहले)	
पहला वर्ष	87913.84
दूसरा वर्ष	103298.98
कुल (पहला और दूसरा वर्ष)	191212.82
कुल लागत	368799.07

स्रोतः रेडे एवं भट्टाचार्य (2018)

सारणी 2 में अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में फल पक्वनावदि अर्थात वृक्ष में फल लगने की अवधि से लेकर उसके परिपक्व होने तक के दौरान होने वाली रख–रखाव लागत की पूरी जानकारी विस्तार में दी गई है।

सारणी 2: गेस्टशन पीरियड के दौरान अनार के बगीचे की रख-रखाव लागत

क्र.सं.	विशिष्ट	पहला वर्ष (रूपए प्रति हेक्टेयर)	दूसरा वर्ष (रूपए प्रति हेक्टेयर)	कुल लागत
I.	**परिवर्तनीय लागत**			
A.	**श्रम लागत**			
1.	इंटरकल्चरल क्रियाएं	2602.63	3089.34	5691.97
2.	ड्रिप सिंचाई के लिए मिट्टी चढ़ाना और क्यारी बनाना	4421.03	5406.85	9827.88
3.	गैपफिलिंग	0.00	1265.34	1265.34
4.	फार्म यार्ड खाद डालना	4136.54	5569.88	9706.42
5.	उर्वरक डालना	2327.69	2880.00	5207.69
6.	निराई–गुड़ाई	3698.52	4593.20	8291.72
7.	पौधे की कटाई–छटाई	2546.10	3150.60	5696.70
8.	पौध संरक्षण रसायन का छिड़काव	3220.50	3776.30	6996.80
9.	सिंचाई	2085.61	2458.94	4544.55
10.	फुटकर	902.65	1105.00	2007.65
	कुल श्रम लागत	**25941.27**	**33295.54**	**59236.81**
B.	**सामग्री की लागत**			
1.	अंतराल भरने के लिए पौध	0.00	2200.00	2200.00
2.	खाद	14561.1	15144.77	29705.92
3.	उर्वरक	16697.9	20586.65	37284.58
4.	पौध संरक्षण रसायन	9280.00	9850.87	19130.87
5.	अन्य	950.00	880.00	1830.00
	कुल सामग्री की लागत	**41489.0**	**48662.29**	**90151.37**
C.	**कार्यशील पूँजी पर 7.0 प्रतिशत की दर से ब्याज**	**2120.50**	**2445.36**	**4565.86**
	कुल परिवर्तनीय लागत (A+B+C)	**69550.77**	**84403.19**	**153954.04**
II.	**निश्चित लागत**			
1.	भूमि के किराये के मूल्य (अगर भूमि किराये पर ली गई है)	13956.0	13956.07	27912.14
2.	भू–राजस्व	120.00	120.00	240.00
3.	स्थाई पूंजीपर 12 प्रतिशत की दर से ब्याज	1689.13	1689.13	3378.26
4.	मूल्य ह्रास (Depriciation)	785.25	850.00	1635.25
	कुल निश्चित लागत	**16550.4**	**16615.20**	**33165.65**
	कुल	**86101.17**	**101018.39**	**187119.69**

स्रोत :रेडे एवं भट्टाचार्य (2018)

सारणी 3 में अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में फल पक्वनावदि अर्थात वृक्ष में फल लगने की अवधि से लेकर उसके परिपक्व होने तक के दौरान होने वाली रख–रखाव लागत की पूरी जानकारी विस्तार में दी गई है।

सारणी 3: फल पक्वनावदि के दौरान अनार के बगीचे की रख-रखाव लागत (तीसरे वर्ष के पश्चात)

क्र.सं.	विशिष्ट	रूपए प्रति हेक्टेयर
I.	**परिवर्तनीय लागत**	
A.	**श्रम लागत**	
1.	पौधे की कटाई–छटायीं	13361.36
2.	इंटरकल्चरल क्रियाएं	3086.13
3.	मिट्टी चढ़ाना और क्यारी बनाना	3165.20
4.	फार्म यार्ड खाद डालना	2960.85
5.	उर्वरक डालना	2056.42
6.	निराई–गुड़ाई	4174.65
7.	पौध संरक्षण रसायन का छिड़काव	3742.67
8.	सिंचाई	2209.83
9.	हार्वेस्टिंग	4097.30
10.	फुटकर	981.57
	कुल श्रम लागत	**39835.96**
B.	**सामग्री की लागत**	
1.	खाद	21928.00
2.	उर्वरक	26582.41
3.	पौध संरक्षण रसायन	19145.63
4.	अन्य	1352.00
	कुल सामग्री की लागत	69008.04
C.	**कार्यशील पूंजी पर 7.0 प्रतिशत की दर से ब्याज**	**1998.60**
	कुल परिवर्तनीय लागत (A+B+C)	**110842.6**
II.	**निश्चित लागत**	
1.	भूमि के किराये के मूल्य (अगर भूमिकिराये पे लीगई है)	14956.07
2.	भूराजस्व	120.00
3.	स्थाईपूंजीपर 12 प्रतिशत की दर से ब्याज	1809.13
4.	मूल्य ह्रास (Depriciation)	780.20
	कुल निश्चित लागत	**17665.40**
	कुल	**128508.0**

स्रोत : रेडे एवं भट्टाचार्य (2018)

अनार के बाग से उपज एवं लाभ

अनार में आर्थिक उपज रोपण के तीसरे वर्ष से प्रारम्भ हो जाती है और यह बारहवें वर्ष तक जारी रहता है। अर्ध–शुष्क उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में, अनार की कुल औसत उपज 9.38 टन प्रति हेक्टेयर है। इन क्षेत्रों में ऐसा देखा गया है कि प्रति हेक्टेयर औसत उपज तीसरे वर्ष से आठ वर्ष तक बढ़ती है और उसके बाद बारहवें वर्ष तक घटती जाती है। प्रति वर्ष अनार के वृक्ष से मिल रहे फलों के उपज और उससे प्राप्त हो रहे रिटर्न की विस्तृत जानकारी सारणी 4 में साझा की गई है। अनार के फल का मूल्य दर हमने औसतन 45–50 रूपए पर किलोग्राम लिया गया है।

अनार के बगीचे का नकदी प्रवाह विश्लेषण

सारणी 5 में अनार के बगीचे का नकदी प्रवाह विश्लेषण किया गया है जो दर्शाता है की अनार की खेती किसानों के लिए लाभदायक है और यह कृषकों को प्रतिवर्ष अच्छा आय भी प्रदान करती है।

सारणी 4: अनार के बाग से उपज एवं रिटर्न

अनार के बाग की उम्र (साल)	उपज (टन प्रति हेक्टेयर)	दर (रूपए प्रति टन)
तीसरा	6.74	303139.53
चौथा	9.86	443720.93
पांचवाँ	10.59	476330.23
छठा	11.49	517077.91
सातवाँ	12.50	562433.72
आठवाँ	13.91	626058.14
नवाँ	13.39	602441.86
दसवाँ	11.99	539448.84
ग्यारहवाँ	8.62	387906.98
बारहवाँ	7.88	354420.00

स्रोत : रेडे एवं भट्टाचार्य (2018)

सारणी 5: अनार के बगीचे का नकदी प्रवाह विश्लेषण

वर्ष	पैसे का बहिर्गमन (रूपए प्रति हेक्टेयर)	नकदी आना (रूपए प्रति हेक्टेयर)	शुद्ध नकदी प्रवाह (रूपए प्रति हेक्टेयर)
पहला	265500.09	0.00	.265500.09
दूसरा	103298.98	0.00	.103298.98
तीसरा	128508.00	303139.53	174631.53
चौथा	128508.00	443720.93	315212.93
पाँचवाँ	128508.00	476330.23	347822.23
छठा	128508.00	517077.91	388569.90
सातवाँ	128508.00	562433.72	433925.72
आठवाँ	128508.00	626058.14	497550.13

नवाँ	128508.00	602441.86	473933.86
दसवाँ	128508.00	539448.84	410940.83
ग्यारहवाँ	128508.00	387906.98	259398.97
बारहवाँ	128508.00	354420.00	225912.00

स्रोत : रेडे एवं भट्टाचार्य (2018)

हिन्दी सीखे बिना भारतीयों के दिल तक नहीं पहुँचा जा सकता।

–डॉ. लोथर लुत्से

देश के सब से बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राश्ट्रभाषा की अधिकारिणी है।

–सुभाष चन्द्र बोस

हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्यवाहियाँ अपनी–अपनी प्रांतीय भाषाओं में चलाना चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्यवाहियों की भाषा हिन्दी होनी चाहिए।

–महात्मा गाँधी

हिन्दी जब तक शिक्षा का माध्यम नहीं बनती, उसमें मौलिक वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि संभन नहीं।

–निहालकरण सेठी

हिन्दी के बिना भारत की राष्ट्रीयता की बात करना व्यर्थ है।

–डॉ. वी.वी. गिरि

हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

–महर्षि दयानन्द सरस्वती

हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है, यह सब की सहोदरी है।

–महादेवी वर्मा

भारत की एकता चाहने वालो को हिन्दी अपनानी ही चाहिए।

–जे. वेंकट रामन

अगर हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र बनाना है तो राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।

–महात्मा गाँधी

पेड़ों के माध्यम से भारी धातुओं (Heavy Metals) का फाइटोरेमेडिएशन: कृषिवानिकी परिप्रेक्ष्य

बद्रे आलम, सुकुमार तरिया, मनीषा कमारी, सुशील कुमार एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–248003 (उ.प्र.)

परिचय

विश्व स्तर पर मिट्टी और जल में भारी धातुओं का प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है, जो हमारे पर्यावरण में इन हानिकारक तत्वों की उपस्थिति को बढ़ा रहा है। यह वृद्धि मुख्यतः मानव निर्मित गतिविधियों का परिणाम है। इनमें खनन कार्य, धातुओं का गलना, विद्युत लेपन प्रक्रियाएँ, वाहनों से निकलने वाला धुआँ, ईंधन और ऊर्जा का उत्पादन, अत्यधिक कृषि, अपशिष्ट कीचड़ का निपटान, विद्युत संचरण और सैन्य कार्यवाहियाँ प्रमुख हैं। ये सभी गतिविधियाँ मिलकर पर्यावरण में भारी धातुओं के स्तर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारी धातुएँ प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले तत्व हैं जिनके अपेक्षाकृत उच्च परमाणु भार या परमाणु संख्या होती है और जिनका घनत्व पानी से कम से कम 5 गुना अधिक होता है, जिसमें सीसा, पारा, कैडमियम, क्रोमियम, आर्सेनिक जैसे पदार्थ शामिल हैं। ये भारी धातुएँ कम सांद्रता पर भी जीवित जीवों के लिए विषाक्त हो सकती हैं और सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व के प्राथमिकता वाली धातुओं में शामिल हैं। मिट्टी में आवश्यक और गैर–आवश्यक दोनों प्रकार की भारी धातुओं की बढ़ी हुई सांद्रता के कारण, पौधों की प्रजातियों में विषाक्तता के लक्षण और वृद्धि अवरोध होता है। भारी धातुएँ शारीरिक प्रक्रियाओं जैसे पौधे–जल संबंध, श्वसन, कोशिका विस्तार, प्रकाश संश्लेषण, नाइट्रोजन चयापचय और खनिज पोषण को बाधित करती हैं। भारी धातुएँ मुख्य रूप से पौधों की विभिन्न शारीरिक गतिविधियों और संरचनात्मक प्रतिरूप को प्रभावित करती हैं जैसे कि कोशिकांगों की संरचनात्मक अव्यवस्था और झिल्ली का विघटन जो अंततः पौधे की वृद्धि को कम करता है। भारी धातुओं की अधिकता प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) का उत्पादन कर सकती है जो कोशिकीय बाधाओं को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त करती हैं। ये ROS झिल्ली लिपिड पेरोक्सीडेशन को प्रेरित कर सकते हैं, आनुवंशिक सामग्री की अखंडता को खतरे में डाल सकते हैं, प्रकाश संश्लेषक कोशिकांगों को बाधित कर सकते हैं, एंजाइमों को अवरुद्ध कर सकते हैं, अमीनो एसिड संरचनाओं को बदल सकते हैं और आवश्यक मैक्रोमॉलिक्यूल्स के टूटने का कारण बन सकते हैं। फाइटोरेमेडिएशन एक पर्यावरण अनुकूल, सौर ऊर्जा संचालित और लागत प्रभावी विसंदूषण तकनीक है जो जीवित हरे पौधों और उनके संबद्ध सूक्ष्मजीवों का उपयोग पर्यावरण से प्रदूषकों को कम करने के लिए करती है। *Dalbergia sissoo, Eucalyptus spp., Melia dubia, Acacia senegal, Pongamia pinnata, Butea monosperma, Azadirachta indica, leucaena leucocephala* में भारी धातुओं के अनुक्रमण की क्षमता होने की सूचना मिली है। इन वृक्ष प्रजातियों में कैडमियम, सीसा, जस्ता क्रोमियम , तांबा, निकल, लोहा, मैंगनीज जैसी भारी धातुओं को संचित करने और सहन करने की क्षमता पाई गई है। कुछ भारी धातुओं जैसे सीसा और पारा का कोई ज्ञात जैविक कार्य नहीं है, जबकि तांबा और जस्ता जैसी भारी धातुएँ पौधों को सह–एंजाइम और एंजाइमी प्रोस्थेटिक समूहों के एक हिस्से के रूप में आवश्यक होती हैं। वे सूक्ष्म पोषक तत्वों के रूप में कार्य करते हैं। कुछ अति–संचयक पौधे प्रजातियाँ जैसे *Noccaeacærulescens, Arabidopsishalleri, Sedum alfredii, Violabaoshanensi, Noccaeaprecox, Phytolaccaamericana* ने जड़ के व्यवहार पैटर्न को अनुकूलित करके कैडमियम के प्रति उल्लेखनीय सहनशीलता विकसित की है। अति–संचयक पौधे फसलों की तुलना में मिट्टी से धातुओं को अधिक मात्रा में अवशोषित और संग्रहीत कर सकते हैं। धातु–समृद्ध मिट्टी पर उगने पर, इन पौधों के ऊपरी भाग जैसे तने (stem) और पत्तियों में धातु की सांद्रता फसलों की तुलना में 10 से 500 गुना अधिक होती है। फाइटोरेमेडिएशन विधि के तीन प्रमुख वर्ग हैं: शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक विधि।

शारीरिक विधि

फाइटोरेमेडिएशन में कई विधियाँ शामिल हैं जो पौधों की जैविक प्रक्रियाओं का उपयोग करती हैं, जिसमें भारी धातुओं का स्थानांतरण और संचय शामिल है, जिनका उपयोग विभिन्न तकनीकों जैसे फाइटोएक्सट्रैक्शन (जिसे फाइटोएक्यूमुलेशन भी कहा जाता है), फाइटोफिल्ट्रेशन, फाइटोस्टेबिलाइजेशन, फाइटोवोलेटिलाइजेशन, और फाइटोडिग्रेडेशन में किया जाता है, जो प्रत्येक पर्यावरण में प्रदूषक हटाने या नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं को लक्षित करती हैं (Figure-1)

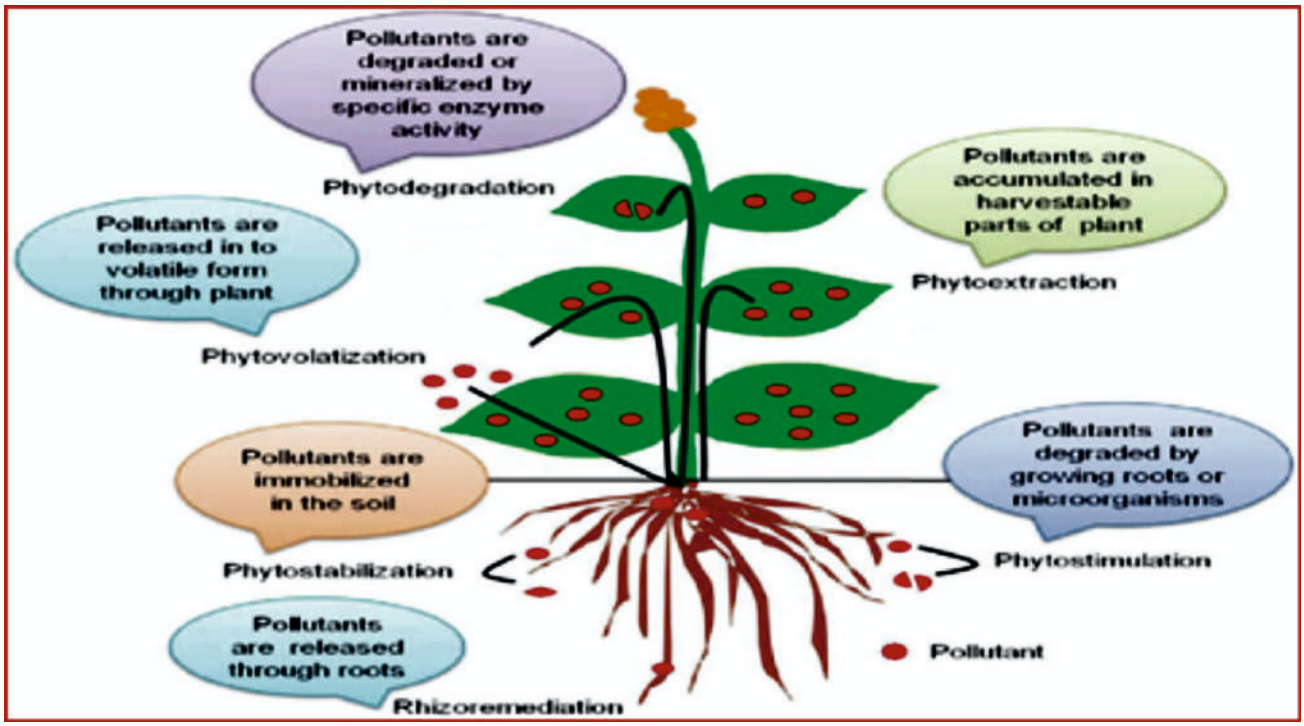

Figure-1: Mechanisms of Phytoremediation (Open Source)

फाइटोएक्यूमुलेशन

पेड़ों और पौधों में भारी धातुओं का स्थानांतरण जड़ों द्वारा धातुओं के अवशोषण, और जाइलम के माध्यम से हवाई भागों में वितरण को शामिल करता है, जो विभिन्न शारीरिक और आणविक विधि द्वारा नियंत्रित होता है। पौधों में कैडमियम संचय से बचने के लिए, पौधों ने जाइलम में कैडमियम के प्रवेश को सीमित करने के लिए दो मुख्य तंत्र विकसित किए हैं। पहले, वे जड़ कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में कैडमियम–कीलेट्स का उत्पादन करते हैं, फिर इन कैडमियम–कीलेट्स को रिक्तिका में अनुक्रमित करते हैं ताकि सिम्प्लास्ट से जाइलम तक कैडमियम की आपूर्ति को सीमित किया जा सके। इसके बाद, वे एपोप्लाज्म से जाइलम तक कैडमियम के बाहरी कोशिकीय प्रवेश को सीमित करने के लिए भौतिक बाधाएँ विकसित करते हैं।

थलास्पी प्रजातियाँ को जस्ता, कैडमियम और सीसा से समृद्ध कैलामाइन मिट्टी में उगाए जाने पर भारी धातु संचय क्षमताएँ प्रदर्शित करती हैं। ये पौधे अपने शुष्क वजन के 3% से अधिक तक जस्ता, 0.1% तक कैडमियम और 0.8% तक सीसा संचित कर सकते हैं। दूसरी ओर, परित्यक्त खनन क्षेत्रों में अक्सर आर्सेनिक (As) और सीसा (Pb) जैसे विषाक्त प्रदूषक पाए जाते हैं। इस पर्यावरणीय खतरे से निपटने के लिए, पॉपलर पेड़ों (Populus devidiana) की रणनीतिक खेती एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। ये वृक्ष प्रजातियाँ फाइटोरेमेडिएशन प्रक्रिया में उत्कृष्ट प्रदर्शन करती हैं, भारी धातुओं को कुशलतापूर्वक अवशोषित कर उन्हें अनुक्रमित और चयापचित करती हैं, जिससे दूषित स्थलों का प्राकृतिक पुर्नस्थापन संभव हो पाता है।

राइजोफिल्ट्रेशन

राइजोफिल्ट्रेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो पानी से प्रदूषकों को हटाने के लिए पौधों की जड़ों का उपयोग करती है। इस विधि में पौधों को हाइड्रोपोनिक रूप से उगाया जाता है और उनकी जड़ों का उपयोग प्रदूषित अपशिष्ट जल से विषाक्त धातुओं को अवशोषित, संकेंद्रित और अवक्षेपित करने के लिए किया जाता है। यह तकनीक विशेष रूप से धातुओं, रेडियोन्यूक्लाइड्स और अन्य अकार्बनिक यौगिकों से दूषित पानी के उपचार के लिए प्रभावी है। जैसे–जैसे पानी जड़ क्षेत्र से गुजरता है, प्रदूषक पौधे की जड़ों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं, जड़ की सतह पर अधिशोषित हो जाते हैं, या जड़ों के चारों ओर अवक्षेपित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया का उपयोग भूजल, सतही जल और अपशिष्ट जल के उपचार के लिए किया जा सकता है। राइजोफिल्ट्रेशन उन पौधों के साथ सबसे प्रभावी है जो विस्तृत जड़ प्रणाली उत्पन्न करते हैं और जल्दी से विषाक्त पदार्थों को हटा सकते हैं। राइजोफिल्ट्रेशन के लिए आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले कुछ पौधों में सूरजमुखी, भारतीय सरसों, तंबाकू, राई, पालक और मक्का शामिल हैं, और कुछ जलीय पौधों का अध्ययन जलविरोधी कार्बनिक पदार्थ, यूरेनियम, आर्सेनिक, सीसा, क्रोमियम (III) सहित प्रदूषकों को निकालने की उनकी क्षमता के लिए किया गया है।

फाइटोस्टेबिलाइजेशन

फाइटोस्टेबिलाइजेशन एक विशिष्ट फाइटोरेमेडिएशन तकनीक है जो पर्यावरण से प्रदूषकों को हटाने के बजाय उनके इन–सीटू (*In situ*) अचलीकरण पर केंद्रित है। यह विधि जड़ों द्वारा अवशोषण और संचय, जड़ की सतहों पर अधिशोषण, और जड़ क्षेत्र में अवक्षेपण के माध्यम से मिट्टी में प्रदूषकों को स्थिर करने के लिए पौधों का उपयोग करती है। यह प्रक्रिया मिट्टी में रासायनिक या भौतिक स्थिरीकरण के माध्यम से प्रदूषकों को कम हानिकारक बनाती है, जिसका उद्देश्य प्रदूषक की गतिशीलता को कम करना और भूजल या वायु में प्रवास को रोकना है। फाइटोस्टेबिलाइजेशन में उपयोग किए जाने वाले पौधे विस्तृत जड़ प्रणाली विकसित करते हैं जो मिट्टी के कटाव को रोकती है और पानी के रिसाव को कम करती है, जो इसे विशेष रूप से धातु–दूषित मिट्टी के लिए प्रभावी बनाता है। यह तकनीक उन स्थलों के प्रबंधन में लाभदायक है जहाँ प्रदूषकों को हटाना अव्यवहार्य या संभावित रूप से हानिकारक है, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों जैसे चुनौतीपूर्ण वातावरण में। यह बड़े क्षेत्रों के लिए भी मूल्यवान है जहाँ अन्य उपचार विधियाँ महंगी या अव्यावहारिक हैं। फाइटोस्टेबिलाइजेशन के लिए सबसे उपयुक्त पौधों में उच्च वाष्पोत्सर्जन दर होती है और वे प्रदूषकों के उच्च स्तर को सहन करते हैं, जिनके उदाहरणों में घास, सेज, चारा पौधे, पॉपलर और कॉटनवुड शामिल हैं। कुल मिलाकर, फाइटोस्टेबिलाइजेशन पर्यावरणीय उपचार के लिए एक अनूठा दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो प्रदूषकों को हटाने के बजाय उनके नियंत्रण पर केंद्रित है।

फाइटोवोलेटिलाइजेशन

फाइटोवोलेटिलाइजेशन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें पौधे मिट्टी या पानी से प्रदूषकों को अवशोषित कर उन्हें वाष्पशील रूप में वातावरण में मुक्त करते हैं। यह पर्यावरण सुधार की एक विधि है जो पौधों की प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग करती है। इस प्रक्रिया में पॉपलर जैसे वृक्ष महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पॉपलर के पेड़ विशेष रूप से सेलेनियम से दूषित मिट्टी और पानी के उपचार में प्रभावी हैं। ये पेड़ अपनी जड़ों द्वारा सेलेनियम को अवशोषित करते हैं, उसे डाइमेथाइलसेलेनाइड जैसे वाष्पशील यौगिकों में बदलते हैं, और फिर अपनी पत्तियों के माध्यम से वातावरण में मुक्त कर देते हैं। इस तरह, फाइटोवोलेटिलाइजेशन प्रदूषित क्षेत्रों के प्राकृतिक उपचार का एक प्रभावी तरीका प्रदान करता है।

फाइटोडिग्रेडेशन

फाइटोडिग्रेडेशन विषाक्त पदार्थों को हटाने के लिए पौधों की एक जैव रासायनिक रणनीति है। यह डिहाइड्रोजिनेज और ऑक्सीजिनेज जैसे एंजाइमों के माध्यम से बाह्य रासायनिक पदार्थों को पौधे के ऊतकों में समाहित करता है। यह प्रक्रिया

स्वतंत्र रूप से या राइजोस्फेरिक सूक्ष्मजीवों के साथ होती है। इस उद्देश्य के लिए जैव–इंजीनियर्ड पौधे (ट्रांसजेनिक पॉपलर) का उपयोग किया जाता है। यह विशेष रूप से कीटनाशकों, विस्फोटकों और कुछ पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन जैसे कार्बनिक प्रदूषकों के लिए प्रभावी है। फाइटोडिग्रेडेशन कई लाभ प्रदान करता है, जिसमें इसकी पर्यावरण अनुकूल प्रकृति, पारंपरिक उपचार विधियों की तुलना में लागत प्रभावशीलता, और प्रदूषकों का स्थल पर उपचार करने की क्षमता शामिल है। हालांकि, इसकी कुछ सीमाएं भी हैं, जैसे कि कुछ प्रकार के प्रदूषकों के खिलाफ अप्रभावी होना, संभावित रूप से धीमी प्रक्रिया, और पौधों की वृद्धि और जलवायु परिस्थितियों पर निर्भरता। उपयुक्त पौधों का चयन महत्वपूर्ण है, क्योंकि विभिन्न प्रजातियों को विशिष्ट प्रदूषकों को विघटित करने और प्रदूषित वातावरण में जीवित रहने की उनकी क्षमता के आधार पर चुना जाता है। हाइब्रिड पॉपलर (पॉपुलस • यूरामेरिकाना क्लोन I–214) कैडमियम (Cd), एक विषाक्त भारी धातु, को संचित करने और संभावित रूप से विघटित करने की क्षमता पाई गई है।

राइजोडिग्रेडेशन

राइजोडिग्रेडेशन एक जैव उपचार तकनीक है जिसमें मिट्टी में मौजूद सूक्ष्मजीव राइजोस्फीयर में कार्बनिक प्रदूषकों को विघटित करते हैं, जो पौधे की जड़ों के आसपास का क्षेत्र होता है। राइजोस्फीयर आमतौर पर पौधे की जड़ के चारों ओर 1–2 मिमी.. तक फैला होता है। इस क्षेत्र में, सूक्ष्मजीवीय गतिविधि आमतौर पर बल्क मिट्टी की तुलना में 10–100 गुना अधिक होती है। पौधों की जड़ें राइजोस्फीयर में विभिन्न यौगिकों का स्राव करती हैं, जिनमें अमीनो एसिड, फ्लेवोनोइड्स, कार्बोहाइड्रेट और कार्बनिक एसिड शामिल हैं। ये जड़ स्राव मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के लिए पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं, जो उनकी वृद्धि और गतिविधि को प्रोत्साहित करते हैं । राइजोस्फीयर में यह बढ़ी हुई सूक्ष्मजीवीय गतिविधि इस क्षेत्र में कार्बनिक प्रदूषकों के बढ़े हुए विघटन में योगदान देती है।

हाइड्रोलिक नियंत्रण

यह फाइटोरेमेडिएशन तकनीक विशेष रूप से भूमिगत क्षेत्र में जल और प्रदूषक स्तर दोनों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करती है। इस प्रक्रिया में पेड़ प्राकृतिक पंप के रूप में कार्य करते हैं, जो भूमिगत जलभृत से पानी निकालते हैं। गहरी जड़ प्रणाली वाले पेड़ भूजल को नियंत्रित करते हैं, जिससे प्रभावित स्थलों से प्रदूषकों का प्रवास सीमित होता है। यूकेलिप्टस प्रजातियाँ , सैलिक्स प्रजातियाँ , पॉपुलस प्रजातियाँ हाइड्रोलिक नियंत्रण प्रक्रिया के लिए सर्वोत्तम पाई गईं है।

जैव रासायनिक विधि

फाइटोकेलेशनः फाइटोकेलेशन एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें पौधे भारी धातुओं के संपर्क में आने पर विशेष प्रकार के ओलिगोपेप्टाइड लिगैंड का उत्पादन करते हैं। इन लिगैंड्स को फाइटोकेलेटिन्स (PCs) कहा जाता है। ये भारी धातुओं से जुड़कर स्थिर परिसर बनाते हैं, जो धातुओं को अलग करके पौधों के लिए उनकी विषाक्तता को कम करते हैं। फाइटोकेलेटिन्स का संश्लेषण ग्लूटाथियोन को प्राथमिक निर्माण खंड के रूप में उपयोग करके किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप Gly-(y-Glu-Cys)n संरचना वाला एक पेप्टाइड बनता है, जहाँ n का मान 2 से 11 के बीच होता है। मेटालोथियोनिन्स (MTs) फाइटोकेलेटिन्स (PCs) के समान कार्य करते हैं और ये छोटे, जीन एन्कोडेड, सिस्टीन–समृद्ध पॉलीपेप्टाइड हैं। यह प्रणाली पारा, कैडमियम, सीसा, ताँबा और जस्ता जैसे विभिन्न धातु आयनों का पता 100 डि से 10 उड की सांद्रता सीमा में लगा सकती है। इसमें जस्ते के प्रति सबसे अधिक संवेदनशीलता और सीसे के प्रति सबसे कम संवेदनशीलता पाई जाती है।

आणविक विधि

फाइटोरेमेडिएशन के लिए पादप आनुवंशिक इंजीनियरिंग एक प्रभावी पद्धति है, जो धातु आयन अवशोषण, अंतःकोशिकीय यातायात, रेडॉक्स परिवर्तन, कीलेशन, रिक्तिका अनुक्रमण और वाष्पीकरण में शामिल जीवसूत्र का उपयोग करती है। इस प्रक्रिया के लिए उपयुक्त पौधों में उच्च धातु सहनशीलता और गहन जड़ प्रणाली होनी चाहिए।

हाल के वर्षों में CRISPR-Cas9, ZFN, TALENs, CRMAGE और MuGENT जैसी जीवसूत्र संपादन तकनीकें फाइटोरेमेडिएशन के लिए आशाजनक दृष्टिकोण के रूप में उभरी हैं। *Arabidopsis helleri, Hirschfeldia incana, Noccaea caerulescens, Pteris vittate, Brassica juncea* जैसी कई पौधे प्रजातियाँ इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन पौधों के जीनोम अनुक्रमण से प्राप्त आनुवंशिक जानकारी आगे के अनुसंधान के लिए मूल्यवान है। एग्रोबैक्टीरियम–मध्यस्थता रूपांतरण और CRISPR&Cas9 तकनीक का उपयोग करके चावल जैसे पौधों में धातु परिवहनकर्ता जीनों को नियंत्रित किया गया है। CRISPR&Cas9 तकनीक, विशेष रूप से gRNA का उपयोग करके, जीन अभिव्यक्ति को संशोधित करने और ट्रांसक्रिप्शन कारकों को नियंत्रित करने में प्रभावी साबित हो रही है। ये आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीकें पौधों में फाइटोरेमेडिएशन क्षमताओं को बढ़ाने के लिए नई संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं, जो भविष्य में पर्यावरण सुधार के लिए महत्वपूर्ण हो सकती हैं।

भविष्य का परिप्रेक्ष्य

विभिन्न वृक्ष प्रजातियों ने भारी धातुओं के फाइटोरेमेडिएशन में महत्वपूर्ण क्षमता दिखाई है, जिनमें यूकेलिप्टस, पॉपलर, और विलो प्रजातियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हालांकि, वृक्ष–आधारित फाइटोरेमेडिएशन में कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। इनमें लंबा उपचार समय, सीमित जड़ गहराई, जैव मात्रा निपटान की समस्याएँ, जलवायु और मिट्टी की परिवर्तनशीलता, भारी धातुओं की जैव उपलब्धता, और पत्ती कचरे या शाकाहार के माध्यम से खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करने वाली भारी धातुओं से संभावित पारिस्थितिक जोखिम शामिल हैं। भविष्य के अध्ययनों को वृक्षों की आनुवंशिक इंजीनियरिंग और चयनात्मक प्रजनन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, ताकि बेहतर भारी धातु अवशोषण क्षमता, तेज विकास दर, और उच्च धातु सांद्रता के प्रति बेहतर सहनशीलता वाली किस्मों का विकास किया जा सके। जैसे–जैसे भारी धातु प्रदूषण वैश्विक पर्यावरणीय और स्वास्थ्य जोखिमों को बढ़ाता जा रहा है, वृक्ष–आधारित फाइटोरेमेडिएशन एक टिकाऊ और लागत प्रभावी समाधान प्रदान करता है, जो निरंतर जाँच और व्यापक कार्यान्वयन के योग्य है।

घर के आँगन में जैसे तुलसी दल या सुहागन के माथे पर बिन्दी।
देवता के मुकुट पर जैसे फूल, वैसी ही भारत के भाल की हिन्दी।

–गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव

सम्मान तिरंगे का करते,
सम्मान राष्ट्र के गाने का।
यदि मन में रखते ध्येय,
देश को जग में उच्च बनाने का।
सम्मान तुम्हें करना होगा,
माँ के माथे की बिन्दी का।
सम्मान करो निज भाषा का,
सम्मान करो तुम हिन्दी का।

– डॉ. मुरारीलाल सारस्वत

चिरौंजी पौधों के विभिन्न भागों का महत्व एवं उपयोग

अशोक यादव[1], प्रसाद सोनवलकर[2], प्रियंका सिंह[1], संदीप गर्ग[3], हरलाल मीणा, अनिल कुमार, बद्रे आलम[1]एवं ए. अरूणाचलम[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)
[2]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

चिरौंजी एक अत्यधिक पौष्टिक पौधा है जो एनाकार्डिएसी परिवार से संबंधित है और इसे चार, चारोली, प्रियल भी कहा जाता है। यह भारत के विभिन्न राज्यों जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और आंध्र प्रदेश में पाया जाता है। चिरौंजी के सभी भाग जैसे जड़, पत्ते, तना और छाल का उपयोग औषधि के रूप में किया जा रहा है। चिरौंजी फल पोषक तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं और विशेष रूप से कार्बोहाइड्रेट, विटामिन और खनिजों में उच्च स्रोत हैं। चिरौंजी के बीज में 3 प्रतिशत नमी, 59 प्रतिशत वसा, 19–21.6 प्रतिशत प्रोटीन, 12.1 प्रतिशत स्टार्च, 3.8 प्रतिशत फाइबर, कैल्शियम 279 मिलीग्राम, 528 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 8.5 मिलीग्राम लोहा, विटामिन में 0.69 मिलीग्राम थायमिन पाया जाता है इसके अलावा चिरौंजी फल में फिनोल, फ्लेवोनोइड्स और एंथोसायनिन जैसे एंटीऑक्सीडेंट भी होते हैं।

वनस्पति विज्ञान

पेड: चिरौंजी पर्णपाती वृक्ष हैं जो 13 से 18 मीटर तक की ऊँचाई तक पहुँचते हैं। छत्र या पेड़ 5 से 8 मीटर तक फेला होता है। इनका तना सीधा और छत्र गोल होता है। छाल खुरदरी और गहरे भूरे से काले रंग की होती है, जो कभी–कभी उखड़ जाती है।

पत्तियाँ: मोटी, चौड़ी आयताकार, कुंद, कभी–कभी नोकदार, ऊपर से चिकनी, नीचे से रोएँदार, शिराएँ दिखाई देने वाली, गोल आधार, मुख्य शिराओं के 10–20 जोड़े, लंबे डंठल (लगभग 1.2 सेमी.)। ये आमतौर पर लगभग 5–20 सेमी. लंबाई और 2.5–5 सेमी. चौड़ाई में होते हैं। पत्तियाँ आमतौर पर चमकदार हरे रंग की होती हैं।

फूल: चिरौंजी का पौधा मार्च के महीने में फूलना शुरू कर देता है जो छोटे फूल होते हैं जो हरे–सफेद रंग के होते हैं। फूल अक्षीय पैनिकल्स में व्यवस्थित होते हैं जो अधिक घने होते हैं। ये आमतौर पर कीटों द्वारा परागित होते हैं।

फल: चिरौंजी का फल अप्रैल से मई के बीच तोड़ा जाता है और फल का प्रकार एक ड्रूप होता है, जिसमें एक बीज होता है जो एक कठोर बाहरी आवरण में बंद होता है। फल का आकार लंबाई और चौड़ाई में 1–2 सेमी. होता है। फल कटाई के समय शुरू में हरा होता है या पकने के समय इसका रंग गहरा बैंगनी रंग का हो जाता है। कठोर आवरण के अंदर, बीज खाने योग्य होता है और इसका स्वाद अखरोट जैसा होता है, जो खाना पकाने और कन्फेक्शनरी में बहुत मूल्यवान होता है।

चिरौंजी का वर्गीकरण

जगत–प्लांटे

फाइलम–ट्रैकियोफाइटा

वर्ग–मैग्नोलियोप्सिडा

ऑर्डर–स्पिंडल्स

परिवार–एनाकार्डिएसी

जीनस–*बुचनानिया*

प्रजाति–*कोचिनचिनेन्सिस*

महत्व और उपयोग

चिरौंजी एक बहुउद्देशीय पौधा है और चिरौंजी के पौधे के सभी हिस्से यानी पत्ते, फल, छाल, जड़े बीज और तेल का उपयोग किया जाता है। चिरौंजी के पौधे के हिस्सों के विभिन्न उपयोगों का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

1. पत्तियाँ

- **औषधीय उपयोग:** पत्तियों का उपयोग उनके सूजनरोधी गुणों के कारण गठिया जैसी बीमारियों के इलाज में किया जाता है। इनका उपयोग अल्सर और घावों के उपचार में भी किया जाता है।
- **पारंपरिक उपयोग:** स्थानीय पारंपरिक प्रथाओं में कभी–कभी पत्तियों का उपयोग त्वचा संक्रमण और सूजन के लिए प्लास्टर के रूप में किया जाता है।
- **फाइटोकेमिकल यौगिक**
  - **फ्लेवोनोइड्स**: अपने एंटीऑक्सीडेंट गुणों के लिए जाने वाले फ्लेवोनोइड्स सूजन को कम करने और पुरानी बीमारियों से बचाने में मदद करते हैं।
  - **फेनोलिक यौगिक:** ये यौगिक एंटीऑक्सीडेंट गुण प्रदर्शित करते हैं, जो पत्तियों के स्वास्थ्य लाभों में योगदान करते हैं।
  - **सैपोनिन:** पत्तियों में मौजूद सैपोनिन में रोगाणुरोधी और सूजनरोधी प्रभाव पाए गए हैं।

2. फल

- **औषधीय उपयोग:** फल के गूदे का प्रयोग अक्सर रेचक के रूप मे तथा पाचन संबंधी समस्याओं के उपचार के लिए किया जाता है।
- **पारंपरिक उपयोग:** भारत के कुछ क्षेत्रीय व्यंजनों में फलों को कच्चा खाया जाता है या मिठाइयों में इस्तेमाल किया जाता है, जिससे व्यंजनों में पोषण और स्वाद बढ़ जाता है।
- **फाइटोकेमिकल यौगिक:** इसमें आवश्यक फैटी एसिड होते हैं और यह विटामिन और खनिजों से भरपूर होता है, जो इसके पोषण संबंधी प्रोफाइल में योगदान करते हैं।

चिरौंजी फल में निम्नलिखित महत्वपूर्ण तत्व पाए जाते हैं:

सारिणी 1: फलों में पोषक तत्व

क्रमांक	पोषक तत्व	मात्रा
1	फल का वजन (ग्राम)	0.94–1.34
2	गूदा प्रतिशत	43.52–63.06
3	टीएसएस (ब्रिक्स)	19.05–23.90
4	अम्लता (प्रतिशत)	1.00–1.34
5	कुल चीनी (प्रतिशत)	13.01–15.51
6	विटामिन सी (प्रतिशत)	42.24–64.09

3. बीज

- **औषधीय उपयोग:** चिरौंजी के बीज अपने शीतल गुणों के लिए जाने जाते हैं। इन्हें पेस्ट के रूप में लगाने पर त्वचा के चकत्तों और दाग–धब्बों के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। आंतरिक रूप से, इन्हें सहनशक्ति बढ़ाने और जठरांत्र संबंधी विकारों के उपचार के लिए एक टॉनिक माना जाता है।

- **पारंपरिक उपयोगः** पारंपरिक भारतीय व्यंजनों में, बीजों का उपयोग उनके पौष्टिक स्वाद और कुरकुरे बनावट के कारण मिठाइयों और डेसर्ट में मसाला के रूप में किया जाता है। इनका उपयोग पारंपरिक अनुष्ठानों और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए आयुर्वेदिक औषधियों में भी किया जाता है।
- **फाइटोकेमिकल यौगिक**
  - **फैटी एसिडः** चिरौंजी के बीजों में ओलिक एसिड और लिनोलिक एसिड जैसे फैटी एसिड भरपूर मात्रा में होते हैं। ये त्वचा की देखभाल और सामान्य स्वास्थ्य में उनके उपयोग में योगदान करते हैं।
  - **प्रोटीन और अमीनो एसिडः** बीज आहार प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत हैं, जो शरीर के कार्यों के लिए आवश्यक अमीनो एसिड प्रदान करते हैं।
  - **एंटीऑक्सीडेंटः** बीजोंमें एंटीऑक्सीडेंट होते हैं जो ऑक्सीडेटिव तनाव से लड़ने में मदद करते हैं और एंटी–एजिंग गुणों में योगदान दे सकते हैं।

चिरौंजी की कर्नेल में निम्नलिखित पोषक तत्व पाए जाते हैं

सारणी 2: चिरौंजी में पोषण सामग्री (केरेनेल की प्रति इकाई)

क्रमांक	पोषक तत्व	मात्रा
1	वसा (ग्राम)	59
2	प्रोटीन (प्रतिशत)	63–72
3	स्टार्च (प्रतिशत)	12.1
4	फास्फोरस (मि.ग्रा)	528
5	राइबोलेविन (ग्राम)	0.53
6	नियासिन (ग्राम)	1.5
7	विटामिन सी (ग्राम)	5.0
8	तेल (प्रतिशत)	34–47
9	कैल्शियम (मि.ग्रा)	279
10	थियामीन (मि.ग्रा)	0.69

4. छाल

- **औषधीय उपयोगः** चिरौंजी के पेड़ की छाल का उपयोग इसके कसैले गुणों के कारण दस्त और त्वचा संबंधी विकारों के उपचार के लिए काढ़े में किया जाता है। पारंपरिक चिकित्सा में भी इसका उपयोग घावों को ठीक करने के लिए किया जाता है।
- **पारंपरिक उपयोगः** कुछ ग्रामीण समुदायों में, छाल के अर्क का उपयोग मुंह के कुल्ला के रूप में मौखिक स्वास्थ्य के लिए एक प्राकृतिक उपचार के रूप में किया जाता है।
- **फाइटोकेमिकल यौगिक**
  - **टैनिनः** छाल में टैनिन की उच्च मात्रा होती है, जिसमें कसैले गुण होते हैं और इसका उपयोग दस्त और त्वचा संबंधी बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है।
  - **सैपोनिनः** ये यौगिक छाल के चिकित्सीय प्रभावों में योगदान करते हैं, जैसे रोगाणुरोधी और सूजनरोधी गतिविधियाँ।

- **फ्लेवोनोइड्सः** छाल में भी मौजूद होते हैं, जो एंटीऑक्सीडेंट गुण प्रदान करते हैं।

5. जड़

- **औषधीय उपयोगः** यद्यपि अन्य भागों की तरह इसका उपयोग आमतौर पर नहीं किया जाता है, लेकिन जड़ों को कभी–कभी बुखार और सामान्य दुर्बलता के पारंपरिक उपचार में शामिल किया जाता है।
- **पारंपरिक उपयोगः** जड़ों का उपयोग स्थानीय लोक चिकित्सा में उनके कथित टॉनिक प्रभाव के लिए किया जा सकता है।
- **फाइटोकेमिकल यौगिक**
  - चिरौंजी की जड़ों में मौजूद एल्केलॉइड औषधीय लाभ प्रदान करते हैं, बुखार को कम करने और विभिन्न बीमारियों के इलाज में सहायता करते हैं।
  - जड़ों में पाए जाने वाले स्टेरॉयड को उनके प्रतिरक्षा–संशोधक प्रभावों के लिए महत्व दिया जाता है, जो पारंपरिक दवाओं की प्रभावकारिता में योगदान करते हैं।

निष्कर्ष

पारंपरिक चिकित्सा, पाक कला और त्वचा की देखभाल में इसके बहुमुखी उपयोग के कारण चिरौंजी का महत्वपूर्ण महत्व है। इसके बीज, छाल, पत्तियाँ, फल और जड़ें औषधीय गुणों से भरपूर फाइटोकेमिकल यौगिकों से भरपूर हैं, जिनमें पाचन सहायता से लेकर घाव भरने और सूजन–रोधी प्रभाव शामिल हैं। पारंपरिक चिकित्सा में, यह गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल विकारों, त्वचा रोगों और बुखार का इलाज करने की क्षमता रखता है। इसके अलावा, इसके बीज विभिन्न व्यंजनों में स्वाद और बनावट जोड़ने, उनके पाक मूल्य के लिए बेशकीमती हैं। अपने औषधीय और पाक उपयोगों के अलावा, चिरौंजी के पेड़ अपने मूल आवासों में जैव विविधता बनाए रखने में महत्वपूर्ण पारिस्थितिक भूमिका निभाते हैं। अपने विविध अनुप्रयोगों और सांस्कृतिक महत्व के साथ, चिरौंजी एक मूल्यवान संसाधन के रूप में खड़ा है, जो पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देते हुए मानव स्वास्थ्य और कल्याण में योगदान देता है।

यदि भारतीय लोक कला, संस्कृति और राजनीति में एक रहना चाहते हैं तो इसका माध्यम हिन्दी ही हो सकती है।

–चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

सरलता और शीघ्र सीखी जाने वाली भाषाओं में हिन्दी सर्वोपरि है।

–लोकमान्य तिलक

राष्ट्रभाषा, हिन्दी ही बन सकती है क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह स्थान अन्य भाषा को कभी नहीं मिल सकता।

–महात्मा गाँधी

राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है।

–लाला लाजपत राय

भारतीय मक्खन वृक्ष (महुआ) : बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आजीविका वृक्ष

अशोक यादव[1], राजीव कुमार[1], प्रसाद सोनवलकर[2], संदीप गर्ग[3], हरलाल मीणा, प्रद्युम्न सिंह, आर.पी. द्विवेदी[3], बद्रे आलम[1] एवं ए. अरूणाचलम[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

[2]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

महुआ एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है जो सपोटेसी (चीकू) परिवार से संबंधित है। इस वृक्ष का तना छोटा और काफी फैला हुआ होता है, जिसकी शाखाएं कई होती हैं। इसकी छाल मोटी, भूरे रंग की और खड़ी दरारों से भरी होती है। महुआ एक बहुउद्देशीय वृक्ष है, जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह देशी शराब, मीठे रसीले पुष्प, बीजों से तेल और लकड़ी प्रदान करता है। ग्रामीण समुदायों के लिए यह वृक्ष कल्प वृक्ष है क्योंकि यह उनकी आर्थिक स्थिरता और जीवन–शैली में सुधार करता है।

जब पोषण, औषधीय और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए नए तेल पौधों की तलाश की जाती है, तो यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि वे बड़े पैमाने पर तेल या वसा का उत्पादन करते हों। इस वृक्ष का फूलने का समय मार्च से मई तक होता है और फल जून–जुलाई में मिलते हैं। इसलिए, यह वृक्ष बुन्देलखण्ड क्षेत्र में गर्मियों के महीनों या सूखे अवधि में रोजगार सृजन में सहायक होता है जब भारी गर्मी और सिंचाई के पानी के अभाव के कारण फसल उगाना संभव नहीं होता। रितेश कुमार चौकसी के द्वारा वर्णित निम्न कविता महुआ के महत्व को दर्शाती है:

पुष्पगुच्छ से लदा है महुआ, ग्रीष्म ऋतु की हुई है दस्तक।
देख सौंदर्य महुआ का, प्रकृति भी हुई है नतमस्तक।।
धरती का यह कल्पवृक्ष है, ग्रामीण जीवन का यह अक्ष है ।
गाँव की जीविका का साधन, प्रकृति का वरदान प्रत्यक्ष है।।
जेठ की गर्मी में मुस्काता, पुष्पगुच्छ से मन हर्षाता।
श्वेत प्रसून से पेड़ दमकता, फूलों से जंगल महकाता।।
वन्य जीव को भोजन देता, जंगल को नवयुवन देता।
श्वेत मोती से पुष्प हैं मिलते, घोड़े को प्रलोभन देता ।।
महुआ के जब फूल हैं पकते, भिनसारे में खूब टपकते।
गाँव के बच्चें और महिला, लेकर डलिया आंखें तकते।।
आदिवासी की रोजी–रोटी, सूरज उगता सुबह जो होती।
उठ भिनसारे चुनने आते, डलिया लेकर दूधिया मोती ।।
महुआ रस से बनी माधवी, सोमरस या कहो वारुणी।
कंठ को तरकर, प्रसन्न चितकर, मन को भाती मद संचारिणी ।।
महुआ वृक्ष है जीवन अमृत, पर लोग ने किया कलंकित।
सिर्फ नशे से जोड़ा इसको, प्रेम का गुण रहा उपेक्षित।।

(सौजन्य : रितेश कुमार चौकसी)

यह कविता ग्रामीण जीवन में गर्मियों के दिनों में महुआ के महत्व को दर्शाती है कि किस प्रकार लोग महुआ से अपनी आजीविका चलाते हैं ।

क्षेत्र और वितरण

महुआ वृक्ष पूरे भारत के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है, विशेषकर मध्यप्रदेश उत्तर प्रदेश, ओडिशा, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड़, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु राज्यों में। महुआ वृक्ष को हर बुन्देलखण्ड जिले में कृषिवनीकरण के रूप में लगाया जाता है।

तालिका 1: बुन्देलखण्ड जिलों में महुआ का ब्लॉकवार वितरण

क्रमांक	जनपद	ब्लॉक
(अ)	**उत्तर प्रदेश**	
1.	झाँसी	मोंठ, बबीना, बड़ागाँव, चिरगाँव, मऊरानीपुर, बंगरा, गुरसराय, बामौर
2.	जालौन	माधोगढ़, रामपुरा, कुतहौंद, जालौन, कोंच, महेवा,
3.	ललितपुर	महरौनी, मड़ावरा, तालबेहट, जखौरा, बार, बिरधा
4.	चित्रकूट	मानिकपुर, मऊ, पहाड़ी, करबी, रामनगर
5.	बांदा	महुवा, बाबेरू, बिसंडा, तिंदवारी, कमासिन, जसपुरा, बदोखर खुर्द, नरैनी
6.	हमीरपुर	गोहंड, कुरारा, मौदहा, मुस्करा, राठ, सरिला
7.	महोबा	कबरई, चरखारी, पनवारी, जैतपुर बालाताल
(ब)	**मध्य प्रदेश**	
1.	छतरपुर	बड़ा मलहरा, छतरपुर, बिजावर, बक्सवाहा, गौरीहार, नौगाँव, राजनगर
2.	टीकमगढ़	जतारा, टीकमगढ़, बलदेवगढ़, पलेरा
3.	निवाड़ी	निवाड़ी, पृथ्वीपुर
4.	दमोह	हटा, दमोह, तेंदूखेड़ा, पथरिया, बटियागढ़, जबेरा, पथेरा
5.	सागर	बीना, देवरी, सागर, जैसिनगर, शाहगढ़, खुरई, मालथोन, राहतगढ़, बाँदा, केसली
6.	दतिया	दतिया, भांडेर, सेवढ़ा
7.	पन्ना	पन्ना, शाहनगर, पवई, गुनौर, अजयगढ़

पोषण संबंधी महत्व और उपयोग

फूलः महुआ के माँसल पुष्प ताजे खाए जा सकते हैं जो स्वाद में मीठे होते हैं और इनमें उच्च मात्रा में रिड्यूसिंग शुगर होती है। सूखे फूलों को घी में तलकर बवासीर के रोगियों द्वारा खाया जाता है। महुआ फूल अपने उच्च रिड्यूसिंग शुगर और पोषक तत्वों की मात्रा के लिए भी प्रसिद्ध हैं। आदिवासी लोग कच्चे फूलों को स्तनपान कराने वाली माताओं को उनकी दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए देते हैं। महुआ फूलों का उपयोग स्थानीय व्यंजनों जैसे हलवा, खीर, लापसी, मीठी पूरी और बर्फी में भी होता है।

फलः महुआ मौसमानुसार फूलता है और हरे फल उत्पन्न करता है जिसमें पीले गूदे होते हैं जो पक्षियों जैसे–तोता कोयल आदि के लिए भोजन होता है और स्थानीय जन–जातियों द्वारा भी खाया जाता है।

बीजः हरे–गूदेदार फल में 2 से 4 बीज होते हैं (स्थानीय रूप में इसे गुली के नाम से जानते हैं) और एकल बीज में दो बीजपत्र होते हैं जो सूखने के बाद खाद्य तेल के निष्कर्षण के लिए उपयोग किए जाते हैं। बीज से निकाला गया कच्चा तेल 'महुआ मक्खन' के नाम से जाना जाता है। तेल की प्रभावशीलता रेचक गुणों में होती है, साथ ही यह बवासीर के उपचार में और एक उबकाई लाने वाले एजेंट के रूप में उपयोग होता है।

तालिका 2: महुआ के फूल और फल की पोषण संरचना

घटक	फूल		फल	
	ताजा फूल	सूखा फूल	बीज	बीज केक
नमी (प्रतिशत)	74–80	19.8	–	–
प्रोटीन (प्रतिशत)	6.0–6.3	6.3	16.9	30.0
रिड्यूसिंग शुगर (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	36.3–50.6	50.6	–	–
कुल शर्करा (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	47.3–54.0	54.0	–	–
वसा या तेल (प्रतिशत)	1.6	0.5	50–61	1.0
फाइबर (प्रतिशत)	10.8	–	3.2	8.6
राख (प्रतिशत)	1.5	4.36	3.4	6.0
कैल्शियम (मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम)	45	8	–	–
फॉस्फोरस (मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम)	22	2	–	–
सैपोनिन्स (प्रतिशत)	–	–	2.5	9.8
टैनिन्स (प्रतिशत)	–	–	0.5	1.0

[स्रोतःगोपालन एटअल, (2007), स्वैन एट अल. (2007), हिवाले (2015), पटेल एट अल. (2011), पिनाकिन एट अल. (2018), सिंह और सिंह, (1991)]

पारंपरिक ज्ञान (ITKs): बुन्देलखण्ड क्षेत्र अपने प्राचीन समय से अपने परंपरा और संस्कृति के लिए जाना जाता है। महुआ का उपयोग लोगों के आहार और धार्मिक मूल्य में बड़ा स्थान रखता हैः

1. **महुआ शराबः** बुन्देलखण्ड क्षेत्र में महुआ फूलों का बड़े पैमाने पर उपयोग एक किण्वित मादक पेय देशी शराब बनाने के लिए किया जाता है, जो आदिवासियों में सबसे लोकप्रिय है। वे महुआ के फूलों को गुड़ और पानी के साथ मिलाते हैं, यह एक मीठे सूप जैसा बनता है। 8 दिन बाद, इस मिश्रण को एक बड़े बर्तन में स्टोव पर उबालते हैं। इसके बाद एक अन्य बर्तन में छेद करके उसे एक ट्यूब से जोड़कर संग्रह करते हैं। इसमें लगभग 20 से 40 प्रतिशत एल्कोहल होता है और एक किलोग्राम सूखे फूल से 300–400 मिली लीटर दारू प्राप्त होती है।
2. **डोबरीः** सूखे महुआ फूलों को पानी में उबालकर, दलिया, उबला हुआ चना और कुछ नट्स मिलाकर एक पौष्टिक व्यंजन तैयार किया जाता है, जिसे गर्मी और बरसात के मौसम में खाया जाता है। इसे स्थानीय रूप से 'डोबरी' कहा जाता है।
3. **मुरकाः** यह एक अत्यधिक ऊर्जावान पारंपरिक भोजन है जो सर्दियों के महीनों में तैयार किया जाता है। इसमें सूखे महुआ फूलों को लोहे की कढ़ाई में देशी घी में तलकर, तिल या अलसी और नारियल की गिरी मिलाकर तैयार किया जाता है।

4. **हरछठ प्रसादः** भादो मास की छठी तिथि को पूरे बुन्देलखण्ड में बलदाऊ जी के जन्मदिन पर महिलाएं अपने पुत्रों की दीर्घायु और भलाई के लिए निर्जला उपवास कर 'महुआ की डाली', 'कांस–कुसा' और 'झरबेरी' से बनी 'हरछठ' की पूजा करती है और अनाज का पारण नहीं करतीं। महिलाएं एक बेटे पर मिट्टी के एक दर्जन कुंढ़वा में सात प्रकार के भुने अनाज भरकर पूजा करती है। इस पूजा में खास बात यह है कि महिलाएं उस दिन ऐसे खेत में पैर नहीं रखतीं, जहाँ फसल पैदा होनी हो और न ही व्रत के बाद किए जाने वाले पारण में अनाज से बना भोजन खाया जाता है। इसका प्रसाद सात अलग–अलग प्रकार के भुने हुए अन्नों जैसे–चना, गेहूं, जौ, मक्का, बाजरा, ज्वार और लाई या धान के साथ महुआ फूलों को मिलाकर बनाया जाता है।

5. **महुआ पूरीः** सूखे महुआ फूलों को तिल और गेंहू का आटा के साथ मिलाकर और तेल में तलकर बनाई जाती है।

6. **महुआ का लड्डू**: यह शरीर को गर्म रखने के साथ वजन कम करने और शरीर की इम्युनिटी बढ़ाने में मदद करता है।

सामग्रीः

- महुआ : 1 किलोग्राम
- तिल : 1 किलोग्राम
- गुड़ : 500 ग्राम
- हरी इलायची : 4 से 5 नग
- ड्राईफूट : 200 से 250 ग्राम

बनाने की विधि :

- महुआ और तिल को अलग–अलग मध्यम धीमी आंच पर घी में तल लें, लगभग 5 से 6 मिनट ठंडा होने दें।
- तिल और महुआ को अलग–अलग ओखली में कूटकर पाउडर बना लें तथा गुड़ को कद्दूकस करके अलग रख लें।
- हरी इलायची को छीलकर, मोटा–मोटा पीस लें।
- एक मिश्रण का कटोरा लें, उसमें सभी सामग्री डालें, एक मुट्ठी मिश्रण लें, अपने हाथों से मिश्रण को लड्डू का आकार दें।
- लड्डू के आकार के अनुसार 50 से 60 लड्डू तैयार होंगे।

7. **दोना और पत्तलः** बड़े साइज के महुआ के पत्तों को सीकों या कांटों के साथ जोड़कर ये प्राचीन समय से भोजन परोसने के लिए प्राचीन समय से बनाए जा रहे हर्बल बर्तन हैं।

8. **महुआ बीज तेलः** इसका उपयोग पारंपरिक खाद्य पदार्थों को पकाने के लिए किया जाता है।इसके तेल की मालिश शरीर के दर्द को कम करने में प्रभावी होती है। इसका उपयोग वातरोग के उपचार में भी किया जाता है।

9. **बवासीर का इलाजः** फूलों को घी में तलकर खाने से बवासीर के रोगियों को लाभ होता है।

10. **पशु आहारः** महुआ बीज का केक पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है जिससे दूध उत्पादन में वृद्धि होती है और कुछ लोग इसका उपयोग अपने खेतों में अच्छे उर्वरक के रूप में भी करते हैं।

उपज एवं आर्थिक महत्व

हमारे देश में महुआ फूलों का वार्षिक उत्पादन 45000 मिलियन टन है। महुआ के वृक्षों में लगभग 10 से 12 साल के बाद फूल आने शुरू हो जाते हैं महुआ के फूलों के मौसम के दौरान एक छोटा परिवार लगभग 500 से 600 किलोग्राम तक सूखे फूलों का संग्रह करके 20000 से 25000 रुपया कमाता है।फूलों के संग्रह के अलावा तेल के लिए बाजार में बेचने हेतु बीजों का संग्रह भी किया जाता है। मध्य आयु के वृक्ष से महुआ फूलों की उपज लगभग 80 से 320 किग्रा–प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष होती है 60 से 80 किलोग्राम बीजों का उत्पादन होता है। सूखे हुए महुआ के फूलों का स्थानीय बाजार में मूल्य 4500 से 5000 रुपया प्रति कुंतल होता है तथा सूखे हुए बीजों का बाजार में मूल्य 1000 से 1200 रुपया प्रति कुंटल होता है।

निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएं

- महुआ का पेड़ प्राचीनकाल से भारत के विभिन्न हिस्सों में आर्थिक, धार्मिक और औषधीय महत्व रखता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में यह पेड़ केवल प्राकृतिक रूप से उगता है, इसका कोई बाग नहीं लगाया गया है। इसलिए, इसकी वैज्ञानिक विधियों का मानकीकरण करके और वाणिज्यिक रूप से रोपण की आवश्यकता है।
- महुआ पेड़ के पोषण और औषधीय महत्व को ध्यान में रखते हुए, इसके मूल्य संवर्धन के तरीकों का विकास करना आवश्यक है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बिंदु दिए गए हैं :
  - महुआ के पेड़ों के व्यवस्थित बाग लगाने के लिए उपयुक्त विधियों का विकास किया जाना चाहिए। इससे न केवल पेड़ों की संख्या बढ़ेगी, बल्कि उनकी उत्पादकता में भी सुधार होगा।
  - महुआ के विभिन्न उत्पादों जैसे तेल, पेय पदार्थ, मिठाइयाँ, और औषधीय उत्पादों का प्रसंस्करण और पैकेजिंग करना आवश्यक है। इससे महुआ के उत्पादों का मूल्य बढ़ेगा और किसान को अधिक लाभ मिलेगा।
  - महुआ के पोषण और औषधीय गुणों पर और अधिक शोध किया जाना चाहिए ताकि इसके उपयोग के नए तरीके खोजे जा सकें। इसके अलावा, नई तकनीकों का विकास किया जाना चाहिए जिससे महुआ के उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार हो सके।
  - किसानों को महुआ के पेड़ की खेती, देखभाल, और प्रसंस्करण की विधियों के बारे में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इससे उन्हें महुआ के पेड़ों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में मदद मिलेगी।
  - महुआ के उत्पादों के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अवसरों की खोज की जानी चाहिए। इससे महुआ के उत्पादों की माँग बढ़ेगी और किसानों को बेहतर मूल्य मिलेगा।

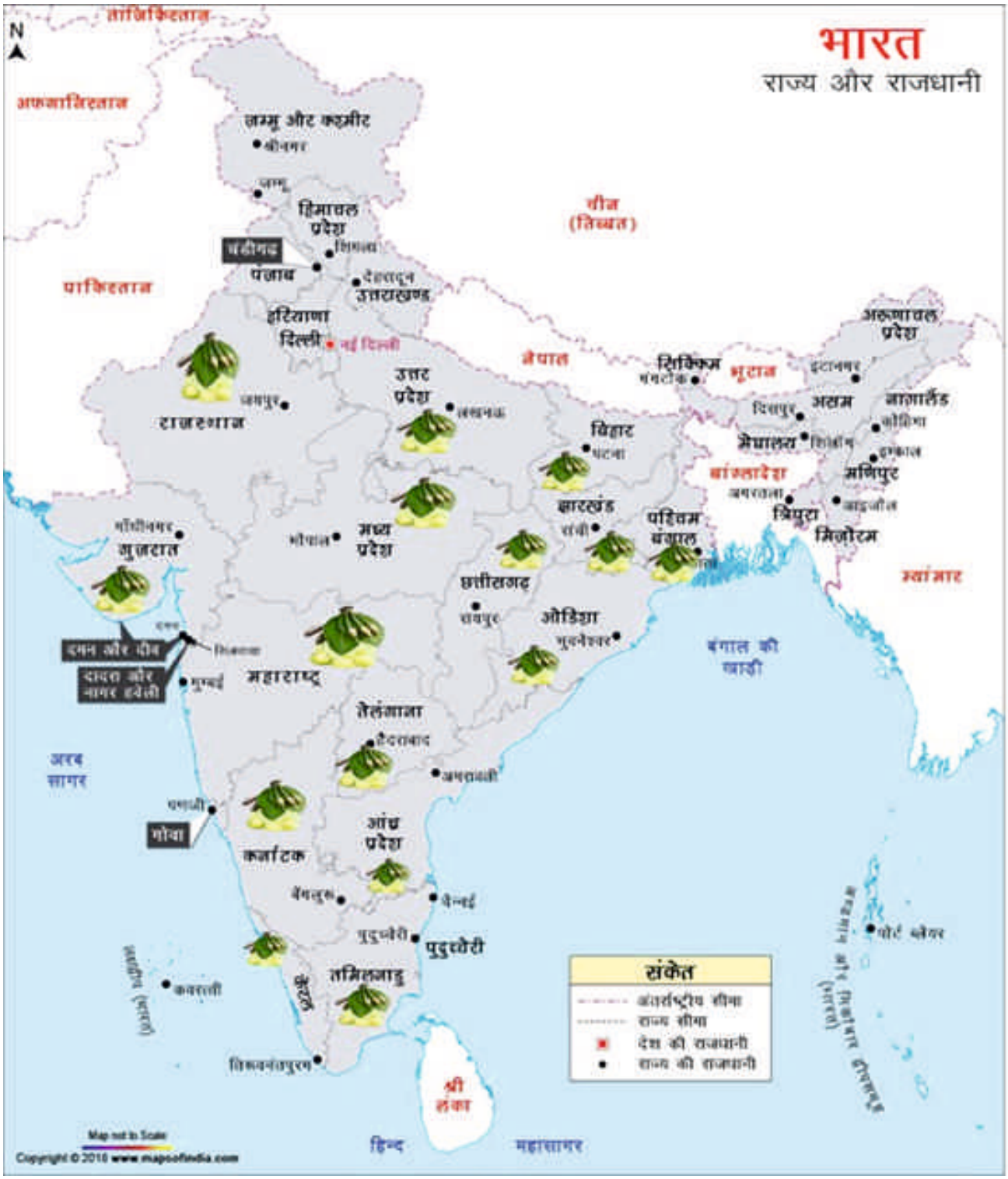

आकृति 1: भारत में महुआ वृक्ष का वितरण क्षेत्र

आकृति 2: महुआ के फूल से लड्डू बनाने की विधि

बागवानी फसलों की बहुस्तरीय खेती : एक स्थायी कृषि समाधान

पूनम कश्यप, एन. रविसंकर, प्रकाश चंद घासल, ए.के. प्रष्टि, पी.सी. जाट, मोहम्मद शमीम एवं प्रियांशू
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान मोदीपुरम, मेरठ–250110 (उ.प्र.)

फसल के उत्पादन के दौरान प्रचलित मौसम की स्थिति हमेशा फसल उत्पादन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कभी–कभी फसलें बाढ़ जैसे असामान्य मौसम का सामना करती हैं, जिससे निचले इलाकों या बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में फसल पूरी तरह बर्बाद हो जाती है। मौसम की अनियमितता आय के स्रोत को खराब कर देती है, जिससे किसान की गरीबी बढ़ जाती है। बहुस्तरीय खेती एकीकृत अंतरफसल का एक उन्नत तरीका है जो एक ही समय में जमीन के एक टुकड़े पर कई फसलें उगाने की अनुमति देता है। यह अंतरफसल का एक प्रकार है। इस तरह की खेती मुख्य रूप से नकदी फसलों पर आधारित होती है और इसमें सब्जियाँ, फल, फूल उगाना शामिल है। इस तकनीकी में अलग–अलग ऊँचाई, जड़ और अंकुर स्वरूप, प्रकाश संश्लेषण दर, पकने की समय अवधि वाली फसलों का चयन किया जाता है। बढ़ते शहरीकरण, बांधों, नदियों और राजमार्गों के निर्माण के साथ–साथ मिट्टी की लवणता और जलभराव के परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि के बिगड़ने के कारण, खेती योग्य भूमि मिलनी लगातार दुर्लभ होती जा रही है। हर व्यक्ति अधिक जनसंख्या की समस्या से अवगत है, जो दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि की मात्रा कम होती जा रही है। हम अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करके इकाई उत्पादन को बढ़ाने के लिए किसी भी स्थान का उपयोग कर सकते हैं जो क्षैतिज भूमि को धूप और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के साथ जोड़ते हैं। दुनिया भर में कई खाद्य सामग्री की कमी और आपूर्ति की संभावना अधिक गहन कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित करती रहती है, जैसे कि बहुपरत फसल। इस प्रकार, बहुस्तरीय खेती अच्छी तरह से उपयुक्त होगी क्योंकि यह सौर ऊर्जा, मिट्टी की नमी, मिट्टी और वायु क्षेत्र की विभिन्न गहराई से पोषक तत्वों का प्रभावी ढंग से उपयोग करती है। यह एक आत्मनिर्भर प्रणाली है। यह प्रणाली तीन प्राथमिक तत्वों से बनी हैः मुख्य फसल, पूरक फसल और अंतरफसल। ये तीन तत्व उत्पादन प्रणाली के भीतर तीन अलग–अलग स्तरों पर स्थित हैं। बहुस्तरीय खेती प्रणाली एक गतिशील और अंतःक्रियात्मक विधि है जिसका उद्देश्य मिट्टी, पानी, वायु, स्थान, सौरविकिरण और अन्य सभी इनपुट का संधारणीय उपयोग करके उत्पादन को बेहतर बनाना है। इस प्रणाली में विभिन्न प्रकार की फसलों का संयोजन होता है, जैसे वार्षिक और बारहमासी, जो छोटे और सीमांत भूमि में बागवानी फसलों के लिए संधारणीय उत्पादकता के लिए एक आधुनिक विकल्प प्रस्तुत करती है। यह खेती प्रणाली छोटे और सीमांत किसानों के बीच में सबसे लोकप्रिय और लागू है। बहुस्तरीय खेती प्रणाली बाजार में एक ही वस्तु की अधिकता के खिलाफ बीमा प्रदान करती है, बाजार की माँग के अनुसार फसल उगाने में मदद करती है। पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखती है, प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आय उत्पन्न करती है, कृषक परिवार को भोजन और पोषण सुरक्षा प्रदान करती है और नियमित रोजगार सुनिश्चित करती है। बहुस्तरीय फसल प्रणाली भारत की बढ़ती आबादी के लिए एक संभावित और कुशल विकल्प है। जो भोजन पोषण और आय सुरक्षा प्रदान कर सकती है। एक ही खेत में एक ही समय में अलग–अलग ऊँचाई के पौधें उगाने को मल्टीलेयर क्रॉपिंग कहा जाता है, जिसे मल्टी स्टोरी क्रॉपिंग और मल्टी टायर फार्मिंग भी कहते हैं। कृषि योग्य भूमि की सीमित मात्रा और किसानों की बड़ी संख्या के कारण, यह खेती पद्धति किसानों को एक साथ विभिन्न प्रकार के उत्पाद उगाने की सुविधा प्रदान करती है, जैसे कि फल, सब्जियाँ, फूल और औषधीय पौधे। इसके फलस्वरूप सीमांत और छोटे किसान अपनी सीमित कृषिभूमि के साथ भी समृद्ध जीवन बिता सकते हैं।

बहुस्तरीय खेती के उद्देश्य

- ✓ अधिकतम अर्ध्वाधर स्थान का प्रभावी ढंग से उपयोग करना।
- ✓ उत्पादन के लिए भूमि के प्रति इकाई क्षेत्र का इष्टतम उपयोग करना।
- ✓ एक भूमि के टुकड़े से अच्छी नियमित आय उत्पन्न करने के लिए वर्ष भर नियमित रूप से फसलों की कटाई करना।
- ✓ उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ जल संरक्षण करना।
- ✓ फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा को न्यूनतम करना।
- ✓ मृदा अपरदन को न्यूनतम करना तथा मृदा की बनावट और उर्वरता स्तर को बनाए रखना।

बहुस्तरीय खेती के सिद्धांत

यह खेती उच्च घनत्व वाले रोपण के सिद्धांत पर आधारित है और इसमें खाद, पानी, भूमि, श्रम, और स्थान का सर्वोत्तम और कुशल उपयोग किया जाता है। यह प्रणाली उत्पादन लागत और निवेश को कम करने के साथ–साथ, रसायनों के उपयोग को भी कम करने का प्रयास करती है और जैविक और टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देती है। इसके साथ ही, यह सिद्धांत उसे काम में लाता है कि हर परिवार की खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित हो। बहुस्तरीय खेती में एक ही जमीन पर चार से पाँच फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

बहुस्तरीय खेती में फसलों की प्रकृति

मिट्टी की सतह पर लगाई जाने वाली फसलें पत्तेदार होनी चाहिए जिनकी कटाई सीधे उखाड़कर की जाती है। इन पौधों की छंटाई को तब करना चाहिए जब वे अधिक स्थान न घेरें, और उन्हें बाद में काट लिया जाना चाहिए। आधार फसल लंबी–बढ़ती, दूर–दूर तक फैली हुई, बारहमासी होनी चाहिए। इन फसलों की जड़ प्रणाली अलग–अलग परतों से पोषक तत्व खींचने के लिए अलग–अलग गहराई की होनी चाहिए। बेल वाले पौधों को उनकी वृद्धि और विकास के लिए उचित रूप से सहारा दिया जाना चाहिए, क्योंकि ये पौधे छत की संरचना तक पहुँच सकते हैं। इसलिए, इन्हें प्रशिक्षण के साथ ठीक से प्रबंधित किया जाना चाहिए।

बहुस्तरीय खेती के आर्थिक लाभ

बहुस्तरीय खेती में एक ही भूमि पर विभिन्न स्तरों पर फसलें उगाई जाती हैं जिससे कुल उत्पादकता में वृद्धि होती है। यह वृद्धि उत्पादकता में बढ़ावा देती है और उचित मार्जिन प्राप्त करने में मदद करती है। बहुस्तरीय खेती से प्राप्त होने वाली अधिक उत्पादकता और संसाधन संरक्षण के कारण, किसान अधिक मार्जिन प्राप्त कर सकता है। इससे उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। बहुस्तरीय खेती से उत्पन्न होने वाले फल और सब्जियाँ बाजार में उच्च मूल्य पर बेची जा सकती हैं, क्योंकि ये उच्च गुणवत्ता और समय पर उपलब्ध होती हैं। इससे किसान को अधिक आर्थिक लाभ होता है। बहुस्तरीय खेती के उत्पादन प्रक्रिया में पारिवारिक सहयोग और निरंतर कामकाज बढ़ता है, जिससे किसानों की सामाजिक स्थिति में सुधार होती है।

बहुस्तरीय खेती का सौर विकिरण उपयोग पर प्रभाव

सौर विकिरण पौधों के लिए मुख्य ऊर्जा स्रोत है और इसका विभिन्न स्तरों पर फसलों पर प्रभाव विभिन्न तरीकों से हो सकता है। मृदा तापमान नियंत्रण ऊँचाई वाले पौधे मृदा को छाँव प्रदान करते हैं, जिससे मृदा का तापमान स्थिर रहता है और नमी बनाए रखने में मदद मिलती है। इससे सूखे या अत्यधिक गर्मी की स्थितियों में मृदा का तापमान नियंत्रित हो सकता है। ऊपरी स्तर के पौधे ऊँचे स्तर के सौर विकिरण को सोखते हैं, जबकि निचले स्तर के पौधे उस भाग को ग्रहण करते हैं जो ऊपरी पौधों द्वारा छाना गया होता है। इससे निचले स्तर के पौधों को प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश की आवश्यकता

होती है, जिससे वे धूप से जलने या अत्यधिक गर्मी के प्रभाव से बच सकते हैं। बहुस्तरीय खेती में इस प्रकार के सौर विकिरण के उपयोग से पूरे सिस्टम में प्रकाश का अधिकतम उपयोग होता है। यदि एक ही स्थान पर विविध फसलें उगाई जाती हैं, तो परिस्थितिकीय बदलाव या स्थानिक प्रभाव स्थानीय पारिस्थितिकी को प्रभावित कर सकते हैं, विशेषकर यदि पौधों की ऊँचाई और छाँव की आवश्यकता के अनुरूप न हो। बहुस्तरीय खेती में फसलें बहुत घनी हो जाती हैं, तो ऊपरी पौधे बहुत अधिक छाँव प्रदान कर सकते हैं, जिससे निचले स्तर के पौधों को पर्याप्त सौर विकिरण नहीं मिल पाता है। इससे निचले स्तर के पौधों की वृद्धि और विकास पर प्रभाव पड़ सकता है।

बहुस्तरीय खेती का जलवायु पर प्रभाव

बहुस्तरीय खेती में विभिन्न स्तरों पर पौधे उगाने से जलवायु के विभिन्न पहलुओं पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। यह पद्धति तापमान को संतुलित रखने में मदद कर सकती है, क्योंकि ऊँचे स्तर के पौधे निचले पौधों को छाँव प्रदान करते हैं और इस प्रकार मृदा और वायुमंडल के तापमान को नियंत्रित रखते हैं। विभिन्न स्तरों पर पौधे मृदा की सतह को ढकते हैं, जिससे वाष्पीकरण की दर कम होती है और इससे जल की बचत होती है। अधिक पौधों की उपस्थिति से वायुमंडल में अधिक ऑक्सीजन का उत्पादन होता है, जिससे वायु गुणवत्ता में सुधार होता है और पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहता है। पौधे वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं, जो ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता को कम करने में मदद करता है। बहुस्तरीय खेती मृदा को ढकने का काम करती है, जिससे मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने में मदद करती है। इस प्रकार, यह पद्धति पारिस्थितिकीय लाभ प्रदान करती है, जैसे कि विविध फसलों और पौधों के माध्यम से जीवों को आवास उपलब्ध कराना, स्थानीय जलवायु में परिवर्तन के अनुकूलन में सहायक होना, और वायुमंडल के गुणवत्ता में सुधार करना।

बहुस्तरीय खेती का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

बहुस्तरीय खेती के द्वारा मृदा स्वास्थ्य पर विभिन्न सकारात्मक और कुछ नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। इस पद्धति में फसलों को विभिन्न स्तरों पर उगाने से जैव विविधता में वृद्धि होती है, जिससे मृदा की उत्पादकता में सुधार होता है। विभिन्न फसलें मृदा के विभिन्न पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं, जिससे मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है और मृदा की स्वास्थ्य में सुधार होता है। बहुस्तरीय खेती के द्वारा विभिन्न स्तरों पर फसलें उगाने से मृदा की ऊपरी परत को स्थिरता मिलती है, जो मृदा अपरदन को कम करती है। इसके अलावा, फसलों की जड़ों से मृदा की संरचना में सुधार होता है, जिससे जल की धारण क्षमता बढ़ती है और वायु संचार में सुधार होता है। बहुस्तरीय खेती में मृदा की सतह पर नमी का संचयन बढ़ जाता है, जिससे सूखे की स्थितियों में भी मृदा की नमी बनी रहती है। परिस्थितिकी बदलावों के सामने मृदा की संरचना और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए नियमित बदलाव की आवश्यकता होती है, ताकि विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं में संतुलन बना रहे। यदि अत्यधिक उर्वरक और कीटनाशक का उपयोग न हो तो मृदा की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ सकता है, जिससे पर्यावरण में प्रदूषण की समस्या भी हो सकती है।

बहुस्तरीय खेती का खरपतवार प्रबंधन पर प्रभाव

बहुस्तरीय खेती में विभिन्न फसलों को एक ही स्थान पर अलग–अलग स्तरों पर उगाना एक समझदारी और प्राकृतिक तरीका है जिससे खरपतवारों के नियंत्रण और वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। ऊँचाई में विभिन्न पौधों के संयोजन से खरपतवारों को पर्याप्त जगह नहीं मिलती, जिससे उनकी वृद्धि कम होती है। ऊँचाई वाले पौधे निचले स्तर पर मौजूद पौधों को छाँव प्रदान करते हैं, जिससे मृदा की सतह पर सूरज की किरणें सीधे नहीं पहुंचतीं और खरपतवारों की वृद्धि को रोकने में मदद मिलती है। बहुस्तरीय खेती में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं, जिससे प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला और पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखे जाते हैं, जो खरपतवारों की वृद्धि को स्वाभाविक रूप से नियंत्रित कर सकते हैं। खरपतवार प्रबंधन की जटिलता विभिन्न स्तरों पर विभिन्न फसलों के संयोजन से बढ़ जाती है, क्योंकि

अलग–अलग फसलें विभिन्न प्रकार के खरपतवारों को आकर्षित कर सकती हैं। बहुस्तरीय खेती के तहत खरपतवार नियंत्रण के लिए विशेष उपकरण और अधिक श्रम की आवश्यकता हो सकती है, जिससे लागत बढ़ सकती है।

प्रबंधन उपाय: नियमित रूप से फसलों और मृदा की निगरानी करें ताकि खरपतवारों की पहचान और नियंत्रण समय पर किया जा सके। पिछले फसलों के अवशेषों का उपयोग करके मृदा की ढकावट बढ़ाएं, जिससे खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है। मृदा पर मल्चिंग करके खरपतवारों के अंकुरण को रोका जा सकता है। कवर क्रॉप्स का उपयोग खरपतवारों को नियंत्रित करने और मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने में मदद कर सकता है।

बहुस्तरीय खेती के लिए उपयुक्त फसलों के प्रकार

ऊँचाई वाली फसलें: टमाटर ऊँचाई पर उगने वाले पौधे, जो नीचे की फसलों को छाँव प्रदान करते हैं। बीन्स की बेलें ऊँचाई पर उगती हैं और अन्य फसलों को छाँव प्रदान कर सकती हैं। मटर की बेलें ऊँचाई पर उगती हैं और अन्य पौधों के लिए समर्थन भी प्रदान कर सकती हैं।

मध्यम ऊँचाई वाली फसलें: शिमला मिर्च मध्यम ऊँचाई पर उगने वाली सब्जी, जो बहुस्तरीय खेती के दूसरे स्तर पर अच्छी तरह से फिट होती है। पालक और मेथी उपयुक्त फसलें हैं क्योंकि इनकी ऊँचाई बहुत अधिक नहीं होती और ये नीचे की फसलों के लिए छाँव नहीं बनातीं।

नीचले स्तर की फसलें: स्ट्रॉबेरी का विकास भूमि पर होता है और ये बहुस्तरीय खेती में अन्य पौधों के बीच अच्छी तरह से उग सकती हैं। पालक, चुकंदर की हरी पत्तियाँ, और सलाद पत्तियाँ निम्न स्तर पर उगाई जाती हैं और ये जल्दी उगती हैं। गाजर और मूली ये जड़ों वाली फसलें भूमि के नीचे उगती हैं और इनका आकार ऊँचाई में अन्य फसलों से टकराता नहीं है।

चयन करते समय ध्यान देने योग्य बातें

फसलों की प्रकाश और पानी की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का चयन करें ताकि सभी फसलें कुशलता से उग सकें। पौधों की प्रजातियों की संगतता को ध्यान में रखें, ताकि वे एक–दूसरे की वृद्धि को प्रोत्साहित कर सकें और संघर्ष न करें। वृक्षों की ऊँचाई में भिन्नता की योजना बनाएं ताकि ऊँचाई वाले पौधे मध्यम और निचले स्तर की फसलों को छाँव या समर्थन प्रदान कर सकें। जमीन का प्रकार और गुणवत्ता का विचार करें और उपयुक्त भूमि का चयन करें, जिसमें अच्छी जल निकासी और पोषक तत्वों की उपलब्धता हो। फसल चक्र की योजना बनाएं ताकि भूमि की उर्वरता बनी रहे और फसलों का सही समय पर उपयोग हो सके।

फल – फसल आधारित बहु–स्तरीय फसल प्रणाली

मुख्य फसलें

मुख्य फसलें फल प्रजातियाँ हैं जिनका छत्र आकार बड़ा होता है और उनके लिए बहु–स्तरीय प्रणाली की सबसे ऊपरी परत का उपयोग करते हैं जिससे आर्थिक उत्पादकता प्राप्त होती है। 20–25 वर्षों के बाद फसलें पूरी भूमि का उपयोग करती हैं जबकि मुख्य फसल द्वारा 10 वर्षों तक केवल 25–30% प्रभावी रूप से उपयोग किया जाता है। मुख्य पौधों की दो पंक्तियों के बीच इन पौधों को इस उद्देश्य से लगाया जाता है कि बाग के प्रारंभिक 10 वर्षों के दौरान अप्रयुक्त भूमि और स्थान का उपयोग करके भूमि से अतिरिक्त आय अर्जित की जा सके।

अंतर फसलें

अंतर फसलें आमतौर पर बहु–स्तरीय प्रणाली की सबसे निचली परत पर होती हैं और बहु–स्तरीय प्रणाली की बची हुई अप्रयुक्त भूमि में उगाई जाती हैं। अंतर फसलें स्थान–विशिष्ट वार्षिक फसलें होती हैं, जिन्हें उन क्षेत्रों की जलवायु और सामाजिक–आर्थिक उपयुक्तता के अनुसार चुना जाता है जहाँ बाग लगाए जाते हैं।

बहुस्तरीय कृषि प्रणाली पर आधारित फल फसलों के उदाहरण

आम़ + अमरूद़ + लोबिया, पपीता + केला + अदरक, अरबी केला़ + फूलगोभी + चुकंदर, अमरूद + हल्दी + जिमीकंद, लीची + अमरूद. अदरक + हल्दी, आंवला + अमरूद + लोबिया + बैंगन, यह ज्यादातर बगीचों और रोपण फसलों में सौर ऊर्जा का दोहन करने के लिए किया जाता है, यहाँ तक कि उच्च घनत्व वाले रोपण के तहत भी। यह अलग–अलग ऊँचाई और जड़ पैटर्न वाली अलग–अलग फसलें उगाने की अनूठी प्रथा है, जिसमें अलग–अलग बढ़ने की अवधि होती है। इस फसल प्रणाली में, ऊर्ध्वाधर स्थानों का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है, जब सबसे ऊंचे घटकों में मजबूत प्रकाश को फंसाने के लिए बेहतर पत्ते होते हैं और उच्च वाष्पीकरण की माँग होती है। दूसरी ओर, पत्ते वाले छोटे घटक विकास और विकास के लिए छाया या अपेक्षाकृत उच्च आर्द्रता पसंद करते हैं।

उच्च उपज क्षमता वाली और प्रकृति में कम अवधि वाली सब्जियाँ सबसे उपयुक्त बहुस्तरीय अंतर–फसलें हैं। यह आय, रोजगार और उपभोग के लिए पर्याप्त भोजन, निवेश का बेहतर और टिकाऊ उपयोग, यानी मिट्टी, पानी, हवा, स्थान, सौर विकिरण आदि प्रदान करता है। यह मोनो–क्रॉपिंग की असुरक्षा को भी कम करता है। इस प्रणाली से उच्च उत्पादन, आर्थिक लाभ और संसाधन का सही तरीके से उपयोग होता है। यह प्रणाली ग्रामीण युवाओं की गतिशील ऊर्जा को उच्च आय सृजन करने और आजीविका सुरक्षा के लिए पारंपरिक खेती की ओर ले जाती है। चुकंदर, मूली, ग्वार, सेम, धनिया और साग जैसी लाभदायक सब्जी फसलों को अंतर–फसल के साथ–साथ कपास में बहुस्तरीय फसल प्रणाली के लिए चुनी जा सकता है। इस प्रणाली से खरपतवार की वृद्धि को कम करने के अलावा समय–समय पर खेत से नियमित रूप से सुनिश्चित आय प्राप्त होती है।

हल्दी आधारित बहु–स्तरीय फसल प्रणाली

उदाहरण भिंडी़ + मूली़ + ग्वार फली़ + चुकंदर, पालक़ + मूली. + प्याज, परवल + जिमीकंद + खीरा + फूलगोभी, भिंडी + मूली + चुकंदर + धनिया, आलू + स्वीट कॉर्न + भिंडी और लौकी + पत्तेदार सब्जियाँ (पालक, धनिया)

फल आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणाली

नारियल, सुपारी और आयलॅ पाम के पेड़ों का अध्ययन खरपतवारों के प्रसार और तीव्रता के लिए किया गया ताकि छत्र के माध्यम से प्रकाश की उपलब्धता और प्रणालियों में प्रतिस्पर्धी खरपतवारों को समझा जा सके। केरल जैसे उच्च वर्षा वाले तटीय क्षेत्रों में नारियल पेड़ों में सबसे लोकप्रिय है, उसके बाद सुपारी और मसाले हैं और गहन प्रबंधन पद्धतियाँ जिनमें पौध संरक्षण रसायनों का उपयोग, व्यवस्थित निराई और आयलॅ पाम के पेड़ों के बीच अंतर–फसल के लिए अंतराल का प्रबंधन आदि शामिल हैं, जो आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फसलों तक ही सीमित हैं।इस प्रकार की फसल ज्यादातर नारियल और सुपारी जैसी बागान फसलों में प्रचलित है। 8 वर्ष की आयु तक के नारियल में अंतरफसल की गुंजाइश है। इस अवधि के दौरान, जमीन में पर्याप्त प्रकाश संचरण होता है जो अंतर फसलों की खेती को अनुमति देता है। अलग–अलग ऊँचाई, जड़ पैटर्न और अवधि की विभिन्न फसलों को उगाने की प्रथा को बहु–स्तरीय फसल कहा जाता है। फसल की इस प्रणाली का उद्देश्य ऊर्ध्वाधर स्थान का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करना है। इस प्रणाली में, अंतर–फसल घटकों और पेड़ों की पत्ती विभिन्न ऊर्ध्वाधर परतों पर कब्जा करती हैं। पारंपरिक रूप से बहु–स्तरीय फसल प्रणाली मे आर्द्र से उप आर्द्र स्थितियों के लिए नारियल. काली मिर्च. नारियल. अनानास है। कॉफी आधारित बहु–स्तरीय फसल प्रणाली में, पहला स्तर अनानास के साथ होता है, दूसरा स्तर कॉफी के साथ, तीसरा स्तर कोको ध मैंडरिन ऑरेंज के साथ और अंतिम स्तर पर तेजी से बढ़ने वाले छायादार पेड़ यानी सिल्वर–ओक होते हैं।

वैश्विक उत्पादन और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में घटती कीमत के वर्तमान परिदृश्य में, पश्चिमी घाट की ऊँची श्रेणियों में काली मिर्च, संतरा, केला जैसी फसलों के साथ कॉफी का विविधीकरण बड़े पैमाने पर किया जाता है। इन सहयोगी फसलों की खेती से कॉफी उत्पादकों के नकदी प्रवाह में सुधार होना निश्चित है, जिससे कॉफी की एकल खेती पर पूरी तरह से निर्भरता खत्म हो जाएगी। अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों में एवं सूखे की स्थिति में जब कॉफी की पैदावार आर्थिक रूप से कम लाभदायक होती है, तो सहायक फसलें किसानों की मदद के लिए उपयुक्त होती हैं, जिसे 1983 की फसल के मौसम से स्पष्ट रूप से दर्शाया जा सकता है। कॉफी बागानों में टिकाऊ फसल प्रणाली में मिट्टी की नमी और सौर विकिरण जैसे प्राकृतिक संसाधनों का सफल प्रबंधन शामिल होना चाहिए ताकि छोटे और सीमांत किसानों (2.0 हेक्टेयर से कम) की बढ़ती संख्या की बदलती जरूरतों को पूरा किया जा सके, जो कि बहुसंख्यक हैं। दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट के कॉफी उगाने वाले क्षेत्रों में पर्यावरण की बुनियादी गुणवत्ता को बनाए रखना या बढ़ाना और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना भी बहुत जरूरी है। कॉफी की गहन खेती करके तथा उच्च आय को बनाए रखने के लिए उपयुक्त

नारियल एवं हल्दी की खेती

मिश्रित फसलों के साथ विविधीकरण का सहारा लेकर कॉफी बागानों की उत्पादकता बढ़ाई जानी चाहिए। उदाहरण नारियल + कॉफी + काली मिर्च, नारियल + केला + कॉफी, नारियल + कटहल + कॉफी + पपीता + अनानास, नारियल + केला + अदरक, नारियल + केला + अनानास, नारियल + कोको + नींबू + केला + सहजन और चाय + सुपारी (अंतर फसल) काली मिर्च (अंतर फसल)।

बहुस्तरीय खेती के लाभ

कई फसलों को एक साथ उगाने से उपज में वृद्धि होती है क्योंकि उनकी जड़ें एक–दूसरे को उर्वर बनाती हैं और अधिक पौधे मिलकर अधिक भोजन का उत्पादन करते हैं। विभिन्न फसलों को पास–पास लगाने और नियमित पानी देने से उनका विकास तेजी से होता है। यह जैव विविधता को भी बढ़ावा देता है, क्योंकि एक ही स्थान पर विभिन्न प्रकार के पौधे उगाए जाते हैं। इससे पक्षियों, मधुमक्खियों और अन्य कीटों के लिए आदर्श आवास उपलब्ध होता है, जो स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र के लिए आवश्यक परागण और अन्य प्रक्रियाओं में सहायक होते हैं। मल्टीलेयर खेती से किसानों को पूरे साल नकदी प्रवाह बनाए रखने में मदद मिलती है। विभिन्न फसलें उगाकर वे साल भर वित्तीय स्थिरता प्राप्त कर सकते हैं और इससे बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार भी मिलता है। यह विधि भारी बारिश, भूस्खलन और मृदा अपरदन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक है। मानक खेती की प्रक्रियाओं को अपनाने से बेहतर और सुसंगत फसल गुणवत्ता प्राप्त होती है। प्रभावी खरपतवार नियंत्रण से उत्पादन में भी वृद्धि होती है। यह खेती सीमित स्थान का कुशलतापूर्वक उपयोग करने में उत्कृष्ट है। यह विशेष रूप से उन लोगों के लिए लाभदायक है जिनके पास सीमित स्थान, जैसे बालकनी या छोटे बगीचे, होते हैं, क्योंकि वे एक ही क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की फसलें उगा सकते हैं। विभिन्न फसलों को एक साथ उगाने से किसान पूरे वर्ष विविधतापूर्ण और निरंतर फसल की उम्मीद कर सकते हैं। इस प्रकार, विविधतापूर्ण फसलों का चयन करके और उनसे प्राप्त उपज से घरों और स्थानीय बाजारों दोनों को लाभ पहुँचता है। विविध फसलों की व्यापक जड़ प्रणालियां मिट्टी को स्थिर करती हैं और कटाव व भूस्खलन के जोखिम को कम करती हैं, जिससे टिकाऊ भूमि प्रबंधन में योगदान मिलता है।

आज के समय में बहुस्तरीय खेती की आवश्यकता

जनसंख्या वृद्धि और शहरीकरण के कारण कृषि भूमि की उपलब्धता में कमी आ रही है। बहुस्तरीय खेती इस समस्या का समाधान प्रदान करती है, क्योंकि यह सीमित भूमि पर अधिक उत्पादन करने की क्षमता रखती है। एक ही भूमि पर विभिन्न ऊँचाइयों पर विभिन्न फसलों को उगाकर कुल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। बहुस्तरीय खेती में विभिन्न प्रकार की फसलों के होने से फसलों को मौसम की विपरीत परिस्थितियों से बचाया जा सकता है। इस प्रकार की खेती में फसलों की विविधता होने से मिट्टी, पानी, और पोषक तत्वों का अधिकतम और प्रभावी उपयोग होता है। विभिन्न फसलों की एक साथ खेती करने से कीट और रोगों का प्रकोप कम होता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम किया जा सकता है। बहुस्तरीय खेती से किसान को विभिन्न फसलों से एक साथ आय प्राप्त हो सकती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

देश को एकता के सूत्र में पिरोनें वाली भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

–लाल बहादुर शास्त्री

राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी का प्रचार आवश्यक है।

–लाला लाजपत राय

जलवायु परिवर्तन और स्थिरता के अनुरूप कृषिवानिकी को अपनाना

जितेंद्र सिंह, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा एवं सुरेश रमणन एस.
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और समाधानों को कृषि पाठ्यक्रमों में शामिल करना वर्तमान समय में एक आवश्यकता है। विश्वविद्यालय और कॉलेज अपने कार्यक्रमों में जलवायु विज्ञान को एकीकृत कर रहे हैं ताकि छात्रों को यह समझने में मदद मिल सके कि बदलते मौसम के पैटर्न, तापमान में उतार–चढ़ाव और मौसम की चरम घटनाएं कृषि को कैसे प्रभावित करती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ के रूप में, कृषि देश के 50 प्रतिशत से अधिक कार्यबल का समर्थन करती है। हालाँकि, इस क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन के कारण महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो फसल की पैदावार, पानी की उपलब्धता और समग्र कृषि उत्पादकता को प्रभावित करता है। इस प्रतिक्रिया में, शैक्षणिक संस्थान जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और स्थिरता को शामिल करने के लिए कृषि पाठ्यक्रमों को अद्यतन कर रहे हैं। इस बदलाव का उद्देश्य भविष्य के किसानों और कृषिविदों को इन प्रभावों को कम करने और टिकाऊ कृषिवानिकी पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देना है। कृषिवानिकी, फसलों और पशुधन के साथ पेड़ों का एकीकरण, एक संभावित जलवायु परिवर्तन अनुकूलन रणनीति है जो जैव–भौतिक और सामाजिक–आर्थिक लाभ प्रदान करती है। जलवायु परिवर्तन शमन, बढ़ी हुई खाद्य सुरक्षा, आय के अवसर, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं और जैव विविधता संरक्षण के साथ संभावित तालमेल के कारण यह एक आशाजनक दृष्टिकोण है।

जलवायु परिवर्तन एक वास्तविकता है जिससे दुनिया भर के किसान रोज जूझ रहे हैं। बढ़ते तापमान, अनियमित मौसम पैटर्न, कीटों और बीमारियों का बढ़ता दबाव और वर्षा के बदलते पैटर्न ने कृषि को पहले से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया है। जलवायु परिवर्तन के कारण पैदा हुई अनिश्चितता के सामने किसान उल्लेखनीय लचीलेपन और अनुकूलन क्षमता का प्रदर्शन कर रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन और स्थिरता को कृषिवानिकी पाठ्यक्रम के अनुकूल बनाने योग्य महत्वपूर्ण बिंदु

कृषि पद्धति में कृषिवानिकी मॉडल को अपनाना

कृषिवानिकी मॉडल जलवायु परिवर्तनशीलता के खिलाफ लचीलापन प्रदान करते हैं और विविध प्रजातियों के लिए आवास प्रदान करते हैं। कृषिवानिकी मृदा कटाव को रोककर और उर्वरता बनाए रखकर दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्वास्थ्य का भी समर्थन करती है। यह कृषि उत्पादन में विविधता लाता है, आर्थिक जोखिमों को कम करता है और खाद्य सुरक्षा को बढ़ाता है। स्थानीय और पारंपरिक ज्ञान पर जोर देने से सामुदायिक लचीलेपन और सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलता है, जिससे कृषिवानिकी अधिक टिकाऊ और जलवायु–लचीले कृषि भविष्य की दिशा में एक व्यवहार्य मार्ग बन जाती है।

फसलों और पशुधन का विविधीकरण

विविधीकरण सबसे प्रभावी रणनीतियों में से एक है जिसका उपयोग किसान जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के लिए करते हैं। किसान विभिन्न फसलें लगाकर और विभिन्न प्रकार के पशुधन पालकर मौसम के बदलते मिजाज से जुड़े जोखिम को फैला सकते हैं। विविधीकरण फसल की विफलता के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है, मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है और बीमारियों और कीटों को फैलने से रोकता है। किसान बदलती परिस्थितियों के अनुकूल नई फसल किस्मों का प्रयोग कर रहे हैं और विशेष फसलों और पशुधन नस्लों के लिए विशिष्ट बाजारों की खोज कर रहे हैं।

परिशुद्ध कृषि और प्रौद्योगिकी

तकनीकी प्रगति ने किसानों को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल ढलने में मदद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जीपीएस–निर्देशित ट्रैक्टर और ड्रोन जैसी सटीक कृषि तकनीकें, किसानों द्वारा पानी और उर्वरक जैसे संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करती हैं। मौसम के पूर्वानुमान और मिट्टी के विश्लेषण से डेटा–संचालित अंतर्दृष्टि के साथ, किसान कब रोपण करें, सिंचाई करें और कटाई करें, अपशिष्ट को कम करने और दक्षता बढ़ाने के बारे में सूचित निर्णय ले सकते हैं।

मौजूदा कृषि भूमि का समुचित उपयोग

बढ़ती वैश्विक जनसंख्या और भूमि संसाधनों पर बढ़ते दबाव के साथ, वर्तमान कृषि भूमि पर उत्पादकता बढ़ाने के तरीके खोजना महत्वपूर्ण है। किसान पहले से ही लगभग 50 प्रतिशत वनस्पति भूमि का उपयोग कृषि के लिए करते हैं, इसलिए विस्तार के लिए बहुत कम जगह है और उन्हें भूमि से अधिकतम लाभ उठाने की आवश्यकता है। कई किसान उच्च उपज वाली फसल किस्मों को अपना रहे हैं और फसल चक्र और अंतरफसल तकनीक लागू कर रहे हैं। किसान भूमि उपयोग को अनुकूलित करके और वनों की कटाई या भूमि विस्तार की आवश्यकता को कम करके उच्च पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण उन्हें बढ़ती खाद्य माँग को पूरा करने और प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने में मदद करता है।

सतत कृषि पद्धतियाँ

कई किसानों के लिए स्थिरता एक केंद्रीय बिन्दु बन गया है। संरक्षण जुताई, फसल चक्र और कवर क्रॉपिंग जैसी प्रथाओं को लागू करने से कार्बन को अलग करने, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार और पानी के उपयोग को कम करने में मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त, टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ जैव विविधता संरक्षण में योगदान करती हैं, जो जलवायु परिवर्तन की स्थिति में पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

जल प्रबंधन और सिंचाई दक्षता

जैसे–जैसे जल संसाधन दुर्लभ और अधिक अप्रत्याशित होते जा रहे हैं, किसान उपलब्ध पानी का अधिकतम लाभ उठाने के लिए नवीन सिंचाई तकनीकों को अपना रहे हैं। ड्रिप सिंचाई, वर्षा जल संचयन और मिट्टी की नमी सेंसर

प्रौद्योगिकियों के कुछ उदाहरण हैं जो किसानों को जल संसाधनों को अधिक कुशलता से प्रबंधित करने में मदद करते हैं। जल पुनर्चक्रण और भंडारण प्रणालियाँ किसानों को सूखे के दौरान उपयोग के लिए गीली अवधि के दौरान अतिरिक्त पानी संग्रहीत करने में भी सक्षम बनाती हैं।

जलवायु–लचीली फसल की किस्में

फसल प्रजनन कार्यक्रम जलवायु–लचीली किस्मों का विकास कर रहे हैं जो अत्यधिक तापमान, सूखे और अन्य जलवायु–संबंधी तनावों का सामना कर सकते हैं। ये नई किस्में बेहतर पैदावार सुनिश्चित करती हैं और कीटनाशकों और कृतिम उर्वरकों की आवश्यकता को कम करती हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए किसान इन लचीली फसलों को बढ़ती दरों पर अपना रहे हैं।

सरकारी नीतियाँ और समर्थन

भारत सरकार जलवायु परिवर्तन और स्थिरता के अनुरूप कृषिवानिकी को अनुकूलित करने के लिए सक्रिय रूप से विभिन्न नीतियों पर काम कर रही है। ये नीतियाँ जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने और खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए शैक्षिक ढांचे में टिकाऊ कृषि प्रथाओं को एकीकृत करने के महत्व की समझ को दर्शाती हैं। इस क्षेत्र से संबंधित कुछ प्रमुख नीतियाँ और पहल यहाँ दी गई हैं:

- राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति (2014)
- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई)
- राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (एनएमएसए)
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) की पहल
- जलवायु परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय अनुकूलन कोष (एनएएफसीसी)
- मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन (एसएचएम) योजना
- राष्ट्रीय जैव विविधता कार्य योजना (एनबीएपी)
- दीनदयाल अंत्योदय योजना – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)
- राज्य स्तरीय कृषिवानिकी नीतियाँ
- शैक्षिक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम

इन नीतियों और पहलों को भारत की कृषि पद्धतियों में कृषिवानिकी के एकीकरण का समर्थन करने, जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ाने और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किया गया है। वे पाठ्यक्रम विकसित करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं जिसमें कृषिवानिकी सिद्धांतों को शामिल किया जाता है, इस प्रकार भविष्य के किसानों और हितधारकों को जलवायु चुनौतियों का सामना करने के लिए कृषि परिदृश्य को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए तैयार किया जाता है।

ज्ञान साझाकरण और अनुकूलन नेटवर्क

किसानों को अकेले जलवायु परिवर्तन का सामना नहीं करना पड़ रहा है। कई लोग बदलती परिस्थितियों के अनुकूल ज्ञान, अनुभव और सर्वोत्तम प्रथाओं को साझा करने के लिए स्थानीय और वैश्विक नेटवर्क से जुड़ते हैं। ये नेटवर्क किसानों को एक–दूसरे से सीखने और जलवायु जानकारी, वित्तीय सहायता और तकनीकी विशेषज्ञता सहित मूल्यवान संसाधनों तक पहुँच प्राप्त करने में मदद करते हैं।

मौसम का पूर्वानुमान और पूर्व चेतावनी संकेत

किसानों को समय पर निर्णय लेने में मदद करने के लिए सटीक मौसम पूर्वानुमान तक पहुँच महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन की अप्रत्याशितता के कारण स्थानीय और विश्वसनीय मौसम संबंधी जानकारी की माँग बढ़ गई है। कई किसान अब अपने विशिष्ट स्थानों के अनुरूप वास्तविक समय डेटा और दीर्घकालिक पूर्वानुमान प्रदान करने वाले मौसम ऐप्स और सेवाओं पर भरोसा करते हैं। इसके अतिरिक्त, तूफान और बाढ़ जैसी मौसम की चरम घटनाओं के लिए पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ जोखिम कम करने के लिए अमूल्य उपकरण बन गई हैं।

शिक्षण और प्रशिक्षण

जलवायु परिवर्तन से आगे रहने के लिए निरंतर सीखना और प्रशिक्षण आवश्यक है। कई कृषि विश्वविद्यालय और संगठन जलवायु–स्मार्ट कृषि पर कार्यशालाएं और पाठ्यक्रम पेश करते हैं, जिससे किसानों को नवीनतम प्रथाओं और प्रौद्योगिकियों के साथ अद्यतन रहने में मदद मिलती है। यह ज्ञान आदान–प्रदान नवाचार को बढ़ावा देता है और किसानों को सूचित निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाता है।

बदलते परिवेश के अनुरूप ढलना

जलवायु परिवर्तन की अप्रत्याशितता दुनिया भर के किसानों के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पेश करती है, लेकिन वे नवाचार और अनुकूलनशीलता के साथ प्रतिक्रिया दे रहे हैं। विविधीकरण और तकनीकी प्रगति जैसी रणनीतियों और प्रथाओं के माध्यम से, किसान जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच फलने–फूलने लगे हैं। अनुकूलन और नवप्रवर्तन की उनकी क्षमता उनकी अपनी आजीविका और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है। जैसे–जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव सामने आ रहे हैं, कृषि समुदाय की अनुकूलन क्षमता हम सभी के लिए एक स्थायी भविष्य सुरक्षित करने में सहायक होगी।

राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है।

–लाला लाजपत राय

राष्ट्र को राष्ट्रध्वज की तरह राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, और यह स्थान हिन्दी को प्राप्त है।

–अनन्त गोपाल शेवड़े

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है।

–महात्मा गाँधी

जलवायु परिवर्तन के कारण उत्तराखंड में प्रभावित सेब के बागान

कमल, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हांडा एवं सुरेश रमणन एस.
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

उत्तराखंड के सेब के बगीचों का सिकुड़ना एक गंभीर मुद्दा है जिस पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने, फसलों में विविधता लाने, सहायक सरकारी नीतियों को लागू करने और स्थानीय समुदायों को शामिल करके, सेब उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करना संभव है। इस एक सामूहिक प्रयास के माध्यम से, उत्तराखंड अपने सेब के बागानों की रक्षा कर सकता है और भारत की फलों की टोकरी के रूप में विकसित हो सकता है, और किसानों की आजीविका सुनिश्चित कर सकता है और देश की कृषि समृद्धि में योगदान दे सकता है। भारत में फलों की टोकरी कहें जाने वाले उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले सात वर्षों में प्रमुख फल–फसलों की पैदावार में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। राज्य के औसत तापमान में सालाना 0.02 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई। वर्तमान में तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच गया। खासकर उष्णकटिबंधीय फलों की तुलना में समशीतोष्ण फलों की उपज और खेती के क्षेत्र में 2020 के बाद से गिरावट देखी गई है। गर्म होती जलवायु के कारण कुछ फल किस्मों की उत्पादकता कम हो रही हैं, राज्य में बदलते तापमान पैटर्न आंशिक रूप से बागवानी उत्पादन को कम कर रहें हैं। किसान उष्णकटिबंधीय विकल्पों की ओर बढ़ रहे हैं। बागवानी विभाग ने 2016–2017 से 2022–2023 तक उत्तराखंड में सभी प्रकार की फल फसलों की खेती के कुल क्षेत्रफल और उपज में 54 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की है। 2016–2017 में फलों की कुल उपज 662,847.11 मीट्रिक टन थी, जो 2022–2023 में घटकर 369, 447.3 मीट्रिक टन हो गई, जो लगभग 44 प्रतिशत की गिरावट है। नाशपाती, खुबानी, आलू बुखारा और अखरोट जैसे कम तापमान चाहने वाले फलों के उत्पादन में सबसे अधिक गिरावट देखी गई है, जबकि सेब और नींबू पर मामूली असर पड़ा है। सेब उत्पादन का क्षेत्र 2016–17 में 25,201.58 हेक्टेयर से घटकर 2022–23 में 11,327.33 हेक्टेयर हो गया, जिससे उपज में 30 प्रतिशत की गिरावट आई है। आम और लीची का उत्पादन क्रमशः 20 प्रतिशत और 24 प्रतिशत की मामूली गिरावट के साथ अपेक्षाकृत स्थिर रहा। अमरूद के उत्पादन क्षेत्र में 36 से 64 प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जो 2016–17 में 3,432.67 हेक्टेयर से बढ़कर 2022–23 में 4,690.32 हेक्टेयर हो गया है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को समझना

जलवायु परिवर्तन के कारण कई पर्यावरणीय परिवर्तन हुए हैं जो सेब के बगीचों के लिए हानिकारक हैं। बढ़ते तापमान, परिवर्तित वर्षा स्वरूप और अप्रत्याशित मौसम की घटनाओं के कारण सेब की पैदावार कम हो गई है। सेब की सुप्तावस्था तोड़ने और फूल खिलने के लिए ठंडे तापमान की एक विशेष समय तक आवश्यकता होती है, जिसे चिलिंग आवर्स के रूप में जाना जाता है, लेकिन अत्यधिक ओलावृष्टि से सेब की फसल को नुकसान होता है। गर्म सर्दियों के कारण ठंड की अवधि अपर्याप्त हुई है, जिससे सेब उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा प्रभावित हुई है। इसके अतिरिक्त, अनियमित बारिश के पैटर्न के कारण पानी की कमी हो गई है जिससे बीमारियों और कीटों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ गई है, जिससे सेब किसानों के सामने चुनौतियाँ और बढ़ गई हैं।

सतत कृषि पद्धतियाँ

जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना आवश्यक है। किसान एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी प्रथाओं को लागू कर सकते हैं, जो रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम करता है और जैवविविधता को बढ़ावा देता है। कृषिवानिकी, जिसमें पेड़ों को फसलों के साथ एकीकृत करना शामिल है, पारिस्थितिकी तंत्र को स्थिर करने, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने और अत्यधिक मौसम की घटनाओं के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने में मदद कर सकता है। इसके अलावा, जैविक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी की उर्वरता बढ़ सकती है और जल संचयन को सुधारने वाली फसलों की बदलती जलवायु परिस्थितियों के प्रति अधिक सहनशील बनाया जा सके।

विविधीकरण और फसल बीमा

जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों को कम करने के लिए फसलों में विविधता लाना एक रणनीतिक दृष्टिकोण हो सकता है। किसानों को कीवी, आड़ू और प्लम जैसे अन्य फलों और फसलों की खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो गर्म जलवायु के लिए अधिक लचीले हों। फसल बीमा योजनाएं प्रतिकूल मौसम की स्थिति के कारण होने वाले नुकसान के खिलाफ किसानों को वित्तीय सुरक्षा भी प्रदान कर सकती हैं। बीमा कवरेज की पेशकश करके,

सरकार किसानों की आय को स्थिर करने और उन्हें नई कृषि तकनीकों और प्रौद्योगिकियों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करने में मदद कर सकती है।

सरकारी नीतियाँ और समर्थन

उत्तराखंड के सेब किसानों को समर्थन देने के लिए सरकारी हस्तक्षेप महत्वपूर्ण है। जलवायु–लचीला सेब किस्मों के अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ फायदेमंद हो सकती हैं। सेब उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन करने और अनुकूल रणनीतियाँ विकसित करने के लिए समर्पित अनुसंधान केंद्रों की स्थापना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, ड्रिप सिंचाई जैसी आधुनिक सिंचाई प्रणालियों के लिए सब्सिडी प्रदान करने से किसानों को जल संसाधनों का अधिक कुशलता से प्रबंधन करने में मदद मिल सकती है।

सामुदायिक जुड़ाव और जागरूकता

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और टिकाऊ प्रथाओं को अपनाने के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना सामुदायिक भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण है। कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण कार्यक्रम और किसान सहकारी समितियाँ किसानों को नवीन कृषि तकनीकों और विविधीकरण के लाभों के बारे में शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। स्थानीय समुदायों, सरकारी एजेंसियों और गैर–सरकारी संगठनों के बीच सहयोग ज्ञान साझा करने और संसाधन जुटाने की सुविधा प्रदान कर सकता है, जिससे किसानों को जलवायु चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने में सशक्त बनाया जा सकता है।

हिन्दी खेतों–खलिहानों में पली है, सारे देश के तीर्थ स्थान में खेली है, राज सिंहासन की अपेक्षा जनता के सिंहासन पर बैठी है। प्रेम, राष्ट्र–सेवा व कुर्बानी के उसने गीत गाए है। हिन्दी को हिन्दुस्तान की प्रतिध्वनि बनाना पड़ेगा।

–महादेवी वर्मा

चूँकि भारतीय एक होकर एक समन्वित संस्कृति का विकास करना चाहते हैं इसलिए सभी भारतीयों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे हिन्दी को अपनी भाषा समझ कर अपनायें।

–डॉ. भीमराव अम्बेडकर

हिन्दी भारतवर्ष के हृदय–देश में स्थित करोड़ों नर–नारियों के हृदय और मस्तिष्क की खुराक देने वाली भाषा है।

–हजारी प्रसाद द्विवेदी

मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ परन्तु मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो यह मैं नहीं सह सकता।

– आचार्य विनोबा भावे

भारत में हरित आवरण (ग्रीनकवर) की गतिशीलता

अंकित वर्दिया, सुरेश रमणन एस., ए. अरूणाचलम, ए.के. हाण्डा एवं रिंकू सिंह
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

ग्रीनकवर क्या है?

वह प्राकृतिक या रोपित वनस्पति जो किसी भू–भाग के एक निश्चित क्षेत्र को अपने हरित आवरण प्रदान करती है, उसे हम ग्रीनकवर परिभाषित करते है यह वनस्पतियाँ स्वयं को बीजों, छोटे पौधों या फिर घास के पौधों के रूप में अंकुरित होती हैं, जो सूर्य की रोशनी और वातावरणीय तत्वों का उपयोग कर के बिना किसी जैविक उपचार के वृद्धि कर सकती हैं। हरित आवरण के विभिन्न प्रकार इस प्रकार हैं–वन क्षेत्र, निजी और सामुदायिक उद्यान, पार्क, जैव विविधता गलियारे, प्रकृति आरक्षित क्षेत्र, पगडंडियां, खेल मैदान, सड़क के किनारे लगे पेड़ और छत पर लगे उद्यान। इस प्रकार, ग्रीनकवर न केवल पृथ्वी की प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करती है, बल्कि जैविक विविधता को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्रीनकवर के महत्व

ग्रीनकवर महत्वपूर्ण पर्यावरणीय लाभ प्रदान करती है। यह मृदा क्षरण से सुरक्षा करती है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता और उपजाऊपन बनी रहती है। इसके अलावा, यह वनस्पति जीव–जंतुओं के लिए आवास और भोजन प्रदान करती जिससे जैव विविधता को समर्थन मिलता है। वनस्पति का एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह तापमान को संतुलित रखने में मदद करती है जिससे स्थानीय जलवायु स्थिर रहती है। इसके अतिरिक्त, वनस्पति कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके और ऑक्सीजन का उत्पादन करके वायु की गुणवत्ता में सुधार करती है। कुल मिलाकर, वनस्पति क्षेत्र पर्यावरण को संतुलित और स्वस्थ बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बदलती जलवायु के संदर्भ में हरित आवरण की उपयोगिता

जलवायु परिवर्तन एक ऐसा विषय है जो आज की दुनिया में सर्वत्र चर्चा का केंद्र बना हुआ है। यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में, जलवायु परिवर्तन मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। इसके प्रभाव न केवल पर्यावरण पर, बल्कि मानव जीवन, स्वास्थ्य, और आर्थिक स्थिरता पर भी पड़ रहे हैं। जैसे कि हाल ही में देखा गया है के गर्मियों में हीटवेव के कारण जान गयी है और प्रकृति को बहुत ही ज्यादा हानि हुई है, कार्बन पृथक्करण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो सिर्फ और सिर्फ पेड़ पौधो से ही कम हो सकती पौधों द्वारा पर्यावरण में कार्बन पृथक्करण की प्रक्रिया में पौधे प्रमुख भूमिका निभाते है। संयुक्त राष्ट्र के 17 सतत् विकास लक्ष्य में से SDG: 3–अच्छा स्वास्थ्य के साथ खुशहाली, SDG: 11–टिकाऊ शहर और समुदाय, SDG: 13–जलवायु कार्रवाई, और SDG: 15–भूमि पर जीवन, जैसे लक्ष्य तो सिर्फ और सिर्फ हरित आवरण पर निर्भर है जिससे मानव सभ्यता का उद्धार हो सके, जैसे कि भारत के कई राज्यों में होने वाली अत्याधिक एवं न्यूनतम वर्षा और तापमान, भूस्खलन, सूखा एवं बाढ़ जैसे समस्या से सिर्फ सतत् वातावरण ही बचा सकता है जो कि हरित आवरण से लाभकारी होगा।

भारतीय राज्यवार टीओएफ प्रतिशत

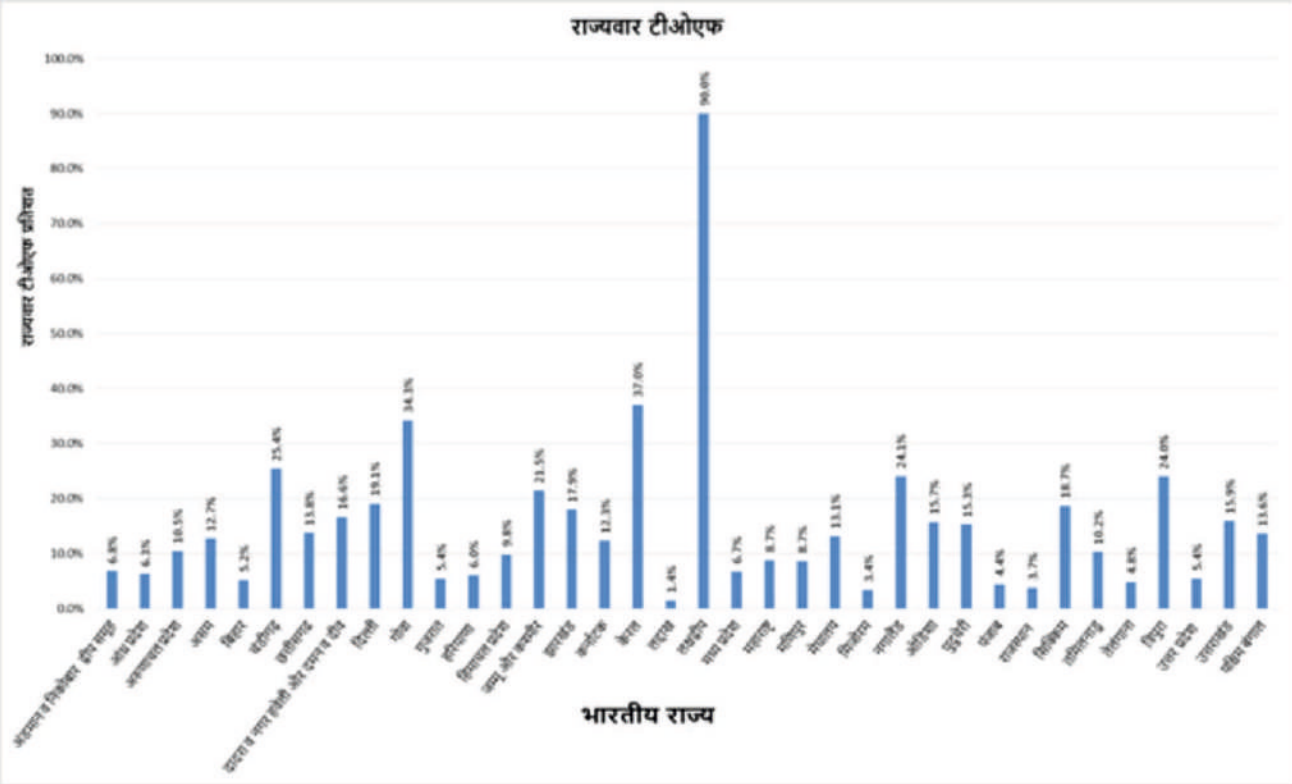

वन एवं हरित आवरण की भारत में वर्तमान स्थिति

वर्ष 2021 के भारत वन स्थिति रिपोर्ट (ISFR) के अनुसार, पिछले दो वर्षों में भारत में वन और वृक्षों के आवरण में 1,540 वर्ग किलोमीटर की वृद्धि हुई है। देश का कुल वन क्षेत्र अब 7,13,789 वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के भौगोलिक क्षेत्र का 21.71% है और यह प्रतिशत 2019 के 21.67% से अधिक है। वृक्षों के आवरण में भी 721 वर्ग किलोमीटर की वृद्धि हुई है। वनावरण में सबसे अधिक वृद्धि दर्शाने वाले राज्यों में तेलंगाना (3.07%), आंध्रप्रदेश (2.22%) और ओडिशा (1.04%) हैं। भारतीय राज्यों में क्षेत्रफल के आधार पर, मध्य प्रदेश में देश का सबसे बड़ा वन क्षेत्र है, इसके बाद अरुणाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा और महाराष्ट्र हैं। वन आवरण के प्रतिशत में शीर्ष पाँच राज्य मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और नगालैंड हैं। हाल ही में ''ग्लोबल फारेस्ट वॉच'' द्वारा एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है जिसमें बताया है की पिछले दो दशकों में 2.33 मिलियन हेक्टेयर वृक्ष क्षेत्र का नुकसान हुआ है और वर्ष 2011 और 2023 के बीच कुल वृक्ष आवरण हानि का 60 प्रतिशत नुकसान पाँच राज्यों में हुआ। औसतन 66600 हेक्टेयर की तुलना में असम में सबसे अधिक 324000 हेक्टेयर वृक्ष आवरण हानि हुई। मिजोरम में 312000 हेक्टेयर, अरुणाचल प्रदेश में 262000 हेक्टेयर, नागालैंड में 259000 हेक्टेयर और मणिपुर में 240000 हेक्टेयर वृक्ष क्षेत्र नष्ट हो गया। जिसको लेकर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने स्वतः संज्ञान लिया है और इन तथ्यों का भी संज्ञान लिया है कि भारत में वनों की कटाई की दर दुनिया में दूसरी सबसे अधिक है। चूकि ''नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल' एक सरकारी संस्थान है जो की पर्यावरण संरक्षण, वनों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और पर्यावरण से संबंधित किसी भी कानूनी अधिकार को लागू करने से संबंधित मामलों में प्रभावी और शीघ्र उपाय प्रदान करने का काम सौंपा गया है। घटते हरित आवरण एवं वनों को देखते कृषिवानिकी एक मात्र विकल्प है क्योंकि इसमें कृषि में बड़े पैमाने पर विविधीकरण के लिए किसान और ग्रामीण समुदाय को आर्थिक और पारिस्थितिक रूप से व्यवहार विकल्प प्रदान किया जाता है, साथ ही दूसरी ओर पारिस्थितिकी तंत्र को स्थिर करने की शक्ति प्रदान

करता है। कृषिवानिकी एक उज्जवल दृष्टिकोण है जो सदियों पुराने ज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ मिलाता है और भेद्यता को कम करने, जलवायु संबंधी जोखिमों के खिलाफ हरित क्षेत्र को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

राष्ट्रीय कृषिवानिकी नीति 2014 के अंतर्गत प्रत्येक राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेशमें 33% वन होना अनिवार्य है चूकि कई राज्य अभी भी अछूते है यह प्रतिशत तक पहुंचने में क्यूकि बढ़ते आबादी के कारण घटते वन भी एक वजह है तो इस सन्दर्भ में कृषिवानिकी बहुत उपयोगी विकल्प है जिसमें खेती के साथ पेड़ लगाए जिससे अलग से जमीन की उपलब्धता बाध्य नहीं है।

भारतीय राज्यवार वन क्षेत्र प्रतिशत

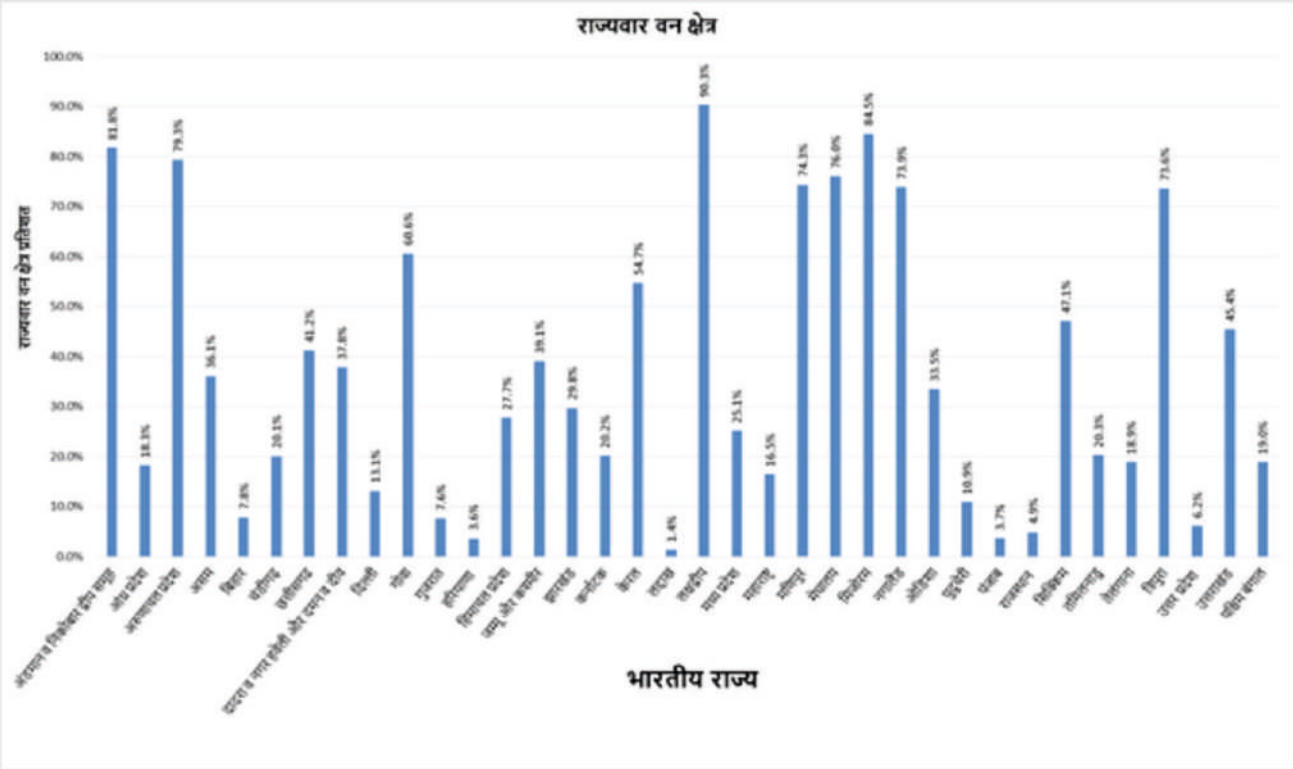

निष्कर्ष

हरित आवरण को बढ़ाने के लिए शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में वनों के बाहर वृक्षों को लगाने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्र कृषिवानिकी के द्वारा हरित आवरण को बढ़ाया जा सकता है। चूँकि कृषिवानिकी एक कृषि पद्धति है, जो पारंपरिक कृषि के साथ वृक्षारोपण की प्रक्रिया को भी समाहित करती है। इस पद्धति का प्राथमिक उद्देश्य कृषि भूमि पर पर्यावरण के अनुकूल वृक्षों का संरक्षण और विकास करना है। कृषिवानिकी के अंतर्गत कई तरीके से पेड़ लगाए जाते है जैसे की ब्लॉक वृक्षारोपण, मेड़ और सीमा वृक्षारोपण में पेड़ लगते है जिससे किसानों को लाभ के साथ हरित आवरण में भी वृद्धि होती है कृषिवानिकी का सिद्धांत यह है कि जब कृषि और वनस्पति का संयोजन किया जाता है, तो यह न केवल भूमि की उर्वरता को बढ़ाता है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र को भी संतुलित करता है। कृषिवानिकी अपनाये और पर्यावरण बचाये।

पार्किंसोनिया एक्यूलेटा: भारत के लिए अभिशाप या वरदान?

सुरेश रमणन एस., रिंकू सिंह, ए. अरूणाचलम एवं अंकित वर्दिया
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

पार्किंसोनिया एक्यूलेटा (कुलः फेबेसी उपकुलः कैसलपिनियोइडी) एक लकड़ीदार, कांटेदार, झाड़ी या छोटा पेड़ है। पार्किंसोनिया को आमतौर पर ''पालोवर्डे'' या ''जेरूसलम थॉर्न'' के रूप में जाना जाता है और पार्किंसोनिया का हिंदी नाम रामबबूल भी है। पार्किंसोनिया दक्षिण अमेरिका की मूलतः पाए जाने वाली प्रजाति है पार्किंसोनिया एक्यूलेटा की सूचना सबसे पहले भारत में 1850 से पहले मिली थी। इसे अठारहवीं शताब्दी के दौरान डॉ. रॉक्सबर्ग द्वारा भारत लाया गया था और अब यह भारत के गंगा के मैदानी इलाकों में तेजी से फेला हुआ है। पार्किंसोनिया आंध्रप्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, दिल्ली, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, उड़ीसा, पांडिचेरी, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल, और यानान में दर्ज किया गया है पार्किंसोनिया एक्यूलेटा शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में सबसे व्यापक और प्रसिद्ध लकड़ी के खरपतवारों में से एक है। यह बहुउद्देशीय पेड़ अमेरिका से आता है, लेकिन इसके कई उपयोगों के कारण यह पूरे उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में प्रचलित है अधिकांश देशों में पार्किंसोनिया को चारे, हेजिंग या सजावटी पेड़ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

वानस्पतिक वर्णन

पार्किंसोनिया फेबेसी कुल और कैसलपिनियोइडी उपकुल की एक प्रजाति है और इसमें अमेरिका और अफ्रीका की मूल की 29 प्रजातियाँ शामिल हैं। जीनस 'पार्किंसोनिया' का नाम सत्रहवीं सदी के अंग्रेजी वनस्पतिशास्त्री जॉनपार्किंसन के नाम पर रखा गया है और प्रजाति का नाम 'एक्यूलेटा' लैटिन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है 'काँटेदार' है पार्किंसोनिया एक्यूलेटा का वर्गीकरण विवरण नीचे दिया गया है:

वर्गीकरण

डोमेन	यूकेरियोटा	किंगडम	प्लांटी
फाइलम	स्पर्माटोफाइटा	सबफाइलम	अंगिवस्पेर्मए
क्लास	द्विबीजपत्री	आर्डर	फैबेल्स
फॅमिली	फेबेसी	सबफॅमिली	कैसलपिनियोइडी
जीनस	पार्किंसोनिया	प्रजाति	पार्किंसोनिया एक्यूलेटा

पार्किंसोनिया का तना आमतौर पर हरा होता है, और लगभग 15–60 सेमी. के व्यास के साथ कांटेदार होता है, अक्सर नीचे से शाखाबद्ध होता है, फेली हुई शाखाओं और लटकते हुए बहुत खुले मुकुट के साथ और बहुत विरल पत्ते होते हैं। पौधे या तो एक तने वाले या बहुतने वाले हो सकते हैं, जिनकी शाखाएँ तेजी से ऊपर की ओर उठती हैं प्रत्येक पत्ती का आधार 5–15 मिमी. लंबे कठोर, सुई–नुकीले कांटे (संशोधित पत्ती रैचिज) से बना होता है और पुरानी शाखाओं और तनों पर बना रहता है। फूल पाँच पंखुड़ियों वाले कोरोला के साथ चमकीले पीले रंग के होते हैं। चार पंखुड़ियाँ पीली हैं और

एक या तो नारंगी है या उस पर नारंगी धब्बें हैं। पार्किंसोनिया एक्यूलेटा के बीज आयताकार, 8–12 मिमी.. लंबे और 4–7 मिमी.. चौड़े होते हैं इसमें हरे पत्ते और तने और चमकीले पीले फूल हैं, जो सजावटी उपयोग के लिए इसके आकर्षण की क्षमता को बढ़ाते हैं। पौधे के सुंदर फूल परागण करने वाले कीड़ों विशेषकर मधुमक्खियों के लिए अत्यधिक आकर्षक होते हैं। मधुमक्खियाँ अमृत और पराग के लिए फूलों का व्यापक रूप से दौरा करती हैं पेड़ के फूल मधुमक्खी से परागणित होते हैं पार्किंसोनिया को बीज और कलमों के माध्यम से आसानी से प्रवर्धन किया जा सकता है।

चित्र 1: पार्किंसोनिया एक्यूलेटा वृक्ष और उसके विभिन्न भाग

पार्किंसोनिया एक्यूलेटा की पारिस्थितिकी

पार्किंसोनिया एक्यूलेटा तापमान और वर्षा की एक विस्तृत श्रृंखला को सहन कर सकता है जो इसके फैलने की क्षमता को बढ़ाता है और पहले से प्रभावित क्षेत्रों की तुलना में बड़े क्षेत्रों में परेशानी पैदा करता है। यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी पर जीवित रह सकता है, जिसमें उथली और कंकाल मिट्टी, गहरी रेत, चट्टानी नालियां और भारी और काली दरार वाली मिट्टी शामिल हैं। यह प्रजाति मध्यम से अत्यधिक लवणीय मिट्टी पर अच्छी तरह से बढ़ती है पार्किंसोनिया की पीएच सीमा (3–11) के प्रति भी बहुत सहनशील है। यह तेजी से बढ़ने वाला सदाबहार, कांटेदार पेड़ है जो शुष्क क्षेत्रों में अच्छी तरह उगता है। पार्किंसोनिया अपने सूखे और नमक सहनशीलता को अच्छी तरह से पहचानता है और कम पानी की खपत स निपटने के लिए कई फिजियोलॉजिकल अनुकूलन प्रदर्शित करता है जैसे कि पत्ती का क्षेत्र बहुत कम होना और हरी प्रकाश संश्लेषक और जल तनाव–सहिष्णु प्रजाति माना जाता है बहुत कठोर टेस्टा वाला बीज, इसे लंबे समय तक व्यवहार्य रहने में सक्षम बनाता है जब तक कि परिस्थितियाँ अंकुरण के लिए उपयुक्त न हों।

एकाधिक उपयोगिता

पार्किंसोनिया एक्यूलेटा एक पौधा है जो खरपतवारनाशक और फायदेमंद दोनों है। इस प्रजाति के कई उपयोग बताए

गए हैं जैसे सजावटी, प्राकृतिक संपंदा, औषधीय, कीट और रोग नियंत्रण, सक्रिय कार्बन (एसी), शहद उत्पादन और जैव–दहनशील जैसे औद्योगिक उत्पादों के लिए जानी जाती है।

अपने शानदार चमकीले पीले फूलों के कारण पार्किंसोनिया का उपयोग शुष्क क्षेत्रों में सजावटी पौधे के रूप में व्यापक रूप से किया जाता है। पार्किंसोनिया का उपयोग पशुओं को बाहर (या अंदर) रखने के लिए एक बाधा के रूप में या हवा के झोंके के रूप में कार्य करने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, यह ढीली मिट्टी को स्थिर कर सकता है और उन्हें कटाव से बचाता है। पार्किंसोनिया मिट्टी में नाइट्रोजन उपलब्धता बढ़ाता है और मिट्टी की उर्वरता में सुधार करता है। पार्किंसोनिया का सेवन मवेशियों द्वारा केवल चारे की कमी के समय में किया जाता है, मुख्यतः शुष्क मौसम के अंत में।

भारत में पार्किंसोनिया एक्यूलेटा की भविष्य में संभावनाएँ

विदेशी और आक्रामक प्रजातियों के विविध उपयोगों का लाभ उठाने और इन प्रजातियों की आक्रामकता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को कम करने की तत्काल आवश्यकता है। पार्किंसोनिया एक्यूलेटा भारत में एक आक्रामक प्रजाति है लेकिन इसके विभिन्न उपयोगों की खोज से रिकॉर्ड किए गए वन क्षेत्र के बाहर हरित आवरण को बढ़ाने के लिए इससे मदद मिलेगी।

इस वृक्ष प्रजाति को पुनर्वास के लिए और बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजाति के रूप में प्रचारित किया जा सकता है, मुख्यतः निम्नीकृत, कठोर या सीमांत भूमि में। पार्किंसोनिया का उपयोग सूडान, भारत और केपवर्डे सहित कई देशों में पुनर्वनीकरण कार्यक्रमों के लिए किया गया है। ऑस्ट्रेलिया में पार्किंसोनिया एक्यूलेटा पौधे मुख्य रूप से सजावटी और छायादार उद्देश्यों के लिए लगाए गए हैं। भारत में पार्किंसोनिया एक्यूलेटा को वन क्षेत्रों के बाहर सजावटी, पवनरोधी, छायादार या जीवित बाड़ के रूप में प्रचारित किया जा सकता है।

आधुनिक भाषाओं के घर की मध्यमणि हिन्दी भारत–भारती होकर बिराजती रहे।

–रविन्द्र नाथ ठाकुर

एक राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय चरित्र का विकास भाषा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होता है।

–अज्ञेय

अगर आज हिन्दी भारत की राजभाषा मान ली गई है तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा है।

–नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

परायी भाषा हमारे चरित्र की दृढ़ता का अपहरण कर लेती है, मौलिकता का विनाश कर देती है और नकल करने का स्वभाव बनाकर हमारे उत्कृष्ट गुणों और हमारी प्रतिभा को नष्ट कर देती है।

–गणेश शंकर विद्यार्थी

जलवायु परिवर्तन के परिवेश में कार्बन क्रेडिट का बाजार : परिचय एवं कृषि से संम्बन्धित चुनौतियाँ

राजेन्द्र प्रसाद, ए. अरूणाचलम, बद्रे आलम, शोभन देबनाथ एवं प्रशान्त सिंह
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

1. परिचय

पूरे विश्व में मानव सभ्यता ने अधिकतम विकास उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप प्राप्त किया। इस क्रान्ति के समय में ऊर्जा के स्रोत के लिए अधिकतम ईंधन जलाया गया जिसके कारण पृथ्वी के वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैस जैसे कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, क्लोरो फ्लोरो कार्बन इत्यादि की सांन्द्रता बढ़ गई। इन गैसों के कारण सूर्य की ऊष्मा पृथ्वी के वायुमण्डल में फंसकर रह जाती है जिसके कारण तापमान में वृद्धि होती है। इसे ग्रीन हाऊस गैस प्रभाव कहा जाता है। भूमण्डल का तापमान बढ़ने से वैश्विक स्तर पर मौसमी चक्र में बदलाव, समुद्री तूफान, तीव्र सूखा, तेज गर्मी, ग्लेशियर का पिघलना, समुद्र स्तर में बढ़ोत्तरी इत्यादि जैसे कुप्रभाव नजर आने लगे जो जलवायु के परिवर्तन के संकेत माने जाते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण मनुष्य एवं जंगली जानवरों तथा अनेक वनस्पतियों के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया।

बीसवीं सदी के अन्तिम 2–3 दशकों में वैज्ञानिकों ने दुनिया को सावधान करना शुरु कर दिया कि यदि जलवायु परिवर्तन व बढ़ते वैश्विक तापमान को नहीं रोका गया तो यह मानव जीवन के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा। इसके पश्चात् वैश्विक स्तर पर जलवायु के कुप्रभावों से बचने तथा बढ़ते हुए तापमान को रोकने के लिए प्रयास शुरु किए गए। चूंकि जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारक ग्रीन हाऊस गैस विशेषकर कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन है इसलिए जलवायु परिवर्तन के परिवेश में उत्सर्जित कार्बन का शमन करना या उत्सर्जन को कम करना ही मुख्यबिन्दु माने जाते हैं। इसी संदर्भ में कार्बन क्रेडिट का व्यापार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शुरु हुआ। इस लेख में कृषकों एवं खेती से जुड़े विषयों में कार्बन क्रेडिट अर्जित करने की संभावनाओं की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

2. कार्बन के व्यापार का आधार एवं शुरूआत

स्वस्थ जीवन के लिए प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग के लिए समानता का अधिकार ही कार्बन व्यापार का आधार है। प्रकृति पर समानता के अधिकार को समझने के लिए पृथ्वी पर मानव जीवन की सभ्यता के विकास में अर्न्तनिहित असमानता को समझना अवश्यक है यथार्थ रुप से आज विश्व में तीन प्रकार के राष्ट्र है – विकसित, विकासशील एवं अविकसित अथवा निर्धन राष्ट्र। वैसे तो मानव जीवन के विकास में भौगोलिक व जैविक कारणों से असमानता हमेशा रही है परन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने इस असमानता को अधिक बढ़ा दिया। अपनी विकास की गति के अनुरूप विकसित देशों ने पर्यावरण को ज्यादा क्षति पहुँचाई तथा जो देश विकास कर रहें है वह भी पर्यावरण को हानि पहुंचा रहे हैं। अविकसित देशों ने पर्यावरण का सबसे कम क्षरण किया है। परन्तु प्रकृति तो किसी के साथ भेदभाव नहीं करती। विकसित एवं विकासशील देशों ने अधिकतम कार्बन का उत्सर्जन करके पर्यावरण को जो क्षति पहुंचाई है एवं भूमण्डल के तापमान में जो वृद्धि की है उसका कुप्रभाव तो पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी प्राणियों के अस्तित्व को प्रभावित करता रहा है। इसलिए वैश्विक समाज ने न्यायोचित व्यवस्था के तहत यह निश्चय किया है कि जिस देश ने ज्यादा कार्बन का उत्सर्जन किया है वह उसके शमन में अधिक भूमिका निभाए। विकसित देश इसी श्रेणी में आते हैं इसके साथ–2 यह भी न्यायोचित ही हैं कि जो देश विकासशील हैं उन्हें अपने विकास की गति को रोकना न पड़े वरन् कार्बन

उत्सर्जन के मानदण्डों में शिथिलता दी जाए जिससे वे अपनी विकास यात्रा में नई व उच्च तकनीकी का प्रयोग करें व पर्यावरण को कम क्षति पहुँचाए। अविकिसित देशों की भी सहायता की जाए कि वे भी विकास का स्वाद लें व अपने नागरिकों को बेहतर जीवन दें सके। इसी अवधारणा के साथ सन् 1994 में यूनाइटेड नेशन फ्रेमवर्क कनवेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) का गठन किया गया, जिससे विश्व के सभी देश एक साथ बैठकर पृथ्वी के वातावरण को स्वस्थ व जीवन योग्य बनाए रखने के लिए सामूहिक प्रयास करें एवं विकास भी जारी रख सकें। इस अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण सन्धि में 198 देशों ने अपनी सहभागिता की।

वर्ष 1997 के क्योटो प्रोटोकाल के तहत सभी देशो में समानता के सिद्धान्त परन्तु क्षमता अनुसार अपने–अपने दायित्व को पूरा करने के लिए सहमति बनी तथा ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन मे 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत की कमी लाने का लक्ष्य तय किया गया। विकसित, विकासशील एवं निर्धन देशों के लिए क्षमतानुसार दायित्व अलग–2 तय किए गए जिसका आधार कार्बन उत्सर्जन की मात्रा माना गया। इस प्रकार क्योटो प्रोटोकाल ने कार्बन को वैश्विक बाजार में एक वस्तु की तरह व्यापार की मान्यता दें दी। कार्बन उत्सर्जन की ट्रेडिंग में इसके अलग–2 नाम जैसे – ए.एम.यू. (Assigned Amount Unit असान्ड एमाउन्ट यूनिट), इ.आर.यू. (Emmission Reduction Unit एमिशन रिडक्शन यूनिट), सी.ई.आर. (Certified Emmission Reduction सर्टीफाइड एमिशन रिडक्सन), आर.एम.यू. (Removal Unit रिमूवल यूनिट) इत्यादि प्रचलन में रहे। एक यूनिट का मतलब है 1000 कि.ग्रा या एक टन कार्बन डाईऑक्साइड अथवा उसके समतुल्य ग्रीन हाऊस गैस का उर्त्सजन अथवा शमन।

3. कार्बन ट्रेडिंग (व्यापार) के आयाम

कार्बन ट्रेडिंग में कुछ उपयोगी तकनीकी शब्दावली को पहले समझना आवश्यक है जो निम्न प्रकार है –

(I) **कार्बन फुट प्रिन्ट –** कार्बन फुटप्रिंट एक पर्यावरणीय सूचकांक है जो मानव द्वारा विकास के लिए किए गए कार्यों से उत्सर्जित ग्रीन हाऊस गैस अथवा कार्बन डाईऑक्साइड के समतुल्य गैस की मात्रा को इंगित करता है। इस प्रकार हर विकास की गतिविधि का एक कार्बन फुट प्रिन्ट होता है। जिस देश में आद्योगिक गतिविधियां ज्यादा है अथवा जनसंख्या अधिक है, उस देश का कार्बन फुटप्रिन्ट अधिक होता है। औसतन रुप से पूरे विश्व का कार्बन फुटप्रिन्ट लगभग 4 टन कार्बन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। विकसित और विकासशील देशों के कार्बन फुटप्रिन्ट में काफी असमानता है। जैसे भारत का प्रति व्यक्ति कार्बन फुटप्रिन्ट वर्ष 2022 में 1.91 टन था जबकि चीन का 8.85 टन, यू.एस.ए. का 14.4 टन, रूस का 13.3 टन, जापान का 8.6 टन, कनाडा का 15.8 टन और नाइजर का 0.1 टन।

(ii) **कार्बन टैक्स –** कार्बन टैक्स वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से होने वाले उत्सर्जन पर लगाया जाने वाला कर है। कार्बन टैक्स अथवा करों का उद्देश्य कार्बन उत्सर्जन की छिपी हुई पर्यावर्णीय क्षति के रूप में सामाजिक लागत को सामने लाना है। कार्बन टैक्स को अनिवार्य रूप से जीवाश्म ईंधन की कीमत में वृद्धि करके ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए लागू किया गया है। विश्व के कई देशों ने अपने औद्योगिक एवं अन्य कार्बन उत्सर्जन करने वाली इकाईयों पर कार्बन टैक्स लागू किया है। भारत में 400 रुपये प्रतिटन कोयला उत्पादन अथवा आयात करने पर कार्बन टैक्स वसूला जाता है।

(iii) **कार्बन क्रेडिट और कार्बन ऑफसेट –** एक कार्बन क्रेडिट अथवा कार्बन ऑफसेट वातवरण में एक टन कार्बन डाईऑक्साइड अथवा इसके समतुल्य ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन में कमी करने अथवा हटाने का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यतः कार्बन क्रेडिट ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन में कमी को दर्शाता है जबकि कार्बन ऑफसेट ग्रीन हाऊस गैस को वायुमण्डल या वातावरण से समाप्त करने या अवशोषित करने की क्रिया को इंगित करता है।

उदाहरणतः यदि कोई उद्योग अपनी तय कार्बन क्रेडिट की सीमा से कम उत्सर्जन करता है, तो वह अपने कार्बन क्रेडिट बचाता है तथा किसी दूसरे औद्योगिक इकाई को बेंच सकता है। इसी प्रकार यदि कोई औद्योगिक इकाई वृक्षारोपण करके एक टन वायुमण्डलीय कार्बन को अवशोषित करके समाप्त करता है तो वह एक कार्बन ऑफसेट का हकदार होता है। कार्बन बाजार की दुनिया में कार्बन क्रेडिट एवं कार्बन ऑफसेट एक समान माने जाते हैं। सामान्यतः कार्बन क्रेडिट औद्योगिक इकाई के लिए गैस उत्सर्जन की सीमा के रूप में तय होता है जबकि कार्बन ऑफसेट का उत्पादन वृक्षारोपण से जुड़ी हुई कोई भी इकाई जैसे – गैरसरकारी संगठन, किसानों का समूह अथवा अन्य उत्पादित कर सकता है एवं कार्बन के बाजार में बेच सकता है। सरल भाषा में कहा जाए तो कार्बन क्रेडिट या कार्बन ऑफसेट एक वित्तीय साधन है जिसका उद्देश्य या तो वायुमण्डल में कार्बन के उत्सर्जन को रोकना होता है अथवा पहले से उत्सर्जित कार्बन को अवशोषित करके जमा करना होता है।

4. कार्बन ट्रेडिंग (व्यापार) के बाजार

कार्बन ट्रेडिंग के मुख्यतः दो प्रकार – अनुपालन एवं स्वैच्छिक बाजार है।

(i) अनुपालन कार्बन बाजार (Compliance Carbon Market)

रिगुलेटरी कार्बन बाजार अथवा अनुपालन कार्बन बाजार ऐसे बाजार हैं जिसके माध्यम से प्रत्येक कम्पनी या औद्योगिक इकाई को प्रतिवर्ष एक निश्चित संख्या में कार्बन क्रेडिट जारी किए जाते है जिन्हे औद्योगिक इकाईयों के लिए पूरा करना बाध्यकारी होता है अर्थात अपनी तय सीमा से अधिक कार्बन क्रेडिट का उत्सर्जन करने पर उन्हे उतनी मात्रा में ऐसी कम्पनी से कार्बन क्रेडिट खरीदना होगा जिसने अपनी तय सीमा से कम कार्बन क्रेडिट खर्च करके बचत की हो। इस प्रकार सीमा से अधिक उत्सर्जन करने वाले को अपनी तय सीमा से कम कार्बन उत्सर्जन करने वाली इकाई को प्रीमियम देकर अपनी तय सीमा के उलंघन के लिए कार्बन क्रेडिट खरीद कर बढ़ाने होते हैं। इसे कैप एण्ड ट्रेंड बाजार भी कहा जाता है। कार्बन का अनुपालन बाजार हर देश में घरेलू स्तर पर उपलब्ध होने के साथ – साथ यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्य करता है। कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए यह बाजार क्योटो प्रोटोकाल के समय से चल रहा है एवं गरीब व विकासशील देश इससे लाभान्वित हो रहे हैं।

यूनाइटेड नेशन्स फेमवर्क कानवेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) के तहत पेरिस समझौता 2015 में हुआ जिसके सेक्शन 6 के तहत प्रत्येक देश ने अपने निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के लिए दूसरे देशों से कार्बन ट्रेडिंग करना शुरु किया। जो देश अपने लक्ष्य से अधिक कार्बन का उत्सर्जन करते हैं वह बाध्यकारी रुप से उन देशो से कार्बन क्रेडिट खरीदते है जिन्होंने अपने तय सीमा या लक्ष्य से कम कार्बन उत्सर्जन किया एवं शेष कार्बन क्रेडिट को बेचने के अधिकारी हैं। इस प्रकार ग्रीन हाउस गैस के कुल उत्सर्जन को घटाने या कम करने की यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अनुपालना है।

(ii) स्वैच्छिक कार्बन बाजार (Volunteer Carbon Market)

स्वैच्छिक कार्बन बाजार अधिक कार्बन उत्सर्जन करने वाली इकाईयों को यह अवसर देता है कि वह उत्सर्जित कार्बन को ऑफसेट (हटाने) करने के लिए ऐसी इकाई अथवा प्रोजेक्ट्स जिनका उद्देश्य ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करना अथवा वायुमण्डल से अवशोषित कर समाप्त करना है, से कार्बन क्रेडिट खरीद सके। दूसरे शब्दों में कहें तो स्वैच्छिक कार्बन बाजार अलाभकारी गैर सरकारी संस्थाओं वैयक्तिक इकाईयों अथवा सरकारी संस्थाओं को अपने कार्बन ऑफसेट क्रेडिट को खरीदने व बेचने का अवसर प्रदान करता है। एक कार्बन ऑफसेट क्रेडिट वायुमण्डल से एक मैट्रिक टन कार्बन डाईऑक्साइड या समतुल्य ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में लाई गई कमी का प्रतिनिधित्व करता है। संभावनाओं के आधार पर अगर समझें तो एक कार्बन ऑफसेट अथवा

एक टन कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन को अवशोषित करने के लिए लगभग 50 पेड़ों को एक वर्ष के लिए पालना पड़ेगा। ऐसी औद्योगिक इकाईयाँ जो कार्बन उत्सर्जन के अपने लक्ष्य पूरे नहीं कर पाती हैं वे पर्यावर्णीय प्रोजक्ट से कार्बन ऑफसेट क्रेडिट खरीदकर अपने लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं अर्थात ऐसे प्रोजेक्ट में निवेश करते है जो उत्सर्जित कार्बन को अवशोषित कर कार्बन ऑफसेट क्रेडिट का उत्पादन करते है।

स्वैच्छिक कार्बन बाजार में कार्बन ऑफसेट क्रेडिट पैदा करने वाली विभिन्न ऐसी संस्थाए व व्यक्तियों के समूह कार्य करते हैं जो स्वैच्छा से पर्यावरण की रक्षा करना चाहते है व जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों से मानव को बचाने के लिए ऐसे कार्बन उत्सर्जन को अवशोषित या ऑफसेट करना चाहते है जिसे कम करना उनके नियन्त्रण में नहीं है।

स्वैच्छिक कार्बन बाजार के तन्त्र में कुछ जुड़ी हुई परियोजनाएं एवं स्टैन्डर्ड लागू होते है जो स्वैच्छा से कार्बन क्रेडिट या ऑफसेट क्रेडिट के खरीदने व बेचने का प्लेटफार्म उपलब्ध कराते हैं। स्वैच्छिक बाजार में कार्बन की बढ़ती हुई परियोजनाओं से उत्पादित कार्बन क्रेडिट/ऑफसेट क्रेडिट के प्रबन्धन एवं सत्यापन के लिए स्वैच्छिक रूप से कई संस्थाएं स्थापित हो चुकी हैं जिसमें वैरीफाइड कार्बन स्टैन्डर्ड, गोल्ड स्टैन्डर्ड तथा क्लीन डेवलपमेंट मैकेनिज्म प्रमुख हैं। पूरे विश्व में स्वैच्छिक कार्बन बाजारों का आकार बढ़ता ही जा रहा है। वर्ष 2021 के अनुसार यह 2.0 बिलियन यू.एस. डालर तक पहुँच गया। वर्ष 2030 तक इसके 10 से 40 बिलियन यू.एस. डालर तक बढ़ने का अनुमान है।

कार्बन के अनुपालन बाजार में कार्बन क्रेडिट पर सरकारी नीतियों से नियन्त्रण किया जाता है जब कि स्वैच्छिक कार्बन बाजार में कार्बन क्रेडिट का उत्पादन एवं विक्रय दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। स्वैच्छिक कार्बन बाजार में कार्बन क्रेडिट मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं पहला कार्बन एवाइडेंस क्रेडिट (Carbon Avoidance Credit) एवं दूसरा कार्बन रिमूवल क्रेडिट (Carbon Removal Credit) जो नेचरवेस्ड प्रोजेक्ट (Nature based project) या टेक्नोलोजी वेस्ड प्रोजेक्ट (Technology based Project) से उत्पादित किए जाते है। नेचरवेस्ड कार्बन रिमूवल प्रोजेक्ट के क्रेडिट को अच्छा मूल्य मिलता है क्योंकि पर्यावरण के स्वाथ्य के अनुसार इसका प्रभाव अधिक लाभकारी होता है। स्वैच्छिक बाजार के लिए कार्बन क्रेडिट का चक्र चार चरणों में पूरा होता है जो निम्न है –

(अ) प्रोजेक्ट का प्रस्ताव एवं डेवलपमेंट (Project Proposal Development)

(ब) प्रोजेक्ट का रजिस्ट्रेशन तथा सत्यापन (Registration and Verification)

(स) कार्बन क्रेडिट का जारी करना (Issuance of Carbon Credit)

(द) कार्बन क्रेडिट का विक्रय (Marketting of carbon credit)

जो आर्गेनाइजेशन कार्बन क्रेडिट खरीदता है वह इन्हें किसी दूसरी संस्था को बेच सकता है। परन्तु यदि यह कार्बन क्रेडिटस जलवायु सम्बन्धी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयोग किए गए तो इन्हें रिटायर मान लिया जाता है तथा फिर भविष्य में इन्हें दुबारा उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

5. भारत में कार्बन क्रेडिट का बाजार तन्त्र

पूरे विश्व में यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कान्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) के तहत जलवायु परिवर्तन के कारक ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में कमी (Mitigation) तथा जलवायु परिवर्तन की जोखिम को सहनीय अथवा अनुगामी (Adaptation) बनाने के प्रयासों में भारत ने हमेशा अग्रणी भूमिका निभाई है एवं पूरे विश्व के साथ मिलकर जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों को कम करने का पूरा प्रयास किया है। पेरिस समिति (2015) के समझौता के तहत भारत ने अपने निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु 8 मिशन (नेशनल सोलर मिशन, एनहान्सड इनर्जी

इफिसियंसी मिशन, सस्टेनेबल हैविटेट मिशन, वाटर मिशन, सस्टेनिंग हिमालयन इकोसिस्टम मिशन, ग्रीन इंडिया, सस्टेनेबल एग्रीकल्चर एवं स्ट्रेटिजिक नॉलेज फॉर क्लाईमेट चेंज) को क्रियान्वित किया। इसके अतिरिक्त कई नयी नीतियों एवं नियमों को बनाया है। भारत ने तय किया है कि वर्ष 2030 तक 500 गीगावाट नान – फोसाइल ऊर्जा (Non-fossile Energy) को पैदा करेगा, अपनी कुल ऊर्जा की जरूरत का 50% रिन्यूवेवल ऊर्जा से पूर्ति करेगा, अनुमानित कुल कार्बन के उत्सर्जन में 1 विलियन टन की कमी करेगा तथा देश की इकोनमी में 2005 के सापेक्ष कार्बन इन्टेंसिटी को 45% कम करेगा। इन सबके अलावा भारत ने वर्ष 2070 तक नेट जीरो के लक्ष्य को प्राप्ति की भी घोषणा की है। भारत जी–20 देशों के समूह में एक मात्र देश है जिसने अपने जलवायु परिवर्तन के निर्धारित सभी लक्ष्यों को पूरा किया है।

कार्बन ट्रेडिंग के क्षेत्र में भी भारत पीछे नहीं रहा एवं शुरुआती दौर से सभी देशों के साथ मिलकर अग्रणी भूमिका निभा रहा है। भारत में कार्बन क्रेडिट के बाजार को बढ़ाने के लिए सबसे पहले वर्ष 2008 में कार्बन को एक कमोडिटी मानते हुए मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज में कार्बन ट्रेडिंग को मान्यता दी गई। इसके बाद नेशनल कमोडिटी एण्ड डेरीवेटिव एक्सचेंज ने कार्बन ट्रेडिंग को शुरु किया। भारत में कार्बन ट्रेडिंग के नियम एवं शर्तों को प्रभावी बनाने हेतु दो बड़े कदम उठाए गए हैं। पहला – एनर्जी कन्सरवेशन (अमेन्डमेंट) एक्ट – 2022 पारित करके 1 जनवरी 2023 से लागू किया गया। इस एक्ट के क्रियान्वयन से भारत में कार्बन क्रेडिट के उत्पादन, रिगुलेशन तथा ट्रेडिंग का रास्ता साफ हो गया। इस एक्ट के तहत कार्बन ट्रेडिंग को सुचारु रुप से बढ़ाने हेतु कार्बन ट्रेडिंग स्कीम 2023 को शुरु किया गया।

कार्बन ट्रेडिंग स्कीम 2023 (Carbon Trading Scheme - 2023)

कार्बन ट्रेडिंग स्कीम 2023 के तहत चार संस्थाए कार्य करेंगी जो निम्न हैं –

(i) नेशनल स्टीरिंग कमेटी (National Steering Committee - NSC)

(ii) ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशियन्सी (Bureau of Energy Efficiency - BEE)

(iii) ग्रिड कन्ट्रोलर आफ इंडिया (Grid Controller of India - GCI)

(iv) सेन्ट्रल इलेक्ट्रीसिटी रिगुलेटरी कमीशन (Central Electricity Regulatory Commission - CERC)

नेशनल कमेटी पूरी प्रक्रिया की देख रेख करेगी एवं आवश्यक दिशा निर्देश जारी करेगी। ब्युरो, प्रशासक की भूमिका निभाएगा तथा कार्बन क्रेडिट सर्टीफिकेट जारी करेगा, ग्रिड कन्ट्रोलर, रजिस्ट्री की भूमिका निभाएगा तथा सेन्ट्रल इलेक्ट्रीसिटी रिगुलेटरी कमीशन, कार्बन ट्रेड को नियन्त्रित करेगा। इस प्रकार कार्बन ट्रेडिंग स्कीम 2023 ने भारत में अनुपालन कार्बन बाजार (Compliance Carbon Market) के लिए रास्ता खोल दिया है।

भारत ने दूसरा बड़ा कदम स्वैच्छिक कार्बन ट्रेडिंग को घरेलू बाजार में बढ़ावा देने हेतु ग्रीन क्रेडिट प्रोग्राम – 2023 के रुप में उठाया है।

ग्रीन क्रेडिट प्रोग्राम – 2023 (Gree Credit Programme - 2023)

ग्रीन क्रेडिट प्रोग्राम के तहत पर्यावरण की सुरक्षा के लिए स्वैच्छा से किए गए कार्यों के बदले ग्रीन क्रेडिट सर्टीफिकेट जारी किए जाएंगे। उदाहरणतः पड़ती भूमि, बंजर भूमि, वाटरशेड एरिया, जो राज्य वन विभाग के अन्तर्गत है उस पर वृक्षारोपण का कार्य करवा कर कोई भी इकाई ग्रीन क्रेडिट सर्टीफिकेट प्राप्त कर सकता हैं। ग्रीन क्रेडिट सर्टीफिकेट जारी करने के लिए भारतीय वानिकी शोध एवं शिक्षा परिषद, देहरादून (Indian Council of Forestry Research and Education) को प्रशासक की भूमिका दी गई है। भारतीय वानिकी शोध एवं शिक्षा परिषद भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मन्त्रालय की एक स्वायित्त संस्था है। उल्लेखनीय बात यह है कि ग्रीन

क्रेडिट सर्टीफिकेट, कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग स्कीम 2023 के तहत कार्बन क्रेडिट से अलग होगा एवं दोनों में कोई किसी पर निर्भर नहीं होगा।

6. कार्बन क्रेडिट के बाजार में कृषकों के लिए अवसर एवं चुनौतियाँ

कार्बन ट्रेडिंग के अनुपालन बाजार का प्रयोग औद्योगिक इकाईयां एवं सरकारें अपने ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मानकों एवं नीतियों के नियन्त्रण के अनुसार लेखा प्रस्तुत करने के लिए करती है। अतः यह बाजार कृषि व कृषकों के लिए लागू नहीं होता है। कृषि एवं कृषकों के लिए स्वैच्छिक कार्बन बाजार अवसर प्रदान करता है क्योंकि कार्बन उत्सर्जन करने वाली इकाईयां अपने उत्सर्जन को ऑफसेट करने के लिए उन संस्थाओं/व्यक्तिगत इकाईयों से कार्बन क्रेडिट खरीदते है जिनका उद्देश्य वायुमण्डल से कार्बन को हटाना अथवा पृथक्करण होता है। कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जो ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन भी करता है एवं पृथक्करण भी। अतः यह कहा जा सकता है कि कृषि कार्बन का जनक (Source) भी है एवं अवशोषित/पृथक्करण का माध्यम (Sink) भी है। इस प्रकार कृषि एक ओर कृषकों को कार्बन का अवशोषण अथवा पृथक्करण करके कार्बन क्रेडिट उत्पादित करके लाभ प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है तो वहीं दूसरी ओर कार्बन क्रेडिट पैदा करने में अनेक चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है।

भारत के संदर्भ में देखा जाए तो कृषि क्षेत्र कुल ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 18% का योगदान करता है। खेती में उपयोगी उर्वरक, रसायन एवं पशुधन का उत्पादन जैसी गतिविधियां ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन करती हैं जबकि कृषिवानिकी, संरक्षित खेती, प्राकृतिक खेती, मृदा जीवाश्म को बढ़ाने वाले क्रिया–कलाप वायुमण्डल से कार्बन का पृथक्करण करके ग्रीन हाउस गैस का शमन करते हैं।

i) कृषि क्षेत्र में कार्बन ट्रेडिंग के अवसर

किसान कार्बन ऑफसेट परियोजनाओं में भाग लेकर कार्बन क्रेडिट की बिक्री से अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना होगा –

* संरक्षण खेती एवं कृषिवानिकी जैसी विभिन्न कार्बन शमन करने वाली कृषि पद्धतियाँ अपनाकर मृदा में सुधार लाया जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप फसल की पैदावार में वृद्धि होगी एवं जलवायु परिवर्तन के कुप्रभाव से बचा जा सकता है।
* कृषिवानिकी जैसी पद्धतियाँ अपनाने से जैवविविधता को बढ़ावा मिलेगा।
* फसलों के उत्पादन में विविधता (Diversification), उर्वरकों एवं रसायनों का कम उपयोग, पानी का संरक्षण, कम से कम जुताई (Zero Tillage), मलचिंग, हरी खाद व कम्पोस्ट का उपयोग, कृषिवानिकी इत्यादि गतिविधियों से सतत उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है एवं कार्बन के पृथक्करण को बढ़ाया जा सकता है।
* कृषकों को अपनी कृषि पद्धतियों में ऊर्जा संरक्षण पर ध्यान देना होगा एवं सघन ऊर्जा वाले उत्पादन कारकों (Input) का उपयोग घटाकर साधनों की उपयोग क्षमता (Use efficiency) को बढ़ाने पर ध्यान देना होगा।

भारतीय सरकार कृषि क्षेत्र में संभावनाओं के तहत किसानों को पर्यावरण अनुकूल कृषि पद्धतियों को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए प्रयासरत है एवं कृषि में कार्बन ट्रेडिंग के लिए प्रावधान करना इसी दिशा में एक प्रयास है। परन्तु स्वैच्छिक कार्बन बाजार में कार्बन ट्रेडिंग के द्वारा धन लाभ कमाना कृषकों के लिए चुनौतीपूर्ण है।

ii) कृषि द्वारा पृथक्कृत कार्बन की ट्रेडिंग की चुनौतियाँ

* कृषि द्वारा प्राच्छादित अथवा पृथक्कृत कार्बन (Sequestered carbon) की गणना या मापन एवं सत्यापन का कार्य जटिल व कठिनाईयों से भरा है।

* कृषि की विभिन्न कार्य पद्धतियों से कार्बन प्राच्छादन पर सटीक एवं सुसंगत आँकड़ों की कमी है जिसके कारण कार्बन क्रेडिट के निर्धारण एवं विक्रय का कार्य कठिन हो जाता है।
* भारत में कार्बन ट्रेडिंग के लिए नियामक ढाँचा अभी पूरी तरह से विकसित नहीं हैं एवं जटिलताएं अधिक हैं जिसके कारण कृषकों तथा अन्य लाभार्थियों के लिए कार्बन बाजार में भाग लेना मुश्किल है।
* वर्तमान में कृषि क्षेत्र से कार्बन मापन, सत्यापन एवं व्यापार से संम्बन्धित लागतें काफी ज्यादा हो सकती हैं जिसके कारण छोटे किसानों एवं अन्य हितधारकों की कार्बन ट्रेडिंग में भागीदारी कठिन हो जाती है।
* मौजूदा समय में कृषि क्षेत्र से कार्बन क्रेडिट की माँग सीमित है इसलिए किसानों को अपने क्रेडिट के खरीददार खोजना आसान नहीं है।
* भारत के किसानों में कार्बन ट्रेडिंग से जुड़े अवसरों एवं लाभों तथा कार्बन बाजार में भागीदारी के तौर – तरीके के बारे में जानकारी का अभाव है।

7. सारांश

कार्बन ट्रेडिंग से किसानों को लाभ पहुंचाने हेतु कृषि क्रियाओं से होने वाले अतिरिक्त कार्बन प्राच्छादन के मापन और सत्यापन की एक पारदर्शी प्रक्रिया विकसित करने की आवश्यकता है। आवश्यकतानुसार कृत्रिम बुद्धिमता (Artificial Intelligence) और रिमोट सेसिंग (Remote Sensing) तकनीक का उपयोग किया जा सकता है। स्वैच्छिक कार्बन बाजार में व्यक्तिगत रूप से किसानों के कार्बन क्रेडिट की बिक्री कर पाना मुश्किल प्रक्रिया है अतः कार्बन ट्रेडिंग में उनकी भागीदारी बढ़ाने लिए कृषक उत्पादक संगठनों (Farmers' producers organisation) और सहकारी समितियों (Co–operative Societies) जैसे सामूहिक प्रयास से इसे सरल बनाना जरुरी है। इसके अतिरिक्त उत्तम कृषि तकनीकों को अपनाने एवं कार्बन बाजार में भागीदारी से सम्बन्धित लाभों के बारे में वृहद् स्तर पर किसानों में जागरुकता अभियान फैलाने की अति आवश्यकता है।

भारत के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है।

–आर.एम. मैकग्रेगर

जब तक इस देश का राज–काज अपनी भाषा में नहीं चलेगा। तब तक हम यह नहीं कह सकते कि देश में स्वराज्य है।

–मोरारजी देसाई

राष्ट्रभाषा किसी व्यक्ति या प्रान्त की सम्पत्ति नहीं, इस पर सारे देश का अधिकार है।

–सरदार बल्लभ भाई पटेल

पलाश वृक्ष से गोंद के रिसाव व दोहन पर माह एवं ऋतु का प्रभाव

राजेन्द्र प्रसाद, प्रशान्त सिंह, बद्रे आलम एवं ए.के. हाण्डा
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

कमरकस अथवा पलाश–गोंद, पलाश के वृक्षों से निकलने वाला एक बहुउपयोगी प्रकार का गोंद है। मध्य भारत के सहारिया आदिवासियों की जीविका काफी हद तक पलाश के गोंद के दोहन एवं विक्रय पर निर्भर करती है। परम्परागत रुप से सहारिया आदिवासी पलाश वृक्ष से गोंद के दोहन के लिए देशी कुल्हाड़ी (छोटे आकार की) से वृक्ष की गुदाई करते हैं एवं रिसने के बाद गोंद (गाद) जब सूख जाता है तो उसको वृक्ष से अलग करके एकत्र कर लेते हैं व स्थानीय ट्रेडर को बेंच देते हैं। देशी कुल्हाड़ी से गुदाई करने से पेड़ में गहरे घाव बन जाते है जो पेड़ की सेहत के लिए ठीक नहीं है। इसके अलावा, गहरे घाव भरने में समय अधिक लगता है एवं वृक्ष से प्रतिवर्ष गोंद का भी दोहन नहीं किया जा सकता। भारतीय कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद द्वारा पोषित प्राकृतिक गोंद एवं रॉल के संग्रहण, प्रसंस्करण एवं मूल्य संबर्धन पर नेटवर्क परियोजना के अन्तर्गत केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी द्वारा नए शोध की शुरुआत की गई एवं पलाश वृक्ष से गोंद प्राप्त करने हेतु गुदाई (Knotching) के लिए एक विशेष बिलहुक (Special Billhook) विकसित किया गया जिसके द्वारा गोंद दोहन से वृक्ष को हानि नहीं होती एवं घाव एक साल के अन्दर भर जाते हैं तथा वृक्षों से प्रतिवर्ष गोंद का दोहन संभव है। इसके अलावा गोंद दोहन की तकनीक भी मानकीकृत की जा चुकी है। अधिक गोंद की प्राप्ति के किए विशेष बिलहुक से 1.0 से 2.0 सेमी. लम्बा व 1.0 सेमी. गहरे घाव वाली गुदाई करना उत्तम पाया गया है। गुदाई करने की सघनता 45 से 60 घाव (प्रतिवर्ग फुट तना क्षेत्र) अधिकतम रिसाव पैदा करते हैं।

पलाश के वृक्ष से गोंद के दोहन की संभावनाओं पर काफी सूचनाएं उपलब्ध हैं परंतु माहवार गोंद के रिसाव व उपज की मात्रा पर वैज्ञानिक सूचना का अभाव है। अतः पलाश वृक्ष से विभिन्न महीनों में वर्षभर गोंद का रिसाव व उपज के आँकड़ों को जानने के लिए एक प्रयोग किया गया। अध्ययन हेतु केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान के प्रक्षेत्र पर उपलब्ध 36 पलाश के वृक्षों को चिन्हित किया गया एवं प्रतिमाह तीन वृक्षों पर विशेष बिलहुक से गुदाई (Knotching) की गई। गुदाई की सघनता 45 घाव प्रति वर्गफुट तना क्षेत्र रखी गई एवं गुदाई के 4–5 दिन बाद गोंद एकत्रित किया गया है। अध्ययन में चिन्हित वृक्षों का जीबीएच (मोटाई) 58 से 103 सेमी. था। अध्ययन दिसम्बर 2021 में शुरु होकर नवम्बर 2022 में पूरा हुआ एवं वर्ष 2022–23 में पुनः किया गया। गोंद रिसाव व उत्पादन के दो वर्ष के आँकड़ों का विश्लेषण किया गया।

आँकड़ों की विवेचना करने से पता चला कि अधिकतम गोंद का रिसाव तथा उत्पादन दिसम्बर माह में प्राप्त हुआ (चित्र–1)। गोंद का उत्पादन दिसम्बर माह की अपेक्षा जनवरी व फरवरी महीनों में क्रम से घट गया। दिसम्बर से जून महीने तक गोंद का उत्पादन क्रम से घटता रहा एवं जुलाई, अगस्त माह में न्यूनतम अथवा नगण्य गोंद पैदा हुआ जिसका मुख्य कारण वर्षा–जल के साथ रिसाव हुए गोंद का बह जाना रहा। अगर ऋतु (Season) के हिसाब से देखा जाए तो शरद ऋतु (Winter) में नवम्बर से फरवरी महीनों में अधिकतम गोंद का उत्पादन हुआ तथा इससे कम गर्म ऋतु (Summer) के मार्च से जून तक के माह में एवं वर्षा ऋतु के महीनों (जुलाई से अक्टूबर) में सबसे कम गोंद का उत्पादन प्राप्त हुआ। अध्ययन के दोनों वर्षों 2021–22 एवं 2022–23 में गोंद के रिसाव व उत्पादन का एक जैसा स्वरूप देखने को मिला। सारांशतः अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि पलाश वृक्ष से गोंद के दोहन के लिए शरद ऋतु के दिसम्बर व जनवरी माह अति उत्तम है व इन्ही महीनों में पलाश के वृक्षों से अधिकतम गोंद दोहन के लिए गुदाई करना चाहिए।

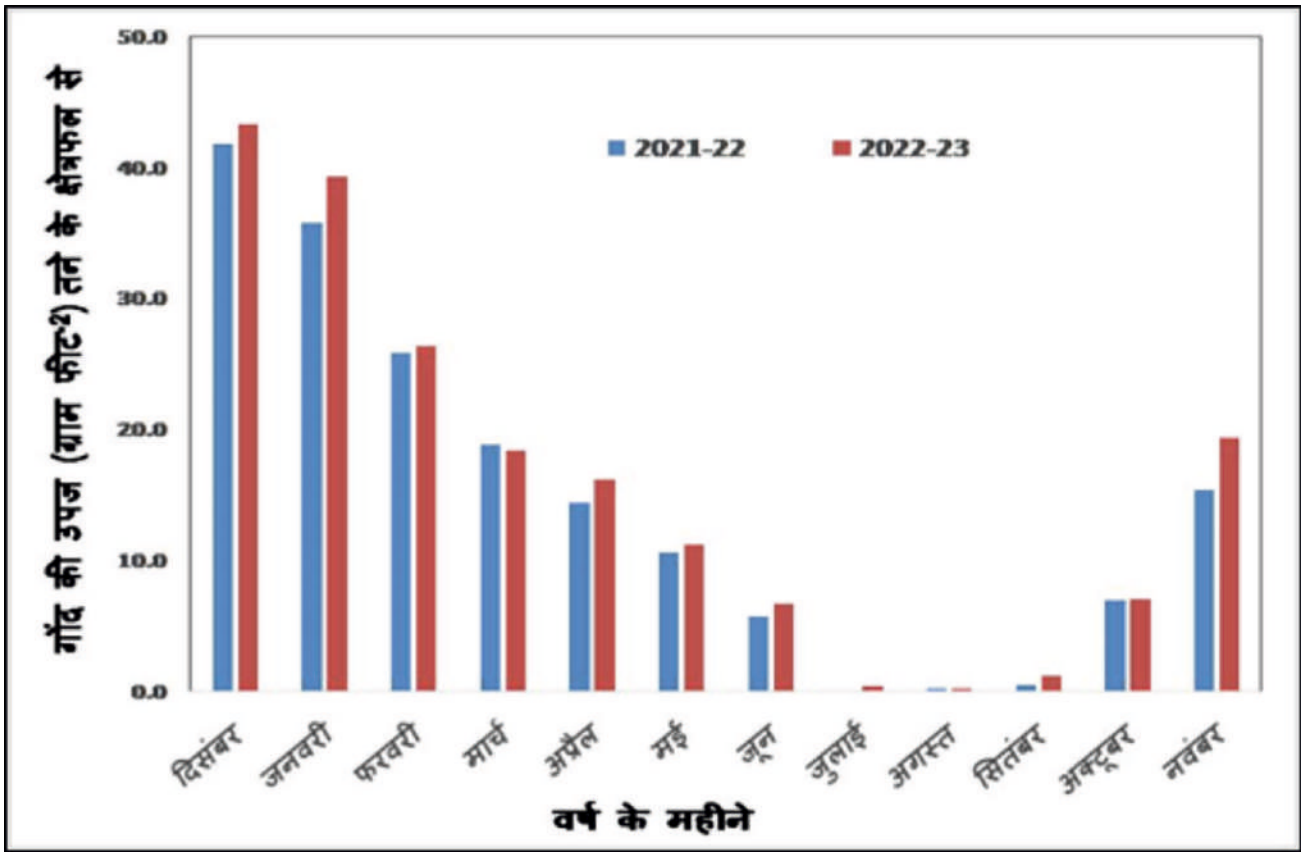

अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिये ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता समझता है।

–महात्मा गाँधी

* * *

हिन्दी के प्रति स्वाभिमान जागृत करना होगा एवं पूर्ण गौरव के साथ हिन्दी के प्रति लगाव रखना होगा तथा मन से यह भय मिटाना होगा कि अंग्रेजी बोलने वाले ज्यादा विद्वान हैं। आपसी बातचीत में हिन्दी का प्रयोग स्वाभिमान के साथ करना होगा।

* * *

हिन्दी का आन्दोलन समूचे देश को आत्म निर्भर और समृद्ध बनाने का संकल्प है।

–डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

कृषि में प्लास्टिक के उपयोग का मृदा एवं पर्यावरण पर प्रभाव

शोभन देबनाथ, आशाराम, सुशील कुमार, अशोक यादव, सुकुमार तारिया, बद्रे आलम, नरेश कुमार, राजेन्द्र प्रसाद एवं ए. अरूणाचलम

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

1950 के दशक में अपनी शुरुआत करने के बाद से प्लास्टिक उद्योग में काफी वृद्धि देखी गई है, जो आज हमारे समाज के सबसे बड़े और आर्थिक रूप से सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक बन गया है। इस विस्तार का श्रेय प्लास्टिक की अनुकूल विशेषताओं जैसे स्थायित्व, लचीलापन, हल्कापन, लागत–प्रभावशीलता और प्लास्टिक बाजार के निरंतर विस्तार को दिया जाता है। इसके कई लाभों के बावजूद, शोधकर्ताओं के बीच प्लास्टिक के पर्यावरणीय परिणामों के बारे में चिंताएँ पैदा हुई हैं, जो मुख्य रूप से इसके जीवन चक्र के अंत में अपर्याप्त उपचार, पुनर्चक्रण के साथ–साथ पुनः प्रयोज्यता की कमी और माइक्रोप्लास्टिक के रूप में अपघटन की उच्च संभावना के कारण हैं। प्लास्टिक उत्पादन का वैश्विक स्तर 2022 में अभूतपूर्व रूप से 400 मिलियन टन तक पहुँच गया। वर्ष 2019 में, 353 मिलियन टन प्लास्टिक कचरे का उत्पादन हुआ, जिसमें से केवल 9.3% का पुनर्चक्रण किया गया, 19.1% को जला दिया गया, 22.5% का कुप्रबंधन किया गया और शेष 49.2% को या तो कचरा भराव क्षेत्र (लैंडफिल) में निपटाया गया या पर्यावरण में रिसाव कर दिया गया। एक से दो मिलियन टन प्लास्टिक कचरा सालाना हमारे महासागरों में प्रवेश करता है, जो वन्यजीवों और पारिस्थितिकी तंत्रों को प्रभावित करता है। वातावरण में प्लास्टिक की उपस्थिति, चाहे बड़े मलबे के रूप में हो या सूक्ष्म कणों (माइक्रोप्लास्टिक्स) के रूप में, एक गंभीर मुद्दे के रूप में वैश्विक मान्यता प्राप्त कर चुकी है। यह मानवजनित घटना हमारे ग्रह के लिए एक बड़ी चुनौती है और संभावित संलिप्तता और अंतर्ग्रहण के कारण जैव विविधता के लिए एक बड़ा खतरा है। प्लास्टिक उद्योग के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए इन चिंताओं को दूर करने के प्रयास महत्वपूर्ण हैं।

माइक्रोप्लास्टिक क्या है?

माइक्रोप्लास्टिक, जिसे 5 मिमी. से छोटे प्लास्टिक कणों के रूप में परिभाषित किया जाता है तथा स्थलीय, वायुमण्डल, और जलीय वातावरणों में मौजूद होते हैं, उन्हें प्राथमिक और द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक में वर्गीकृत किया जाता है। प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक सीधे प्राथमिक प्लास्टिक से निर्मित होते हैं और आमतौर पर साबुन, शैम्पू, टूथपेस्ट, सौंदर्य प्रसाधन, दवा, कपड़ा और एयर–ब्लास्टिंग तकनीक सहित विभिन्न उत्पादों में पाए जाते हैं। द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक फोटोडिग्रेडेशन, अपक्षय या जैविक गतिविधियों जैसी पर्यावरणीय प्रक्रियाओं के माध्यम से बड़े प्लास्टिक पदार्थों के क्षरण के परिणामस्वरूप होते हैं, जो ठोस अपशिष्ट संग्रह, परिवहन, लैंडफिलिंग और पॉलीटनल, सिलेज बेलिंग और प्लास्टिक मल्च जैसी कृषि प्रथाओं के दौरान होते हैं। ये छोटे प्लास्टिक कण जलीय, स्थलीय और वायुमंडलीय वातावरण में प्रवेश कर चुके हैं, जो दोनों वन्यजीवों और मनुष्यों के लिए एक बड़ा खतरा पैदा कर रहे हैं।

कृषि में माइक्रोप्लास्टिक के संभावित स्रोत

कृषि में प्लास्टिक अपशिष्ट एक बड़ी समस्या है। हाल के शोधकर्ताओं ने पिछले 10 वर्षों में प्लास्टिक फिल्म की खपत में उल्लेखनीय वृद्धि पाई है, जिसमें एशिया में 70% और यूरोप में 16% की हिस्सेदारी है। पॉलीप्रोपाइलीन, एथिलीन–विनाइल एसीटेट, पॉली–मिथाइल–मेथैक्रिलेट, पॉलीविनाइल क्लोराइड, पॉलीओलेफिन, पॉलीएथीन, कॉपोलीमर और पॉलीकार्बोनेट जैसे प्लास्टिक पॉलीमेरिक यौगिकों का बागवानी में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है, जिसमें ग्रीनहाउस निर्माण से लेकर पैकेजिंग सामग्री तक के अनुप्रयोग शामिल हैं।

1. मल्चिंग सामग्री के रूप में प्लास्टिक

प्लास्टिक मल्चिंग एक व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली कृषि तकनीक है जिसमें फसलों को बचाने, खरपतवारों को दबाने और अंकुरों और टहनियों की सुरक्षा के लिए प्लास्टिक फिल्मों का उपयोग किया जाता है। इस विधि के कई आर्थिक लाभ हैं, जैसे फसल उत्पादन और बेहतर गुणवत्ता में वृद्धि, मिट्टी के कटाव में बाधा, और कीटों और खरपतवारों का भार कम होना। हालाँकि, इसके लाभों के बावजूद, प्लास्टिक मल्च कुछ सीमाएँ भी लगाता है। ये मल्च आम तौर पर पॉलीइथिलीन से बने होते हैं और मिट्टी में प्रभावी रूप से विघटित नहीं होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्लास्टिक के अवशेष निकल सकते हैं। इससे उनका दोबारा इस्तेमाल करना मुश्किल हो जाता है। प्लास्टिक फिल्म मल्च के विघटन से संभावित रूप से माइक्रोप्लास्टिक जैसे पर्यावरण प्रदूषक निकल सकते हैं, जिससे कृषि पद्धतियों में इस्तेमाल किए जाने वाले प्लास्टिक मल्च से जुड़े सफेद प्रदूषण की धारणा बन सकती है। ये माइक्रोप्लास्टिक खेती के दौरान मिट्टी की सतह में शामिल हो जाते हैं और लंबे समय तक मिट्टी की प्रणाली में बने रहते हैं और मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं। प्लास्टिक का मलबा अपवाह के माध्यम से लंबी दूरी तय कर सकता है और अंततः जलीय पारिस्थितिकी तंत्र तक पहुँच सकता है, जो आखिर तक समुद्र में जाता है। कम घनत्व वाली पॉलीइथिलीन मल्चिंग के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला बहुलक है, जिसकी मोटाई 12 से 80 माइक्रोन होती है। इसका उपयोगी आधा–जीवनकाल (half-life) 2 से 4 महीने का होता है। कुछ मामलों में, यह हर फसल के मौसम के बाद मल्च को हटाने से जुड़ी लागतों को कम करने के लिए फोटो या बायोडिग्रेडेबल हो सकता है। ज्यादातर मामलों में, प्लास्टिक का कचरा ऊपरी मिट्टी (0–20 सेमी.) में रहता है, जिससे 300 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक अवशेष जमा हो जाते हैं।

2. सोलराइजेशन फिल्म

सोलराइजेशन फिल्म विभिन्न मल्चिंग तकनीक में एक विकल्प प्रदान करती हैं। सोलराइजेशन में नम मिट्टी पर प्लास्टिक फिल्मों का प्रयोग शामिल है, जिसे गर्म महीनों के दौरान 4–5 सप्ताह तक सूरज की रोशनी में रखा जाता है। हाइड्रोथर्मल विधि तापमान बढ़ाकर मिट्टी को कीटाणुरहित करती है, जिससे पिछले फसल चक्रों से पौधों के रोगजनकों को खत्म किया जाता है। अलग–अलग गहराई पर मिट्टी के तापमान को बढ़ाकर, सोलराइजेशन फिल्में हानिकारक पौधों के रोगजनकों को दबाने में योगदान देती हैं। हालाँकि, मिट्टी की संरचना को प्रभावित करने और कुछ लाभकारी मिट्टी के जीवों को कम करने के अलावा, सोलराइजेशन फिल्म उच्च मात्रा में प्लास्टिक कचरा पैदा करती है, जिससे कृषि मिट्टी दूषित हो जाती है। इसके अलावा, इस तकनीक से मिट्टी का तापमान बढ़ सकता है, जो बदले में प्लास्टिक एडिटिव्स के निकलने का कारण बन सकता है और मिट्टी में कीटनाशक व्यवहार को बदल सकता है।

3. पॉलीहाउस और पॉलीटनल आच्छादन

पॉलीहाउस पौधों की खेती के लिए स्थायी संरचनाओं के रूप में काम करते हैं, जो पौधों के उपयुक्त विकास के लिए आवश्यक विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं। ये संरचनाएँ मुख्य रूप से प्लास्टिक की फिल्मों से ढकी होती हैं जो सौर विकिरण की विशिष्ट तरंग दैर्ध्य के संचरण को अनुमति देती हैं। हालाँकि, पॉलीहाउस में प्लास्टिक आच्छादन के उपयोग से प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पन्न होता है, जिसे भस्मीकरण, पुनर्चक्रण या सबसे खराब स्थिति में भराव क्षेत्र (लैंडफिल) में निपटान के माध्यम से प्रबंधित किया जा सकता है। पॉलीइथिलीन, एथिल एसीटेट और पॉलीविनाइल क्लोराइड (पीवीसी) जैसे तीन मुख्य पॉलिमर मुख्य रूप से पॉलीहाउस निर्माण के लिए उपयोग किए जाते हैं। पॉलीविनाइल क्लोराइड का आधा–जीवनकाल लगभग 6 से 45 महीने का होता है। नतीजतन, इन पॉलिमर के उपयोग से प्लास्टिक अवशेषों का उत्पादन होता है, पॉलीहाउस में लगभग 2,500 किलोग्राम प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर प्लास्टिक अवशेष उत्पन्न होता हैं और पॉलीटनल में लगभग 200 किलोग्राम प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पन्न होता है।

4. सीवेज स्लज

अपशिष्ट जल उपचार के दौरान उत्पादित सीवेज स्लज (मैला कीचड़) का उपयोग कृषि भूमि में मिट्टी सुधार के रूप में किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवर्ष भारी मात्रा में माइक्रोप्लास्टिक निकलता है। शोध के अनुसार, दुनिया भर में स्लज में माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा >1,000 कण प्रति किलोग्राम से लेकर 301,400 कण प्रति किलोग्राम तक होती है। सीवेज स्लज में माइक्रोप्लास्टिक मुख्य रूप से उद्योग अनुप्रयोगों और धुलाई गतिविधि से प्राप्त होते हैं। सीवेज स्लज से उपचारित कृषि मिट्टी में माइक्रोफाइबर और माइक्रोबीड्स सबसे आम माइक्रोप्लास्टिक हैं। स्लज में माइक्रोप्लास्टिक का

चित्र 1: कृषि में प्लास्टिक के विभिन्न उपयोग।(क) मृदा मल्चिंग, (ख) मृदा सौरीकरण, (ग) पॉलीटनल, (घ) पॉलीहाउस, (ङ) विघटित प्लास्टिक मल्च, (च) विघटित प्लास्टिक कण

संचय मानव और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा करता है। जब स्लज को भूमि पर डाला जाता है, तो माइक्रोप्लास्टिक मिट्टी में घुल सकता है, जो संभावित रूप से मिट्टी के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है और फसलों को दूषित करता है। इसके अलावा, स्लज को जलाया जा सकता है, जिससे माइक्रोप्लास्टिक वातावरण में निकल सकता है। सीवेज स्लज में माइक्रोप्लास्टिक से जुड़े संभावित जोखिमों पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

मिट्टी के गुणों पर प्लास्टिक कचरे और माइक्रोप्लास्टिक का प्रभाव

ऊपरी मिट्टी और उप–मिट्टी पर प्लास्टिक का कचरा मिट्टी के भौतिक–रासायनिक और जैविक गुणों को इस प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है:

- पानी के रिसाव को रोकता है, नमी की उपलब्धता को कम करता है, पोषक तत्वों की गतिशीलता को प्रभावित करता है और मिट्टी के द्वितीयक लवणीकरण का कारण बनता है।
- मिट्टी के पीएच में कमी:– प्लास्टिक की उपस्थिति के कारण नाइट्रोजन का अत्यधिक खनिजीकरण होता है जिससे मिट्टी का पीएच कम हो जाता है।
- मिट्टी के घनत्व, समग्र स्थिरता, छिद्रण और वातन में परिवर्तन।
- बीज के उभरने में बाधा डालता है और पौधों की जड़ों की वृद्धि को प्रभावित करता है।
- प्लास्टिक का मलबा मिट्टी में विभिन्न योजक छोड़ सकता है, जिसमें थलेट एस्टर, एल्काइलफेनोल, फ्यूरान, डाइऑक्सिन, ब्रोमिनेटेड फ्लेम रिटार्डेंट, एंटीऑक्सीडेंट रसायन और धातु शामिल हैं जो मिट्टी को दूषित करते हैं, जो संभावित रूप से मिट्टी के जीवों और व्यापक पारिस्थितिकी तंत्र दोनों के लिए जोखिम पैदा करते हैं।
- केंचुआ और कोलेम्बोलन आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

निष्कर्ष

कुछ लोग तर्क देते हैं कि कृषि में पॉलिमर–आधारित सामग्रियों का उपयोग करने के लाभ नुकसान से अधिक हैं, परन्तु अभी भी माइक्रोप्लास्टिक कैसे उत्पन्न होते हैं और स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों पर उनके पर्यावरणीय प्रभाव की समझ में महत्वपूर्ण कमी हैं। टिकाऊ कृषि के लिए प्लास्टिक सामग्री के उपयोग और निपटान को नियंत्रित करने वाली नीतियों में बदलावों को संबोधित करना महत्वपूर्ण है। ग्लोबल वार्मिंग और मिट्टी की विशेषताओं पर विचार करते हुए, कृषि में प्लास्टिक पॉलिमर की बायोडिग्रेडेशन दर की जाँच करने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, माइक्रोप्लास्टिक, मिट्टी के गुणों और प्लास्टिक पॉलिमर और मिट्टी के बायोटा पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव के बीच की संलिप्तता को समझना आवश्यक है। कृषि मिट्टी में कृषि रसायनों पर प्लास्टिक मलबे और माइक्रोप्लास्टिक के प्रभावों का विश्लेषण, मुख्य रूप से सीवेज कीचड़ का उपयोग करते समय, और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि उपयोग के लिए पूरी तरह से बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक विकसित करने के लिए मिट्टी के जीवों और गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव के बिना उनके सुरक्षित उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए विष विज्ञान संबंधी परख की आवश्यकता होती है।

कृषिवानिकी : लचीली और टिकाऊ कृषि का भविष्य

मनीष चंद्र, नरेश कुमार, आशाराम, शिवम घन्घौरिया, संजना मौर्या, आराधना सिंह, अरूण कुमार हाण्डा, ए. अरूणाचलम एवं आर.पी. द्विवेदी
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

दुनिया जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा की दोहरी चुनौतियों से जूझ रही है, कृषि क्षेत्र को ऐसी प्रथाओं को विकसित करने के लिए भारी दबाव का सामना करना पड़ रहा है जो टिकाऊ और लचीली दोनों हों। कृषि को 2050 तक विश्व के 9 अरब लोगों की आबादी को भोजन उपलब्ध कराने के साथ–साथ हानिकारक पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों से बचाने की अभूतपूर्व चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इस चुनौती से निपटने का एक प्रयास जैविक खेती रहा है, जिसके परिणाम आम तौर पर सकारात्मक रहे हैं। हालाँकि, कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जैविक पैदावार पारंपरिक कृषि से पीछे है, और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और पोषक तत्वों का क्षरण कार्य कुछ हद तक समस्याग्रस्त बनी हुई है। प्रकृति के अनुरूप करने वाली प्रणालियों को लागू करके, कृषिवानिकी कई पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रदान करती है, जो इसे टिकाऊ कृषि के भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति बनाती है। इस लेख में, हम वर्तमान जैविक और पारंपरिक कृषि प्रणालियों को रेखांकित करते हुए सुझाव देते हैं कि कृषिवानिकी, जो फसलों या पशुधन के साथ पेड़ों, झाड़ियों एवं पशुधन का संयोजन है, टिकाऊ कृषि में अगला कदम हो सकता हैं। हम कृषिवानिकी की सामान्य प्रथाओं और उत्पादों के साथ–साथ लाभकारी पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों का भी उल्लेख करते हैं। हम कृषिवानिकी में आने वाली बाधाओं को दूर करते हैं और नीतियों में बदलाव तथा किसानों द्वारा इसे अपनाने में वृद्धि के लिए संभावित विकल्पों का पता लगाते हैं। हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पर्यावरणीय क्षरण को सीमित करने के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा में योगदान देने के लिए कृषिवानिकी सर्वोत्तम भूमि उपयोग रणनीतियों में से एक है।

परिचय

पृथ्वी की लगभग 38 प्रतिशत भूमि का उपयोग खाद्यान्न उगाने के लिए किया जाता है, जिससे कृषि सबसे बड़ा मानवजनित भूमि उपयोग बन जाता है। कृषि भूमि में विस्तार वनों की कटाई और मूल निवास स्थान के नुकसान का प्रमुख कारण है एक ऐसी स्थिति जिसके कारण पक्षियों, कीड़े और स्तनधारियों सहित वन्य जीवों में गिरावट आई है, जिनमें से कुछ अब लुप्तप्राय प्रजातियाँ मानी जाती हैं। उर्वरक से पोषक तत्वों के निक्षालन के परिणामस्वरूप जलमार्गों का सुपोषण होता है, जिससे दुनिया भर के जल निकायों में ऑक्सीजन की कमी वाले ''मृत क्षेत्र'' बन जाते हैं। जलवायु परिवर्तन में शामिल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कृषि का सबसे बड़ा मानव–जनित योगदान है। पर्यावरणीय और मानवीय प्रभावों के अलावा, हमारी कृषि प्रणालियों के लचीलेपन पर चिंताजनक प्रभाव भी हैं। दुनिया भर में, केवल पंद्रह फसलें 90 प्रतिशत खाद्य कैलोरी का उत्पादन करती हैं, जिसमें अकेले गेहूं, चावल और मक्का 60 प्रतिशत आपूर्ति करते हैं। इनमें से अधिकांश फसलें वार्षिक मोनोकल्चर के विशाल भू–भाग में उगाई जाती हैं, जिनमें कीट और बीमारी के फैलने का खतरा अधिक होता है। 1845–1850 में आयरलैंड का आलू की फसल, जिस पर आयरलैंड की एक तिहाई आबादी भोजन के लिए निर्भर थी, अकाल के कारण क्षति हुई। इस अकाल ने दस लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हो गयी। किसी भी कृषि प्रणाली की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए आवश्यक है कि मिट्टी उत्पादक बनी रहे और भविष्य में आवश्यक निवेश उपलब्ध रहें। हालाँकि, कई कृषि परिदृश्यों में मिट्टी के निर्माण की तुलना में मिट्टी का नुकसान अधिक तेजी से होता है और जो मिट्टी बची रहती है उसकी गुणवत्ता में गिरावट आती है। तरल ईंधन और उर्वरक के रूप में जीवाश्म ईंधन पर भारी निर्भरता कृषि को ईंधन की लागत और आपूर्ति में उतार–चढ़ाव का विषय बनाती है। उर्वरक

पोषक तत्वों का एक तरफा प्रवाह एक साथ प्रदूषण और कमी का कारण बनता है। फॉस्फोरस एक उदाहरण है। इस आवश्यक पौधे पोषक तत्व का खनन और प्रसंस्करण तेजी से महँगा होने की उम्मीद है, जबकि, साथ ही, फॉस्फोरस अपवाह जल निकायों के सुपोषण का कारण बनता है ।

भविष्य में, कृषि प्रणालियों को भी बदलती जलवायु के अनुरूप ढलना होगा, जिससे बीमारियों और कीटों के प्रकोप में वृद्धि, सूखे और बाढ़ जैसी मौसम की घटनाओं के आने की आशंका होगी। विकासशील देशों में परिवर्तन अधिक गंभीर होंगे, जहाँ गरीबी लोगों की अनुकूलन क्षमता में बाधा डालती है।

परिवर्तनकारी समाधान के रूप में कृषिवानिकी

हमारी खाद्य प्रणाली के लिए एक बहुक्रियाशील दृष्टिकोण कृषिवानिकी है, जिसमें फसलों या पशुधन के साथ पेड़ों और झाड़ियों का जानबूझकर संयोजन किया जाता है। कृषिवानिकी को लगभग आधी सदी से एक स्थायी कृषि अभ्यास के रूप में मान्यता दी गई है और पेड़ों को कृषि परिदृश्य में एकीकृत करने की अवधारणा उतनी ही पुरानी है जितनी भूमि पर खेती करने की प्रथा। कृषिवानिकी के लाभकारी परिणामों में पोषक तत्वों और कीटनाशकों के प्रवाह में कमी, कार्बन पृथक्करण, मिट्टी की गुणवत्ता में वृद्धि, कटाव नियंत्रण, वन्यजीव निवास में सुधार, जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कमी और अनिश्चित कृषि भविष्य की स्थिति में लचीलापन बढ़ाना शामिल है। संक्षेप में, किसी परिदृश्य में पेड़ों और अन्य बारहमासी पौधों को जोड़ने से कृषि के कई हानिकारक प्रभावों को कम करने में मदद मिल सकती है। तथ्य यह है कि यह एक साथ आर्थिक, पारिस्थितिक और सांस्कृतिक लाभ प्रदान कर सकता है, जिससे विकासशील और विकसित दुनिया दोनों में भूमि उपयोग रणनीति के रूप में कृषिवानिकी को काफी संभावनाएं मिलती हैं।

कृषिवानिकी प्रणालियों का वर्गीकरण

1. कृषिवानिकी प्रणाली

कृषिवानिकी प्रणाली,कृषि उत्पादन और वन खेती के लिए भूमि के एक साथ या क्रमिक रूप से उपयोग को संदर्भित करता है कृषिवानिकी प्रणालियों को ऐसी कृषि प्रणालियों के रूप में परिभाषित किया है जहाँ पेड़ों को फसलों के साथ एकीकृत किया जाता है। उन्होंने कृषि प्रणाली के तहत कई प्रथाओं को सूचीबद्ध किया जैसे कि बेहतर परती, तुंग्या, गली फसल (हेजरो इंटरक्रॉपिंग), बहुपरत वृक्ष उद्यान, फसल भूमि पर बहुउद्देशीय पेड़, वृक्षारोपण फसल संयोजन, होमगार्डन, मिट्टी संरक्षण और पुनर्ग्रहण में पेड़, शेल्टरबेल्ट और विंडब्रेक और ईंधन लकड़ी का उत्पादन, वन खेती, तटवर्ती बफर स्ट्रिप्स भी कृषि सिल्विकल्चरल प्रणाली में शामिल हैं। चिनार के पेड़ (पॉपुलस डेल्टोइड्स) आधारित कृषिवानिकी प्रणाली पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, हरियाणा, पंजाब और जम्मू और कश्मीर में एक प्रमुख कृषि सिल्विकल्चरल प्रणाली है। गेहूँ, सरसों, गन्ना और धान चिनार आधारित कृषिवानिकी में किसानों द्वारा उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं।

2. चरागाह प्रणाली

चरागाह प्रणाली भूमि प्रबंधन प्रणाली को संदर्भित करती है जिसमें लकड़ी और अन्य वृक्ष उत्पादों के उत्पादन के लिए पेड़ों का प्रबंधन किया जाता है, और पशुधन को वनस्थल के अंदर चरने की अनुमति दी जाती है। सरल शब्दों में, यह चरागाहों और जानवरों के साथ पेड़ों का एक संयोजन है। सिल्वोपास्टोरल प्रणाली में पशुधन फार्मों पर पेड़ों का एकीकरण और जंगलों (जैसे वन चराई) और बगीचों में पशुधन का उपयोग दोनों शामिल हैं। इन प्रणालियों में विभिन्न प्रथाएँ शामिल हैं जैसे कि रेंजलैंड या चरागाहों पर पेड़, प्रोटीन बैंक और चरागाहों और जानवरों के साथ वृक्षारोपण फसलें। एस्पिनलोफ चिली और ईरान में गैलाजर्स सिल्वोपास्टोरल प्रणाली के प्रमुख उदाहरण हैं।

3. कृषि–चरागाह प्रणाली

यह भूमि के एक ही टुकड़े में फसलों, पेड़ों और पशुधन के संयोजन को संदर्भित करता है। कृषि–चरागाह प्रणाली में विभिन्न प्रथाओं को शामिल किया गया है जैसे कि होमस्टेड के आसपास पेड़–फसल–पशुधन मिश्रण (जानवरों को शामिल करने वाले होमगार्डन), और बहुउद्देशीय वुडी हेडगेरो (ब्राउज, गीली घास, हरी खाद और मिट्टी संरक्षण के लिए वुडी हेडगेरो)। देहेसा कृषिवानिकी प्रणाली एक एग्रीसिल्वोपास्टोरल प्रणाली है जो दक्षिण–पश्चिमी इबेरियन प्रायद्वीप में प्रमुख है। देहेसा की कृषिवानिकी प्रणालियों की विशेषता वार्षिक फसल भूमि, चरागाह भूमि, झाड़ियाँ और वुडलैंड हैं जिनमें मुख्य रूप से भूमध्य सागरीय सदाबहार होल्म ओक और कॉर्क ओक और कुछ हद तक पर्णपाती ओक शामिल हैं। पुर्तगाल में, देहेसा प्रणालियों को ''मोंटाडोस'' के नाम से जाना जाता है।

4. अन्य प्रणालियाँ

इसके अतिरिक्त, कुछ प्रणालियाँ हैं जो कृषिवानिकी परिभाषा के दायरे में आती हैं। कृषिवानिकी के इन रूपों को शामिल करने के लिए बेहतर शब्द के अभाव में, उन्हें 'अन्य' के तहत एक साथ समूहीकृत किया जा सकता है। अन्य कृषिवानिकी प्रणालियों के उदाहरणों में पेड़ों के साथ मधुमक्खी पालन, बहुउद्देशीय पेड़ों और झाड़ियों से युक्त जलीय कृषि शामिल हैं। पेड़ प्रणाली के साथ मधुमक्खी पालन के संयोजन का मुख्य उद्देश्य आजीविका के

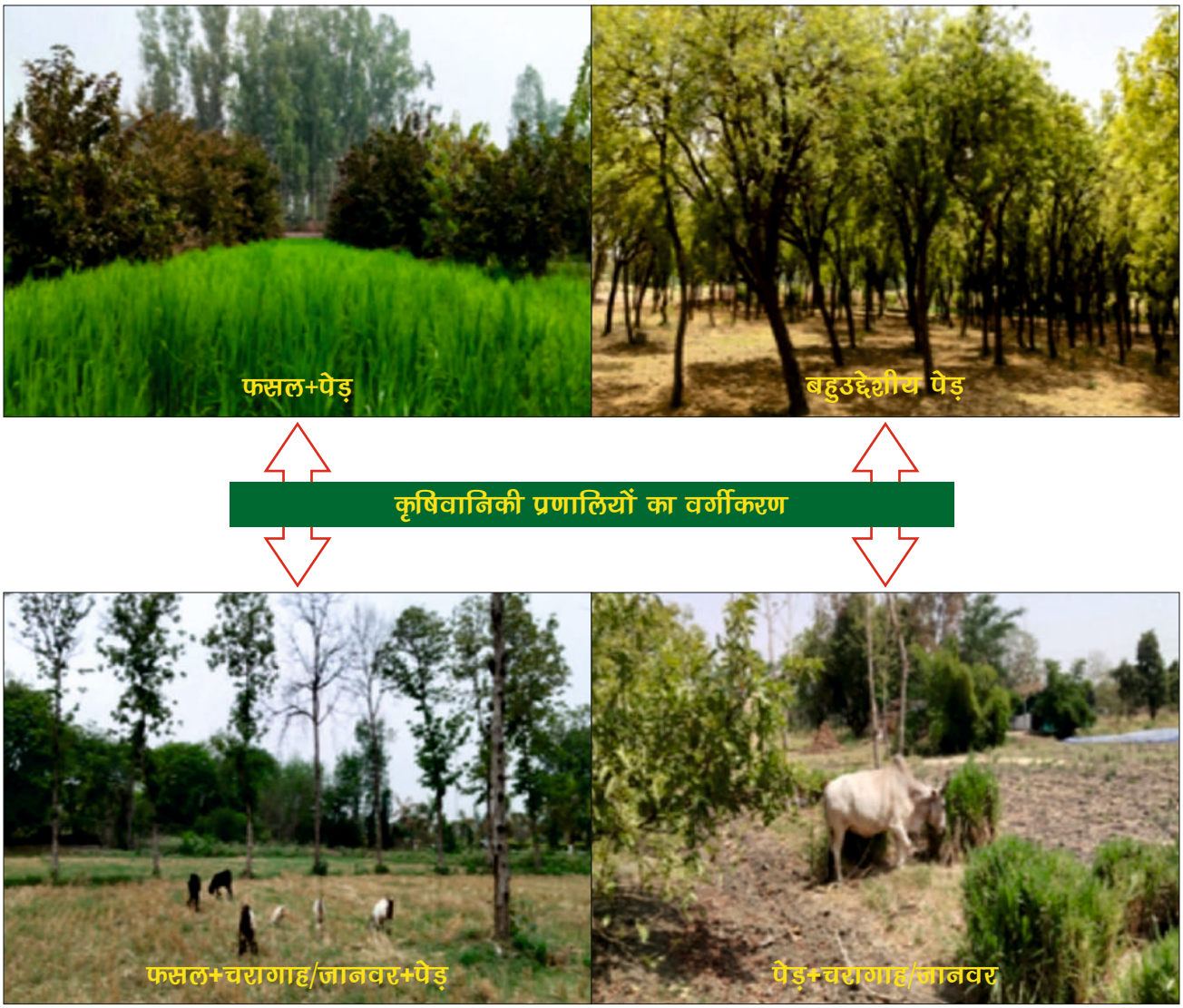

निर्वाह के लिए शहद और अन्य वृक्ष उत्पादों का उत्पादन करना है। बहुउद्देशीय पेड़ों में तेजी से बढ़ने वाली वृक्ष प्रजातियों को आम तौर पर वृक्षारोपण के लिए पसंद किया जाता है। बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियाँ दवा, भोजन, चारा, ईंधन और लकड़ी जैसी कई आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। कुछ सामान्य बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियाँ हैं मोरिंगो ओलीफेरा, अजादिरैक्टे इंडिका, मधुका इंडिका, बबूल निलोटिका, मैंगीफेरा इंडिका और कोकोसनुसीफेरा। जलीय कृषि को जल निकाय (जैसे मछली के तालाब) के किनारे वृक्षारोपण के साथ एकीकृत किया जा सकता है। जलीय कृषि के साथ वृक्षारोपण का एकीकरण आय और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार के लिए फायदेमंद है।

निष्कर्ष:

भविष्य में दुनिया के लिए टिकाऊ और लचीली कृषि की ओर कृषिवानिकी। बढ़ती वैश्विक आबादी को पोषण प्रदान करने की चुनौती को प्रभावी ढंग से और स्थायी रूप से संबोधित करने के लिए कई रणनीतियों का सुझाव दिया गया है। व्यापक तरीकों के कार्यान्वयन में विभिन्न दृष्टिकोण शामिल हैं, जैसे वनों की कटाई की रोकथाम के माध्यम से कृषि भूमि के विस्तार पर प्रतिबंध है। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के संचालन का अनुकरण करके, कृषि प्रणालियों में उनकी स्थिरता और लचीलापन बढ़ाने की क्षमता है। कृषिवानिकी में टिकाऊ कृषि के क्षेत्र में एक प्रगतिशील दृष्टिकोण के रूप में काम करने की क्षमता है। सतत कृषिवानिकी प्रणालियों में किसानों को बढ़ती उपज, पर्यावरणीय लाभ और पशु कल्याण जैसे कई लाभों के लिए प्रणाली के विभिन्न घटकों के बीच होने वाली बातचीत का उपयोग करने में मदद करने की क्षमता है। इसलिए, विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए पारिस्थितिकी तंत्र बहाली, भूमि क्षरण तटस्थता और जलवायु परिवर्तन शमन लक्ष्यों के उद्देश्य से नीतियों और कार्यक्रमों में कृषिवानिकी को प्रकृति–आधारित समाधान के रूप में उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें विभिन्न प्रांतों के लोग आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह भारत में सर्वत्र समझी जाती है, क्योंकि इसके व्याकरण भारत को अधिकांश भाषाओं के समान है और इसका शब्दकोश सब की सम्पत्ति है। भारत की सच्ची आत्मा का ज्ञान हिन्दी द्वारा ही हो सकता है।

– जोर्ज ग्रिजसन (ब्रिटेन)

* * *

शब्द संख्या की दृष्टि से हिन्दी संसार की सबसे समृद्ध भाषा मानी जाती है। जहाँ अंग्रेजी के मूल शब्द 10 हजार है वहाँ हिन्दी के मूल शब्द ढाई लाख से भी अधिक है।

* * *

प्राद्योगिकी हो या विज्ञान, यह सब हिन्दी में आसान।

सहजन की वैज्ञानिक खेती: हरित सोना, सेहत का खजाना

संजना मौर्या, आराधना सिंह, अनिरूद्ध समाधिया, मनीष चन्द्र, शिवम घन्घोरिया, रितिका मौर्या, नरेश कुमार, आशा राम, हृदयेश अनुरागी एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

सहजन किसानों के लिए एक बहुवार्षिक सब्जी देनेवाला पौधा है। बाजार में सहजन का फूल, छोटी–नन्ही कोमल फली से लेकर बड़ी फली भी ऊँचे दामों में बिकती है। दक्षिण भारतीय लोग सहजन के फूल, फल, पत्ती का उपयोग अपने विभिन्न प्रकार के व्यंजनों में साल भर करते हैं। भारत ही नहीं बल्कि फिलीपिंस, हवाई, मैक्सिको, श्रीलंका, मलेशिया आदि देशों में सहजन विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता है। सहजन में औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में हैं और इसके पौधे के सभी भागों का उपयोग विभिन्न कार्यो में किया जाता है। सहजन भारतीय मूल का मोरिंगेसी परिवार का सदस्य है। इसका वनस्पतिक नाम मोरिंगा ओलीफेरा है। सामान्यतः यह एक बहुवार्षिक, कमजोर तना और छोटी–छोटी पत्तियों वाला लगभग दस मीटर से भी उंचा पौधा है। यह खराब जमीन पर भी बिना सिंचाई के साल भर हरा–भरा और तेजी से बढता है। हाल के दिनों में सहजन का साल में दो बार फलने वाला वार्षिक प्रभेद तैयार किया गया है, जो न सिर्फ उत्पादन ज्यादा देता है बल्कि यह प्रोटीन, लवण, लोहा, विटामिन–बी और विटामिन–सी से भरपूर है।

जलवायु

सामान्यताः 25^{0}–30^{0} सेल्सियस के औसत तापमान पर सहजन का पौधा हरा–भरा व काफी फैलता है। यह ठंड को भी सह सकता है परन्तु पाला से पौधे को नुकसान होता है। फूल आते समय 40^{0} सेल्सियस से ज्यादा तापमान पर फूल झड़ने लगता है। कम या ज्यादा वर्षा से पौधे को कोई नुकसान नहीं होता है। यह विभिन्न पारिस्थितिक अवस्थाओं में उगने वाला एक ढीठ स्वभाव का पौधा है।

मिट्टी

सभी प्रकार की मिट्टियों में सहजन की खेती की जा सकती है। यहाँ तक कि बेकार, बंजर और कम उर्वरता वाली भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है, परन्तु व्यवसायिक खेती के लिए 6–7 पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी बेहतर होती है।

सहजन की किस्में

सहजन की किस्मों में पी.के.एम.1, पी.के.एम.2, कोयंबटूर 1 तथा कोयंबटूर 2 प्रमुख हैं। इसका पौधा 4–6 मीटर ऊँचा होता है तथा 90–100 दिनों में ही इसमें फूल आने लगता है। जरूरत के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में फल की तुड़ाई करते रहते हैं। पौधे लगाने के लगभग 160–170 दिनों में फल तैयार हो जाता है। साल में एक पौधा से 200–400 फली मिलती है। यह काफी गूदेदार होता है तथा पकाने के बाद इसका 70 प्रतिशत भाग खाने योग्य होता है। इसके पौध से 4–5 वर्षों तक पेड़ी फसल लिया जा सकता है। प्रत्येक वर्ष फसल लेने के बाद पौधे को जमीन से एक मीटर छोड़कर काटना आवश्यक है।

खेत की तैयारी

खेत को अच्छी तरह खरपतवार से साफ़–सफाई करके 2.5 × 2.5 मीटर^{2} की दूरी पर, 45 × 45 × 45 सेंमी.^{3} आकार का गड्ढा बनाते हैं। गड्ढे में मिट्टी के साथ 10 किलोग्राम सड़ा हुआ गोबर का खाद मिलाकर गड्ढे को भर देते हैं। इससे खेत पौध के रोपनी हेतु तैयार हो जाता है।

प्रवर्द्धन

सहजन में बीज और शाखा के टुकड़ों, दोनों से ही प्रवर्द्धन होता है। अच्छी फलन और साल में दो बार फलन के लिए बीज से प्रवर्द्धन करना अच्छा होता है। एक हेक्टेयर में खेती करने के लिए 500 ग्राम बीज पर्याप्त है। बीज को सीधे तैयार गड्ढों में या फिर पॉलीथीन बैग में तैयार करके लगाया जा सकता है। पॉलीथीन बैग में पौध एक महीने में लगाने योग्य तैयार हो जाता है।

शस्य प्रबंधन

एक महीने के तैयार पौध को पहले से तैयार किए गये गड्ढों में जुलाई–सितम्बर माह तक रोपनी कर दें। पौध जब लगभग 75 सेंमी. का हो जाये तो पौध के ऊपरी भाग की खोटनी कर दें, इससे बगल से शाखाओं को निकलने में आसानी होगी। रोपनी के तीन महीने के बाद 100 ग्राम यूरिया + 100 ग्राम सुपर फास्फेट + 50 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढा की दर से डालें तथा इसके तीन महीने बाद 100 ग्राम यूरिया प्रति गड्ढा का पुनः डालें। सहजन पर किए गए शोध से यह पाया गया कि मात्र 15 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति गड्ढा तथा एजोसपिरिलम और पी.एस.बी. (5 किलोग्राम/हेक्टेयर) के प्रयोग से सहजन की खेती, उपज में बिना किसी ह्रास के किया जा सकता है।

सिंचाई

अच्छे उत्पादन के लिए सिंचाई करना लाभदायक है। गड्ढों में बीज से अगर प्रबर्द्धन किया गया है तो बीज के अंकुरण और अच्छी तरह से स्थापन तक नमी का बना रहना आवश्यक है। किसी भी अतिरिक्त पानी से जड़ों में सड़न की समस्या हो सकती है। इसलिए, पौधे के स्थापित होने तक पहले दो महीनों के लिए केवल सीमित मात्रा में मिट्टी की नमी आवश्यक होती है। इसके बाद, अपनी मिट्टी के प्रकार और मौजूदा जलवायु के आधार पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। फूल लगने के समय खेत ज्यादा सूखा या ज्यादा गीला रहने पर दोनों ही अवस्था में फूल के झड़ने की समस्या होती है।

पौधा संरक्षण

सहजन पर सबसे ज्यादा आक्रमण भुआ पिल्लू नामक कीट से है इसे अगर नियंत्रित नहीं किया जाय तो यह सम्पूर्ण पौधे की पत्तियों को खा जाता है तथा आसपास में भी फ़ैल जाता है। नवजात अवस्था में यह कीट समूह में एक स्थान पर रहता हैं, बाद में भोजन की तलाश में यह सम्पूर्ण पौधों पर बिखर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए सरल और देशी उपाय यह है कि कीट के नवजात अवस्था में सर्फ को घोलकर अगर इसके ऊपर डाल दिया जाय तो सभी कीट मर जाते हैं। वयस्क अवस्था में जब यह सम्पूर्ण पौधों पर फ़ैल जाता है तो डाइक्लोरोवास (नूभान) 0.5 मिली. एक लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करने से तत्काल लाभ मिलता है। सहजन के दूसरे कीटों में कभी–कभी फल पर फल मक्खी का आक्रमण होता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु भी डाइक्लोरोवास (नूभान) 0.5 मिली. दवा एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर कीट का नियंत्रण होता है।

फल की तुड़ाई एवं उपज

सहजन की सामान्य किस्मों की तुड़ाई सामान्यतः फरवरी–मार्च और सितम्बर–अक्टूबर के दौरान होती है। साल भर फलने वाली किस्मों से दूसरे महीनों में भी उत्पादन लिया जा सकता है। प्रत्येक पौधे से लगभग 200–400 फलियाँ प्रति वर्ष प्राप्त हो सकती हैं। सहजन के फली में रेशा आने से पहले ही तुड़ाई करने से बाजार में माँग बनी रहती है और इससे मुनाफा भी ज्यादा मिलता है।

कृषिवानिकी में सहजन की भूमिका

- **मिट्टी की उर्वरता बढ़ानाः** सहजन के पत्ते जैविक खाद कें रुप में उपयोग किए जा सकते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है। यह पौधा नाइट्रोजन को स्थिर करने में मदद करता है, जिससे अन्य फसलों की वृद्धि में भी सहारा मिलता है।

- **जल संरक्षणः** सहजन की जड़ें मिट्टी में गहराई तक जाती हैं, जिससे जल संरक्षण में मदद मिलती है। यह मिट्टी के क्षरण को रोकता है और जल धारण क्षमता को बढ़ाता है।
- **पोषक तत्वों की आपूर्तिः** सहजन के पत्ते, फल, और बीज पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इनका उपयोग पशुओं के चारे और खाद्य पदार्थों के रूप में किया जा सकता है, जिससे पोषण सुरक्षा सुनिश्चित होती है।
- **फसल विविधताः** कृषिवानिकी में सहजन की उपस्थिति फसल विविधता को बढ़ावा देती है। यह अन्य फसलों के साथ सहजीवी संबंध बनाता है, जिससे कुल उत्पादन और आय में वृद्धि होती है।
- **जलवायु परिवर्तन से निपटनाः** सहजन सूखा प्रतिरोधी पौधा है, जो कठोर जलवायु परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है। इसका उपयोग जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए किया जा सकता है।

सहजन आधारित कृषिवानिकी

स्वास्थ्य लाभ

सहजन के पत्तों में प्रोटीन, विटामिन और खनिजों की भरपूर मात्रा होती है। यह विटामिन ए, सी, और ई के साथ–साथ कैल्शियम, पोटेशियम और प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है। सहजन के पत्ते विशेष रूप से एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होते हैं, जो शरीर को फ्री रेडिकल्स से बचाते हैं और इम्यून सिस्टम को मजबूत बनाते हैं।

- **एंटीऑक्सीडेंट गुणः** सहजन में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट्स शरीर की कोशिकाओं को फ्री रेडिकल्स से बचाते हैं, जिससे उम्र बढ़ने की प्रक्रिया धीमी हो जाती है और कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा कम होता है।
- **एंटी–इंफ्लेमेटरी गुणः** सहजन के पत्ते और बीज एंटी–इंफ्लेमेटरी गुणों से भरपूर होते हैं, जो शरीर में सूजन को कम करने में मदद करते हैं। यह गठिया और अन्य सूजन संबंधी बीमारियों में लाभकारी होता है।
- **शुगर स्तर नियंत्रणः** सहजन का उपयोग शुगर के स्तर को नियंत्रित करने में मदद कर सकता है, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए लाभकारी होता है।
- **हृदय स्वास्थ्यः** सहजन के पत्तों में पाए जाने वाले पोषक तत्व हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करते हैं, जिससे हृदय रोगों का खतरा कम होता है।

- **पाचन तंत्रः** सहजन पाचन तंत्र को सुधारता है और कब्ज जैसी समस्याओं से राहत दिलाता है। यह पेट की गैस, पेट दर्द और अपच में भी लाभकारी होता है।

सहजन के अन्य उपयोग

- **खाद्य पदार्थः** सहजन के पत्तों को सलाद, सूप और अन्य व्यंजनों में उपयोग किया जाता है। इसके बीजों का तेल भी खाना पकाने में उपयोगी होता है।
- **प्राकृतिक उर्वरकः** सहजन के पत्तों का उपयोग जैविक खेती में प्राकृतिक उर्वरक के रूप में किया जाता है।
- **कॉस्मेटिक्सः** सहजन के तेल का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों में किया जाता है, जो त्वचा को पोषण देता है और बालों को मजबूत बनाता है।

उपसंहार

सहजन एक बहुउपयोगी पौधा है जो कृषिवानिकी प्रणाली में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके पोषक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ इसे एक अनूठा पौधा बनाते हैं। इसे कृषि में शामिल कर किसान न केवल अपनी आय बढ़ा सकते हैं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और पोषण सुरक्षा को भी सुनिश्चित कर सकते हैं। सहजन का उपयोग कृषि में एक नई दिशा प्रदान करता है, जो सतत विकास और समृद्धि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

कृषिवानिकी के प्रचार एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु वैदिक पर्यावरण दिवस: हरियाली अमावस्या

आर.पी. द्विवेदी
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

भारत विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, जिसकी जनसंख्या 140 करोड़ के लगभग है। भारत देश में विभिन्न प्रकार के सामाजिक उत्सव मनाये जाते है जिनमें उत्तर भारत में मनाया जाने वाला हरियाली अमावस्या (श्रावणी अमावस्या) का त्यौहार पर्यावरण के संरक्षण के रूप मे मनाया जाता है। कृषिवानिकी का प्रचार एवं प्रसार करने में सामाजिक एवं धार्मिक त्योहारों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। सामाजिक त्योहारों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण एवं कृषिवानिकी का प्रसार जन–जन तक आसानी से पहुँचाया जा सकता हैं। आज के युग में विज्ञान एवं परम्परा को एक साथ लेकर समन्वयन करके पर्यावरण का संरक्षण एवं कृषिवानिकी का प्रचार एवं प्रसार सुगम हो सकेगा।

विक्रम संवत् 2081 श्रावण कृष्ण पक्ष की उदया तिथि अमावस्या जो सनातन में हरियाली अमावस्या के नाम से शिरोधार्य है। हरियाली अमावस्या (श्रावणी अमावस्या) को जहाँ विविध धार्मिक प्रयोजनों के लिए अतीव कल्याणकारी है। तो वहीं दूसरी ओर भारतीय पर्यावरण और प्रकृति संरक्षण दिवस के नाम से प्रसिद्ध है। हम सभी भारतीय हरियाली अमावस्या को ही पर्यावरण दिवस के रूप में आदिकाल से मनाते आ रहे हैं।

हरियाली अमावस्या का मुख्य उद्देश्य इस दिन पौध रोपड़ एवं प्रकृति के संरक्षण को प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता हैं। हरियाली अमावस्या जिसे श्रावण अमावस्या भी कहते है, भारतीय परम्परा में धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखती हैं। यह दिन पर्यावरण संरक्षण का प्रतीक है, यह दिन पर्यावरण की रक्षा और हरियाली को बढ़ावा देने के लिए आदर्श हैं। विशेष रूप से फलदार वृक्ष ईमारती वृक्ष, पीपल, बरगद, तुलसी और आम के पौधें लगाना लाभकारी माना जाता हैं। यह दिन पेड़ों पौधों की सेवा करने और नये पौधों लगाने का अवसर है ऐसा करने से गृह दोष एवं पितृ दोष दूर होता हैं। इस दिन पेड़–पौधों को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।

कृषिवानिकी का प्रचार एवं प्रसार करने में सामाजिक एवं धार्मिक त्योहारों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। सामाजिक त्योहारों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण एवं कृषिवानिकी का प्रसार जन–जन तक आसानी से पहुँचाया जा सकता हैं। अतः आज के युग में विज्ञान एवं परम्परा को एक साथ लेकर समन्वयन करके पर्यावरण का संरक्षण एवं कृषिवानिकी का प्रचार एवं प्रसार सुगम हो सकेगा।

आधुनिक मधुमक्खी पालन

अनिरूद्ध समाधिया, संजना मौर्या, आराधना सिंह, मनीष चन्द्र, शिवम घन्घोरिया, नरेश कुमार, आशा राम एवं ए. अरूणाचलम

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

परिचय

मधुमक्खी पालन कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें मधुमक्खियों को पालकर शहद, मोम, पराग और रॉयल जेली जैसे उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। इसके साथ ही, मधुमक्खियाँ परागण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो फसलों की पैदावार बढ़ाने में सहायक होती है। आधुनिक मधुमक्खी पालन तकनीकों का उपयोग करके किसान उच्च गुणवत्ता और मात्रा में शहद का उत्पादन कर सकते हैं। मधुमक्खी पालन पर्यावरण के अनुकूल है और कम लागत में अधिक लाभ देने वाला व्यवसाय है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ती है, बल्कि यह जैव विविधता को भी बनाए रखने में मदद करता है।

आधुनिक मधुमक्खी छत्ता एक विशिष्ट सिद्धांत पर आधारित है जिसे 'मूवेबल फ्रेम हाइव' कहा जाता है, और यह लकड़ी के बॉक्स से बना होता है। यह बॉक्स एकल या डबल दीवार वाला हो सकता है। एकल दीवार वाला बॉक्स सस्ता और हल्का होता है, जबकि डबल दीवार वाला बॉक्स भारी होता है, अधिक महंगा होता है, और मधुमक्खियों को बेहतर सुरक्षा प्रदान करता है।

आधुनिक छत्ते के निचले हिस्से में एक प्लेट या बॉटम बोर्ड होता है जो एक लकड़ी के बॉक्स पर रखा जाता है जिसे **'ब्रूड चैंबर'** कहा जाता है। इस चैंबर के अंदर कई फ्रेम होते हैं जो ऊर्ध्वाधर रूप से ऊपर से लटकते हैं। इन फ्रेमों को स्वतंत्र रूप से हटाया जा सकता है, इसलिए आधुनिक छत्ते को 'मूवेबल फ्रेम हाइव' कहा जाता है।

ब्रूड चैंबर के शीर्ष पर एक 'सुपर चैंबर' होता है जो केवल शहद के भंडारण के लिए होता है और इसमें रानी मधुमक्खी को प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है। रानी के प्रवेश को रोकने के लिए एक 'क्वीन एक्सक्लूडर' का उपयोग किया जाता है।

आधुनिक मधुमक्खी पालन में उपयोग किए जाने वाले उपकरण:

1. **क्वीन एक्सक्लूडर:** रानी को ब्रूड चैंबर से सुपर चैंबर में प्रवेश करने से रोकता है।
2. **कांब फाउंडेशन:** मधुमक्खी मोम की शीट जो फ्रेम के अंदर फिट की जाती है और कई वर्षों तक उपयोग की जा सकती है।
3. **बी ग्लब्स:** मधुमक्खी के डंक से हाथों की सुरक्षा के लिए।
4. **बी वेल्स:** चेहरे की सुरक्षा के लिए।
5. **स्मोकर:** मधुमक्खियों को शांत करने के लिए धुआँ उत्पन्न करने वाला उपकरण।
6. **हाइव टूल्स:** छत्ते से गंदगी हटाने के लिए।
7. **चाकू:** निरीक्षण के लिए छत्ते का ढक्कन हटाने के लिए।
8. **फीडर:** प्राकृतिक भोजन की कमी के समय मधुमक्खियों को कृत्रिम भोजन जैसे शक्कर का शरबत देने के लिए।

भारत में मधुमक्खियों की प्रमुख प्रजातियाँ:

1. **एपिस इंडिका:** भारतीय मधुमक्खी, जो मध्यम आकार की होती है और ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाई जाती है।
2. **एपिस मेलिफेरा:** यूरोपीय मूल की मधुमक्खी है जो अधिक शहद उत्पादन के लिए जानी जाती है और भारत में भी पाली जाती है।
3. **एपिस डोरसाटा:** रॉक बी या विशाल मधुमक्खी, जो बड़े छत्तों में रहती है और जंगली होती है।
4. **एपिस फ्लोरिया:** छोटी मधुमक्खी या बौनी मधुमक्खी, जो छोटे छत्तों में रहती है और कम शहद उत्पादन करती है।

छत्ता

मधुमक्खियों के छत्ते के कुछ अन्य नाम 'हाइव' या 'कांब' कहलाता है। इसमें मोम से बने षट्कोणीय कोशिकाएँ होती हैं जो कामगार मधुमक्खियों के पेट से स्रावित होती हैं। ये छत्ते चट्टानों, इमारतों या पेडों की शाखाओं से लटकते हैं। छत्ते में विभिन्न प्रकार के छिद्र होते हैं जैसे कि भंडारण छिद्र जो शहद रखती हैं और ब्रूड छिद्र जो युवा मधुमक्खियों को रखते हैं।

आधुनिक मधुमक्खी पालन

1. **फ्लो हाइव:** यह सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले और सफल उपकरणों में से एक है जहाँ मधुमक्खी पालक आसानी से शहद को एकत्रित कर सकते हैं। इस उपकरण का उपयोग करते समय छत्ते को खोलने की आवश्यकता नहीं होती है और किसी भी परिस्थिति में मधुमक्खियों को परेशान नहीं किया जाता है।
2. **साधारण मूवेबल हाइव:** यह वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन का एक कृत्रिम प्रकार है, जो पूरी तरह से लकड़ी के बॉक्स से बना होता है। आवश्यकताओं के आधार पर, फ्रेम एक हाइव से दूसरे हाइव में भिन्न होते हैं। एक बार रानी मधुमक्खी को रखे जाने के बाद, वह हाइव के बाहर नहीं आ सकती है। कम से कम जगह में, कामगार मधुमक्खियाँ आसानी से हाइव में प्रवेश और निकास कर सकती हैं। स्टैंड हाइव का आधार भाग होता है, जहाँ बारिश का पानी जल्दी गिर सकता है। आंतरिक कवर वेंटिलेशन प्रदान करता है और शीर्ष कवर पूरी कॉलोनी को बारिश के पानी से बचाता है।

   निचले बोर्ड पर, प्रवेश और निकास के लिए दो द्वार होते हैं। ब्रूड चैंबर हाइव का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। इसमें कुल मिलाकर लगभग पाँच से दस फ्रेम होते हैं। मोम शीट को फ्रेम के साथ एकीकृत किया जाता है जिसे दोहरे तारों द्वारा ऊर्ध्वाधर रूप से रखा जाता है। यहाँ मोम की शीट को कांब फाउंडेशन के रूप में जाना जाता है। यह कदम मुख्य रूप से मधुमक्खियों को आकर्षित करता है और दोनों तरफ छत्ता तैयार करने के लिए नींव प्रदान करता है। यह स्वचालित रूप से मजबूत छिद्रों को बनाने में मदद करता है जिसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

मधुमक्खी पालन के लाभ

1. **शहद उत्पादन:** मधुमक्खी पालन का मुख्य लाभ शहद का उत्पादन है, जो एक महत्वपूर्ण और पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ है। शहद का उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थों में मिठास के रूप में किया जाता है और यह स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होता है।
2. **मधुमक्खी मोम:** मधुमक्खी पालन से मोम का उत्पादन भी होता है, जिसका उपयोग मोमबत्तियाँ, सौंदर्य प्रसाधन, और अन्य उत्पादों में किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण उत्पाद है जो कई उद्योगों में उपयोगी है।

3. **परागणः** मधुमक्खियाँ परागण का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं, जो पौधों के प्रजनन और फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। परागण से फसलों की उपज और गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

4. **आर्थिक लाभः** मधुमक्खी पालन एक अच्छा व्यवसायिक अवसर प्रदान करता है। शहद, मोम और अन्य मधुमक्खी उत्पादों की बिक्री से किसानों और मधुमक्खी पालकों को आर्थिक लाभ होता है।

5. **पर्यावरण संरक्षणः** मधुमक्खियाँ पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे पौधों के परागण में सहायता करती हैं जिससे जैव विविधता बनाए रखने में मदद मिलती है।

6. **रोजगार के अवसरः** मधुमक्खी पालन से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में लाभकारी है जहाँ कृषि के अन्य विकल्प सीमित होते हैं।

7. **स्वास्थ्य लाभः** शहद और अन्य मधुमक्खी उत्पादों में औषधीय गुण होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। शहद का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में विभिन्न बीमारियों के उपचार में किया जाता है।

8. **प्रशिक्षण और शिक्षाः** मधुमक्खी पालन के माध्यम से लोगों को प्रशिक्षण और शिक्षा के नए अवसर मिलते हैं। इससे वे इस क्षेत्र में निपुणता प्राप्त कर सकते हैं और अपने कौशल को और बढ़ा सकते हैं।

निष्कर्ष

मधुमक्खी पालन एक लाभदायक और पर्यावरण अनुकूल व्यवसाय है। आधुनिक मधुमक्खी पालन के तरीके और उपकरण मधुमक्खियों की सुरक्षा और शहद उत्पादन को अधिक प्रभावी बनाते हैं। सही मधुमक्खियों का चयन और उचित देखभाल से शहद उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है।

भारत सरकार ने आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत मधुमक्खी पालन के लिए 500 करोड़ रूपये का आवंटन किया है जिससे मधुमक्खी पालन का कार्य करके आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति भी कम पूँजी में अधिक मुनाफा प्राप्त कर सकें।

राष्ट्रीय मधुमक्खीपालन और शहद मिशन का लक्ष्य 'मीठी क्रांति' को प्राप्त करने के लिए देश में वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन का समग्र प्रचार और विकास करना है।

कृषिवानिकी हरित आवरण बढ़ाने का एक उचित एवं प्रभावशाली माध्यम

सुशील कुमार, सुकुमार तरिया, बद्रे आलम, प्रियंका सिंह, सोभन देवनाथ, आर.पी. द्विवेदी एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

बदलते परिवेश, में जब जलवायु परिवर्तन के कारण एक ओर प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास हो रहा है, तो दूसरी ओर बढ़ती हुई जनसंख्या की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए एक वृहद स्तर पर विकास के नाम पर प्रत्येक वर्ष असंख्य वृक्षों को काटा जा रहा है। पृथ्वी पर घटते हरित आच्छादन की वजह से प्राकृतिक चक्रण, जिसका पृथ्वी पर जीवनयापन के लिए महत्वपूर्ण स्थान है, प्रभावित हो रहा है। इन्हीं सभी कारणों से वर्तमान मे पृथ्वीवासियों को अनेकों प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा हैं। इन्हीं प्राकृतिक आपदाओ के कारण प्रत्येक वर्ष पूरे विश्व में जानमाल की हानि हो रही हैं। इसीलिए प्राकृतिक समस्याओं के प्रभावी निवारण के लिए, पृथ्वी का हरित आवरण बढ़ाना ही एक अच्छा तर्कसंगत एवं प्रभावी माध्यम हो सकता हैं। चूँकि बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सीमित भूमि को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त क्षेत्रफल में वनों का विस्तार करके हरित आवरण को बढ़ाना सम्भव नहीं है। इसीलिए कृषिवानिकी के द्वारा ही बिना खाद्य सुरक्षा एवं अतिरिक्त भूमि को शामिल करते हुए, धरती पर हरित आवरण को प्रभावी ढंग से बढ़ाया जा सकता हैं।

कृषिवानिकी कृषि भूमि उपयोग की एक प्रणाली है, जिसमें फसलों के साथ–साथ पेड़ों एवं पशुपालन को अपनाया जाता है। कृषिवानिकी अनादिकाल से चली आ रही टिकाऊ कृषि की एक व्यवस्था है। परन्तु बदलते परिवेश के अनुसार, इस पद्धति को वैज्ञानिक तरीके से व्यवस्थित रूप में आगे बढ़ाया जा रहा है, ताकि एक ही खेत से संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए अधिक से अधिक उत्पादन लेने के साथ ही बहुउद्देश्यों को पूर्ति की जा सकें (सारिणी–1)।

सारिणी–1

क्र.सं.	उद्देश्य
1.	प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग
3.	भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि एवं संरक्षण
4.	प्रदूषण कारकों का विघटन
5.	लकड़ी, चारा, फल एवं अन्न की पूर्ति
6.	जैव विविधता का संरक्षण
7.	जलवायु अनुकूल कृषि को बढ़ावा

देश के कुल क्षेत्रफल का 21% क्षेत्र हरित आवरण वनों से अच्छादित है। परन्तु आँकड़ो के अनुसार अच्छी परिस्थिकी एवं जलवायु संतुलन के लिए, कुल भू–भाग का कम से कम 33% क्षेत्र हरित आवरण से अच्छादित होना चाहिए। इसीलिए इस विशेष उद्देश्य को पाने के लिए कृषिवानिकी एक अच्छा माध्यम हो सकता है। जलवायु ,जरूरत एवं जगह के हिसाब से कृषिवानिकी की विभिन्न पद्धतियों को अपनाया जाता है ताकि संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए, सुगम एवं सतत् विकास की ओर बढ़ा जा सके। हरित आवरण बढ़ाने के लिए अपनायी जाने वाली महत्वपूर्ण कृषिवानिकी पद्धतियाँ निम्न प्रकार है।

झूम खेती में उन्नत परती

झूम खेती व्यवस्था में जंगल के एक टुकड़ों को साफकर लगातार 5–7 वर्ष तक कृषि की जाती है। उर्वरा शक्ति क्षीण होने के बाद, इस खेती योग्य टुकड़े को खाली छोड़ दिया जाता। खेत की क्षीण हुई मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए, जानबूझकर व्यवस्थित तरीके से तेज बढ़ने वाले पेड़ों को स्थापित किया जाता है। इसी व्यवस्था को झूम खेती में उन्नत परती का नाम दिया जाता है। यह व्यवस्था हरित आवरण को बढ़ाने के साथ–साथ खरपतवार नियन्त्रण एवं जल संरक्षण में मददगार साबित होती हैं।

टाँग्या पद्धति

इस पद्धति में भूमि को समतल करके अवशेषों को पूरी तरह से जला दिया जाता है। उसके बाद मिट्टी को अच्छी तरह से तैयार करके, पेड़ों का रोपण कर दिया जाता है। पेड़ों की स्थापना के शुरूआती दौर में फसल उत्पादन किया जाता हैं। जब पेड़ पूर्ण रूप विकसित हो जाते, तो फसल उत्पादन को रोक कर, प्राकृतिक वनस्पति को बिना किसी नियन्त्रण के उगने किया जाता है। टाँग्या पद्धति इस प्रकार से हरित आच्छादन को बढ़ाने में मदद करती है।

बहुउद्देशीय पेड़ों को उगाना

कृषिवानिकी कं रूप में बहुउद्देशीय वृक्षों की प्रजातियों को उगाकर दैनिक बहुउद्देश्यों जैसे ईधन, लकड़ी, चारा, फल एवं उर्वरक की पूर्ति के साथ हरित आच्छादन को बढ़ाने में मदद मिल सकती है बहुउद्देशीय वृक्षों की प्रजातियों का चुनाव उपयोगिता एवं जलवायु अनुकूलन के हिसाब से करना आवश्यक एवं उचित रहता है ताकि इस प्रकार से उगाये जाने वाले पेड़ों का रख–रखाव सुचारू ढंग से किया जा सकें।

एले क्रोपिंग

एले क्रोपिंग कृषिवानिकी की वह पद्धति है, जिसमें पेड़ों एवं झाड़ियों को पंक्ति में उगाने के बाद, इन पंक्तियों के बीच में फसल उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार इस कृषिवानिकी पद्धति से प्राकृतिक संसाधनों का समुचित करके कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिलती है। इसके अलावा कई बार मौसम की विपरीत परिस्थितियों में फसल के नष्ट होने पर, पेड़ों से कुछ न कुछ उत्पादन प्राप्त हो जाता है। जिससे किसानों के जीवनयापन में सुधार के साथ आय का एक स्रोत भी बना रहता है।

होम गार्डन

होमगार्डन भूमि उपयोग की पद्धति है जिसमे बहुस्तरीय कृषि प्रणाली के रूप में पेड़ों, झाड़ियों, फसलों एवं पशुपालन को एक साथ एक ही जगह अपनाकर सघन एवं व्यवस्थित रूप से संसाधनों का उपयोग करके, बहुउद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। घरों के बैकयार्ड में पड़ी भूमि को उपयोग में लाकर होमगार्डन स्थापित किये जाते है। होमगार्डन खाद्य सुरक्षा, मृदा एवं जलसंरक्षण, जैव विविधता संरक्षण एवं परिस्थितिकी तन्त्र के अलावा उपयोगी वनस्पति को संरक्षित करने में कारगर साबित हो चुके।

बाउण्ड्री एवं बन्ड प्लानटेशन

बाउण्ड्री एवं बन्ड प्लानटेशन भारतीय कृषिवानिकी पद्धति का एक अच्छा उदाहरण है। इसमें पेड़ों को खेतों की सीमा एवं मेड़ों पर लगाया जाता है। इस कृषिवानिकी का मुख्य उद्देश्य खेतों का सीमाकरण करना, फसलों की सुरक्षा, मृदा अपरदन को रोकने के अलावा उपयोग न होने वाली उपजाऊ जमीन (बन्ड एवं बाउण्ड्री) का सदुपयोग करके उत्पादन

एवं हरित आवरण को बढ़ाया जा सकता है। इस पद्धति में लगाये जाने वाले पेड़ों से बहुउद्देशीय उत्पादन प्राप्त करके आय के अतिरिक्त स्रोतों में वृद्धि की जा सकती है।

फोडर बैंक (Fodder Bank)

फोडर बैंक, कृषिवानिकी की वह पद्धति जिसमें उच्च गुणवत्ता एवं अधिक बायोमास उत्पादन करने वाले पेड़ों को उगाया जाता है। जब पशुओं को चारे की उपलब्धता विशेष रूप से सूखे क्षेत्रों में मई एवं जून महीने में कम हो जाती है, की पूर्ति के लिए फोडर बैंक का उपयोग किया जाता है। इस पद्धति में स्थापित किये जाने वाले पेड़ों से चारे की उपलब्धता के आलावा ईधन एवं दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली लकड़ी के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने एवं अनुरक्षण करने में मदद मिलती है। यह पद्धति अनादिकाल से सूखे क्षेत्रों में पशुओं को चारा उपलब्ध कराने के लिए अपनायी जाती रही है।

पार्कलैण्ड पद्धति

यह कृषिवानिकी की वह पद्धति है, जिसमें किसानों की पसन्द एवं उद्देश्यो की पूर्ति के लिए खेत में बिना किसी व्यवस्थित योजना के हिसाब से पेड़ों को उगाया जाता है। बहुउपयोगी पेड़ों का संरक्षण करने के लिए भी इस पद्धति को अपनाया जाता है। इस पद्धति को अपनाकर बहुउद्देश्यों जैसे चारा की उपलब्धता, भूमि कटाव को रोकना, मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाना एवं वायुक्षरण को रोकना आदि की पूर्ति की जा सकती है। इस पद्धति में उगाये गये पेड़ों की कृषि भूमि पर उपस्थिति से फसलोत्पादन भी प्रभावित नहीं होता और साथ ही साथ अन्य उत्पादों की भी आपूर्ति होती रहती है।

भारत क्षेत्रफल के हिसाव से विश्व का सातवां सबसे बड़ा देश है। देश का कुल क्षेत्रफल 328 मिलियन हेक्टेयर है। देश के कुल क्षेत्रफल के 180 मिलियन हेक्टेयर भाग पर खेती की जाती है। अगर इस पूरे खेती वाले क्षेत्रफल मे उपरोक्त रेखाकिंत कृषिवानिकी पद्धतियों का व्यवस्थित रूप से विस्तार किया जाये तो देश के हरित आवरण मानक, जो कि कुल क्षेत्रफल का 33% निर्धारित है, को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है। इसीलिए देश की उन्नति, विकास, खुशहाली एवं परिस्थिति सन्तुलन के लिए, सभी हितधारको को एक स्वर में कृषिवानिकी प्रभावी विस्तार में प्रयासरत होने की जरूरत है।

पारिस्थितिकी तंत्र बहाली में बागवानी वानिकी

तेजेंद्र कुमार[1], एस.एल.पाल[1] एवं कमल[2]
[1]आर.एस.एम.(पी.जी) कॉलेज धामपुर, बिजनौर–246761 (उ.प्र.)
[2]बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी–284128 (उ.प्र.)

बागवानी वानिकी पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसने पर्यावरणीय गिरावट और जैव विविधता हानि के लिए एक आवश्यक प्रतिक्रिया के रूप में ध्यान आकर्षित किया है। यह लेख पारिस्थितिकी तंत्र बहाली के व्यापक ढांचे के भीतर बागवानी वानिकी के सिद्धांतों, प्रथाओं और प्रभावों की पड़ताल करता है, इसके लाभों, चुनौतियों और भविष्य की दिशाओं की जाँच करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र बहाली का परिचय

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली एक ऐसे पारिस्थितिकी तंत्र की पुनर्प्राप्ति में सहायता करने की प्रक्रिया है जो खराब हो गया है, क्षतिग्रस्त हो गया है या नष्ट हो गया है। इसका मुख्य लक्ष्य पारिस्थितिकी तंत्र को उसकी मूल संरचना, कार्य और प्रजातियों की संरचना में वापस लाना है, जिससे यह जैव विविधता को बनाए रख सके और जल शुद्धिकरण, जलवायु विनियमन और मिट्टी की उर्वरता जैसी पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान कर सके। वनों की कटाई, शहरीकरण, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी मानवीय गतिविधियों के व्यापक प्रभावों को संबोधित करने के लिए बहाली महत्वपूर्ण है।

पुनरूद्धार में बागवानी वानिकी की भूमिका

1. परिभाषा और दायरा

बागवानी वानिकी में परिदृश्य बहाली, पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ भूमि उपयोग के लिए पेड़ों, झाड़ियों और अन्य लकड़ी के पौधों की खेती और प्रबंधन शामिल है। पारंपरिक वानिकी के विपरीत, जो अक्सर बड़े पैमाने पर लकड़ी के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करता है, बागवानी वानिकी जैव विविधता, सौंदर्य मूल्य और पौधों की प्रजातियों के पारिस्थितिक कार्यों पर जोर देती है। यह चयनित प्रजातियों के विकास और अस्तित्व को बढ़ाने के लिए बागवानी तकनीकों, जैसे ग्राफ्टिंग, प्रजनन और नियंत्रित प्रसार को एकीकृत करता है।

2. जैव विविधता संरक्षण

बागवानी वानिकी का एक प्रमुख योगदान जैव विविधता का संरक्षण है। विभिन्न प्रकार की देशी और स्थानिक प्रजातियों का चयन और खेती करके, बागवानी वानिकी पारिस्थितिक तंत्र की प्राकृतिक विविधता को बहाल करने में मदद करती है। यह उन क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहाँ मोनोकल्चर प्रथाओं या आक्रामक प्रजातियों के कारण जैव विविधता गंभीर रूप से कम हो गई है। पौधों की विविध श्रृंखला को फिर से प्रस्तुत करके, बागवानी वानिकी खाद्य जाल के पुनर्निर्माण, परागणकों का समर्थन करने और वन्यजीवों के लिए आवास बनाने में मदद कर सकती है।

3. मृदा एवं जल संरक्षण

बागवानी वानिकी मिट्टी को स्थिर करने और जल संसाधनों के संरक्षण में सहायक है। कई वृक्ष प्रजातियों की गहरी जड़ें मिट्टी को स्थिर रखने, कटाव को कम करने और भूस्खलन को रोकने में मदद करती हैं। इसके अलावा पेड़ों द्वारा प्रदान किया गया छत्र आवरण मिट्टी पर वर्षा के प्रभाव को कम करता है, सतही अपवाह को कम करता है और जल घुसपैठ को बढ़ाता है। यह खराब भूमि की बहाली में योगदान देता है, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में जहाँ मिट्टी का कटाव एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है।

4. जलवायु परिवर्तन शमन

पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड को सोखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो ग्लोबल वार्मिंग में योगदान देने वाली प्रमुख ग्रीनहाउस गैसों में से एक है। बागवानी वानिकी वनों की कटाई या निम्नीकृत क्षेत्रों में पेड़ों के रणनीतिक रोपण के माध्यम से कार्बन पृथक्करण को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकती है। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीली प्रजातियों का चयन बहाल पारिस्थितिकी तंत्र की दीर्घकालिक स्थिरता और स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है। पेड़ों की छतरियों के शीतलन प्रभाव शहरों में शहरी ताप द्वीप प्रभाव को कम करने में भी मदद करते हैं, जो जलवायु अनुकूलन रणनीतियों में योगदान करते हैं।

5. सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्य

अपने पारिस्थितिक लाभों के अलावा, बागवानी वानिकी परिदृश्यों में सांस्कृतिक और सौंदर्य मूल्य भी जोड़ती है। पुर्नस्थापित वन और हरे–भरे स्थान मनोरंजन के अवसर प्रदान करते हैं, पर्यावरण की सुंदरता को बढ़ाते हैं और स्थानीय समुदायों के लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार करते हैं। कई संस्कृतियों में, कुछ वृक्ष प्रजातियाँ प्रतीकात्मक या आध्यात्मिक महत्व रखती हैं, और उनका पुनरुत्पादन सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और बहाली के प्रयासों में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली के लिए बागवानी वानिकी में चुनौतियाँ

1. प्रजाति चयन

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली में बागवानी वानिकी की सफलता काफी हद तक उपयुक्त प्रजातियों के चयन पर निर्भर करती है। इसमें उन प्रजातियों को चुनना शामिल है जो क्षेत्र की मूल निवासी हैं, स्थानीय पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए लचीली हैं और विशिष्ट पारिस्थितिक कार्यों को पूरा करने में सक्षम हैं। हालाँकि, उच्च गुणवत्ता वाली पौध सामग्री की उपलब्धता, विशेष रूप से दुर्लभ या लुप्तप्राय प्रजातियों के लिए, एक महत्वपूर्ण चुनौती हो सकती है। इसके अलावा, अच्छे इरादों के साथ भी गैर–देशी प्रजातियों का परिचय, कभी–कभी अप्रत्याशित पारिस्थितिक परिणामों का कारण बन सकता है, जैसे कि आक्रामक प्रजातियों का प्रसार।

2. तकनीकी एवं वित्तीय संसाधन

बागवानी वानिकी परियोजनाओं के लिए काफी तकनीकी विशेषज्ञता और वित्तीय निवेश की आवश्यकता होती है। पेड़ों के प्रसार, रोपण और रखरखाव के लिए विशेष ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है, जो सभी क्षेत्रों में आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त, पुर्नस्थापना प्रयासों की स्थिरता के लिए दीर्घकालिक वित्तीय सहायता महत्वपूर्ण है, क्योंकि बागवानी वानिकी के लाभों को पूरी तरह से साकार होने में अक्सर वर्षों या दशकों का समय लग जाता है।

3. निगरानी और अनुकूली प्रबंधन

बागवानी वानिकी के माध्यम से प्रभावी पारिस्थितिकी तंत्र बहाली के लिए निरंतर निगरानी और अनुकूली प्रबंधन की आवश्यकता होती है। इसमें रोपित प्रजातियों के विकास और स्वास्थ्य पर नजर रखना, पारिस्थितिकी तंत्र कार्यों की वसूली का आकलन करना और प्रबंधन प्रथाओं में आवश्यक समायोजन करना शामिल है। हालाँकि, पर्याप्त निगरानी प्रणालियों की कमी और पारिस्थितिक परिणामों की मात्रा निर्धारित करने में कठिनाई बहाली परियोजनाओं की सफलता में बाधा बन सकती है।

1. उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वन बहाली

उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, वनों की कटाई वाले क्षेत्रों और खराब कृषि भूमि को बहाल करने के लिए बागवानी वानिकी का सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए, ब्राजील के अटलांटिक वन में, जो जैव विविधता का केंद्र है, पुर्नस्थापन प्रयासों में देशी वृक्ष प्रजातियों के विविध मिश्रण का रोपण शामिल है। इन प्रयासों से न केवल वन क्षेत्र में वृद्धि हुई है, बल्कि जैव विविधता में भी वृद्धि हुई है, पानी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है और पर्यावरण–पर्यटन और वन उत्पादों की टिकाऊ कटाई के माध्यम से स्थानीय समुदायों को आर्थिक लाभ मिला है।

2. शहरों में शहरी वानिकी

हरित स्थानों को बहाल करने, वायु गुणवत्ता में सुधार और जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए शहरी क्षेत्र तेजी से बागवानी वानिकी की ओर रुख कर रहे हैं। न्यूयॉर्क और सिंगापुर जैसे शहरों में शहरी वानिकी पहल ने सड़कों के किनारे, पार्कों और छतों पर पेड़ लगाने पर ध्यान केंद्रित किया है। इन प्रयासों ने शहरी मरूद्यानों का निर्माण किया है जो वन्य जीवन का समर्थन करते हैं, ऊर्जा लागत को कम करते हैं और निवासियों की भलाई को बढ़ाते हैं।

3. शुष्क क्षेत्रों में पुनर्वनीकरण

शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण से निपटने और उत्पादक परिदृश्यों को बहाल करने के लिए बागवानी वानिकी का उपयोग किया जा रहा है। अफ्रीका में ग्रेट ग्रीन वॉल पहल एक प्रमुख उदाहरण है, जहाँ पुर्नस्थापित जंगलों, वुडलैंड्स और खेत की पच्चीकारी साहेल क्षेत्र में फैली हुई है। इस महत्वाकांक्षी परियोजना का उद्देश्य लाखों लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा में सुधार, रोजगार सृजन और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलेपन को मजबूत करना है।

भविष्य की दिशाएं

1. कृषिवानिकी के साथ एकीकरण

बागवानी वानिकी को कृषिवानिकी प्रथाओं के साथ एकीकृत करने से कृषि प्रणालियों की लचीलापन और उत्पादकता बढ़ सकती है। खेती के परिदृश्य में पेड़ों को शामिल करके, किसान अपनी फसलों में विविधता ला सकते हैं, मिट्टी की उर्वरता में सुधार कर सकते हैं और बाहरी आदानों पर निर्भरता कम कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण न केवल पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली का समर्थन करता है बल्कि टिकाऊ कृषि और ग्रामीण विकास को भी बढ़ावा देता है।

2. सामुदायिक भागीदारी

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली में बागवानी वानिकी की सफलता सामुदायिक भागीदारी से निकटता से जुड़ी हुई है। पुर्नस्थापन परियोजनाओं की योजना, कार्यान्वयन और निगरानी में स्थानीय समुदायों को शामिल करने से यह सुनिश्चित होता है कि प्रयास सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त, सामाजिक रूप से समावेशी और आर्थिक रूप से लाभकारी हैं। शिक्षा और क्षमता–निर्माण कार्यक्रम समुदायों को सशक्त बनाने और पुर्नस्थापित परिदृश्यों पर स्वामित्व और प्रबंधन की भावना को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं।

3. नीति और संस्थागत समर्थन

बागवानी वानिकी पहल को बढ़ाने के लिए मजबूत नीति ढांचे और संस्थागत समर्थन महत्वपूर्ण हैं। सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को अपने पर्यावरणीय एजेंडे में पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली को प्राथमिकता देनी चाहिए, पर्याप्त संसाधन आवंटित करने चाहिए और सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच सहयोग के लिए सक्षम वातावरण बनाना चाहिए। सब्सिडी, अनुदान और कार्बन क्रेडिट जैसे प्रोत्साहन भी बहाली प्रयासों में भागीदारी को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

4. अनुसंधान और नवाचार

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली में बागवानी वानिकी की प्रभावशीलता और दक्षता में सुधार के लिए चल रहे अनुसंधान और नवाचार आवश्यक हैं। इसमें नई प्रसार तकनीक विकसित करना, जलवायु–लचीली प्रजातियों की पहचान करना और निगरानी उपकरणों को परिष्कृत करना शामिल है। शोधकर्ताओं, अभ्यासकर्ताओं और नीति निर्माताओं के बीच सहयोग यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक ज्ञान बहाली प्रथाओं को सूचित करता है और क्षेत्र से सीखे गए सबक भविष्य के अनुसंधान का मार्गदर्शन करते हैं।

निष्कर्ष

खराब पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करने और पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के वैश्विक प्रयास में बागवानी वानिकी एक महत्वपूर्ण उपकरण है। जैव विविधता, मिट्टी और जल संरक्षण, जलवायु परिवर्तन शमन और सांस्कृतिक मूल्य पर ध्यान केंद्रित करके, बागवानी वानिकी पारिस्थितिकी तंत्र बहाली के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है। चुनौतियों के बावजूद, संभावित लाभ बहुत अधिक हैं, जो इसे दुनिया भर में सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण रणनीतियों का एक महत्वपूर्ण घटक बनाता है।

सावधानीपूर्वक योजना, सामुदायिक भागीदारी और निरंतर नवाचार के माध्यम से, बागवानी वानिकी लचीला, जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र बनाने में मदद कर सकती है जो लोगों और ग्रह दोनों का समर्थन करती है।

हिन्दी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। हिन्दी जबकि राष्ट्रीय एकता की ओर अग्रसर होने में एक कदम है, उसका विरोध करना अकारण होगा। यह अन्ततः प्रान्तीय कार्य का एक माध्यम स्वरूप होगी और भारतीय एकता को एक सूत्र में बाँध रखने में सहायक होगी।

–नेताजी सुभाश चन्द्र बोस

* * *

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर यह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

–राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त

* * *

दया का पात्र है वह राष्ट्र, जिसके निवासी यह वस्त्र नहीं पहन पाते जो उनकी मातृभूमि में तैयार किया जाता है। उससे अधिक दया का पात्र, वह राष्ट्र जिसके निवासी वह अन्न ग्रहण नहीं करते जो उनके ही देश की भूमि में उगाकर तैयार किया जाता है परन्तु सबसे अधिक दया का पात्र वह राष्ट्र है, जिसके निवासी अपने देश की राष्ट्रभाषा नहीं बोलते।

–खलिल जिब्रान

कृषिवानिकी के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली: स्थिरता का एक मार्ग

तनिशा
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

पर्यावरणीय चुनौतियों और जैव विविधता वर्तमान युग में, पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली की अवधारणा में आशा की किरण के रूप में उभरी है। इसे क्षतिग्रस्त या नष्ट हुए पारिस्थितिक तंत्र की पुनर्प्राप्ति में सहायता करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। पुर्नस्थापना में हमारे ग्रह के प्राकृतिक परिदृश्य को पुनर्जीवित करने और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्थायी भविष्य सुरक्षित करने की अपार क्षमता है। पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली के माध्यम से, हम विलुप्त प्रजातियों और जानवरों के अस्तित्व को बनाए रखने में मदद करते हैं। यह प्रक्रिया जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के साथ पानी, मिट्टी, वायु और जानवरों के साथ सामंजस्यपूर्ण अनुभव स्थापित करने में भी मदद करती है। इससे सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ होता है और स्थिरता में भी सुधार होता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य न केवल जैव विविधता को पुनः प्राप्त करना है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की प्रतिपादन भी सुनिश्चित करना है जो मानव कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है।

कृषि और वानिकी प्रथाओं के संयोजन से, कृषिवानिकी जैव विविधता को बढ़ावा देती है, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है, जल धारण क्षमता में सुधार करती है और किसानों के लिए अतिरिक्त आय स्रोत प्रदान करती है। कृषिवानिकी के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली स्थायी भूमि उपयोग प्रथाओं को बढ़ावा देते हुए पर्यावरणीय गिरावट को संबोधित करने के लिए एक शक्तिशाली समाधान प्रदान करती है। कृषिवानिकी कृषि फसलों या पशुधन के साथ–साथ पेड़ों और फसलों को एकीकृत करती है, जिससे विविध और लचीले परिदृश्य बनते हैं जो पारिस्थितिक स्वास्थ्य और मानव आजीविका दोनों का समर्थन करते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण के मुख्य कारक वनों की कटाई, शहरीकरण, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी मानवीय गतिविधियां हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण ने पृथ्वी के प्राकृतिक संतुलन को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। वनों, आर्द्रभूमियों, मूंगा, चट्टानों और घास के मैदानों सहित अन्य को जैव विविधता और पारिस्थितिक कार्यक्षमता में गहरा नुकसान हुआ है। ये परिवर्तन न केवल वन्य जीवन के लिए खतरा हैं, बल्कि स्वच्छ हवा और पानी से लेकर जलवायु विनियमन और मिट्टी की उर्वरता तक प्रदान की जाने वाली आवश्यक सेवाओं, पारिस्थितिकी तंत्र को भी खतरे में डालते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र पृथ्वी पर जीवन के लिए आवश्यक कई सेवाएं प्रदान करते हैं, जैसे स्वच्छ हवा और पानी, पोषक चक्र, जलवायु विनियमन और वन्यजीवों के लिए आवास। हालाँकि, वनों की कटाई, प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन और शहरीकरण जैसी मानवीय गतिविधियों ने इनमें से कई पारिस्थितिक तंत्रों को गंभीर रूप से खराब कर दिया है। यह क्षरण जैव विविधता के लिए खतरा है और मानव समाज को स्थायी रूप से समर्थन देने के लिए पारिस्थितिक तंत्र की क्षमता से समझौता करता है। कृषिवानिकी पारिस्थितिकी तंत्र के बहाली में भी अहम भूमिका निभाती है जो पर्यावरणीय स्थिरता, जैव विविधता संरक्षण और समुदायों के लिए बेहतर आजीविका में योगदान करती है। यहाँ प्रमुख लाभ हैं''

जैव विविधता संरक्षण

कृषिवानिकी की विभिन्न प्रणालियाँ जैव विविधता को बढ़ावा देती हैं जो पौधों और जानवरों की प्रजातियों की एक विस्तृत श्रृंखला का समर्थन करते हैं। पेड़ों, झाड़ियों और फसलों का संयोजन लाभकारी कीड़ों, पक्षियों और छोटे स्तनधारियों सहित वन्यजीवों के लिए स्थान प्रदान करता है।

मृदा स्वास्थ्य सुधार

कृषिवानिकी प्रणाली मिट्टी की उर्वरता और स्वास्थ्य में सुधार करने में योगदान करती हैं। वृक्ष की जड़ें मिट्टी की संरचना को स्थिर करके और जल अपवाह को कम कर मिट्टी के कटाव को रोकने में मदद करती हैं। पेड़ की पत्तियाँ और कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में कार्बनिक कार्बन सामग्री, पोषक तत्व चक्र और समग्र मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं।

जलवायु परिवर्तन शमन

कृषिवानिकी वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को समायोजित करके जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पेड़ अपने बायोमास और मिट्टी में कार्बन जमा करते हैं, जिससे ग्रीनहाउस गैस सांद्रता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, कृषिवानिकी अत्याधिक तापमान को कम करके, पानी का संरक्षण करके और विपरीत मौसम की घटनाओं के प्रभावों को कम करके जलवायु लचीलेपन को बढ़ाती हैं।

जल प्रबंधन और गुणवत्ता

कृषिवानिकी प्रणाली मिट्टी में जल प्रतिधारण में सुधार और सतही अपवाह को कम करके जल चक्र को विनियमित करने में मदद करते हैं। यह भूजल स्तर को बढ़ाता है, मिट्टी के कटाव को कम करता है, और जल निकायों तक पहुंचने से पहले प्रदूषकों और अवसादन को निस्पंदन करके पानी की गुणवत्ता में सुधार करता है।

सतत आजीविका

कृषिवानिकी किसानों के लिए आय के स्रोतों में विविधता लाती है। पेड़ फल, मेवे, लकड़ी और औषधीय पौधे जैसे मूल्यवान उत्पाद प्रदान करते हैं, जिनकी कटाई स्थायी रूप से की जा सकती है। विविध आय धाराएं एकल फसलों पर निर्भरता कम करती हैं, आर्थिक स्थिरता में सुधार करती हैं और खाद्य सुरक्षा बढ़ाती हैं।

खराब भूमि की बहाली

कृषिवानिकी खराब भूमि और उसके परिदृश्य को बहाल करने में प्रभावी है। वनस्पति आवरण को फिर से शुरू करके और टिकाऊ भूमि प्रबंधन प्रथाओं को लागू करके, कृषिवानिकी खराब मिट्टी के पुनर्वास, जैव विविधता को बहाल करने और वनों की कटाई, गहन कृषि या भूमि क्षरण से प्रभावित पारिस्थितिक तंत्र को पुनर्जीवित करने में मदद करती है।

सामुदायिक लचीलापन और सामाजिक लाभ

कृषिवानिकी स्थानीय आजीविका, खाद्य सुरक्षा और सांस्कृतिक प्रथाओं का समर्थन करने वाले पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं

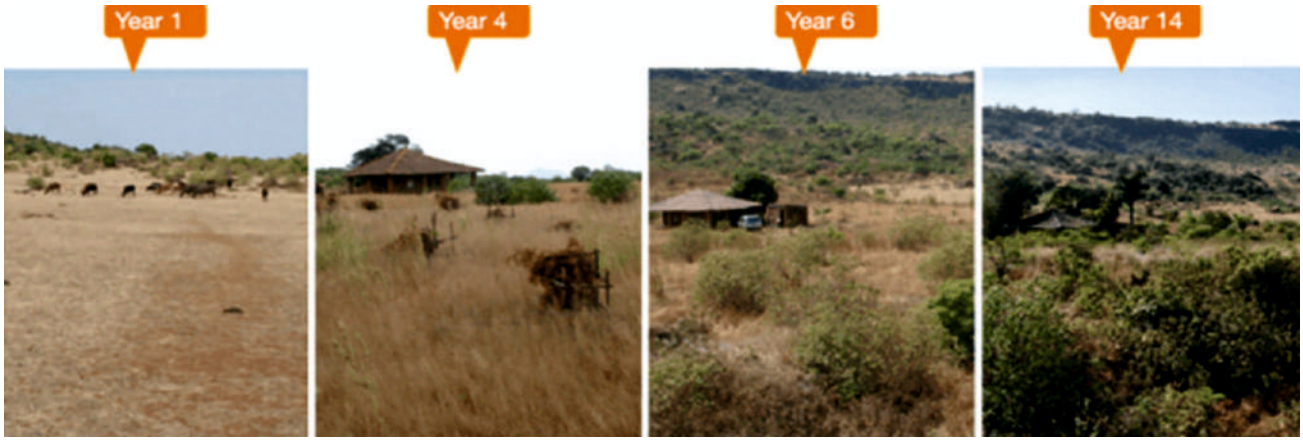

(14 वर्षों में भूमि कैसे बदल गई। स्रोतः 'ओइकोसः पारिस्थितिक सेवाओं के लिए'।)

प्रदान करके सामुदायिक लचीलेपन को बढ़ाती है। यह स्थायी भूमि प्रबंधन प्रथाओं में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देती है और कृषिवानिकी प्रणालियों से संबंधित पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण को बढ़ावा देता है।

कृषिवानिकी को दुनिया भर के विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक लागू किया गया है, जो कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के साथ–साथ पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली में योगदान दे रहा है। यहाँ कुछ उल्लेखनीय उदाहरण दिए गए हैं:

भारत जलसंभर प्रबंधन

भारत के महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे कई राज्यों में, कृषिवानिकी ने बिगड़े जलसंभरों को बहाल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फसलों के साथ–साथ पेड़ लगाकर, किसानों ने मिट्टी को स्थिर किया है, कटाव को रोका है और नदियों और नालों में पानी की गुणवत्ता में सुधार किया है। इससे फलों, लकड़ियों और औषधीय पौधों जैसे विविध उत्पादों के माध्यम से किसानों की आय में भी वृद्धि हुई है।

ब्राजील अटलांटिक वन बहाली

ब्राजील में, विशेष रूप से अटलांटिक वन क्षेत्र में, कृषिवानिकी प्रणालियाँ खराब भूमि को बहाल करने में महत्वपूर्ण रही हैं। देशी वृक्ष प्रजातियों को कृषि फसलों के साथ एकीकृत करके, किसानों ने न केवल मिट्टी के स्वास्थ्य और जल धारण में सुधार किया है बल्कि लुप्तप्राय प्रजातियों के लिए आवास भी प्रदान किया है। अटलांटिक फॉरेस्ट रेस्टोरेशन पैक्ट जैसे संगठनों ने इन प्रथाओं को व्यापक रूप से बढ़ावा दिया है।

मलावी सदाबहार कृषि

सदाबहार कृषि जैसी पहलों के माध्यम से, मलावी ने खराब मिट्टी की उर्वरता को सफलतापूर्वक बहाल कर दिया है। मक्के और अन्य मुख्य फसलों के साथ–साथ नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले पेड़ लगाकर, किसानों ने मिट्टी की उर्वरता और सूखे के प्रति लचीलापन में सुधार किया है। इस दृष्टिकोण ने फसल की पैदावार में भी वृद्धि की है और वृक्ष उत्पादों से अतिरिक्त आय प्रदान की है।

संयुक्त राज्य अमेरिका गली फसल

संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ हिस्सों में, खराब कृषि भूमि को बहाल करने के लिए गली फसल प्रणाली को अपनाया गया है। उदाहरण के लिए, मध्य–पश्चिम में, किसान मकई या सोयाबीन जैसी नकदी फसलों की पंक्तियों के बीच पेड़ों या झाड़ियों की पंक्तियाँ लगाते हैं। यह अभ्यास मिट्टी के कटाव को कम करता है, पानी की गुणवत्ता में सुधार करता है और वन्यजीवों को आवास प्रदान करता है।

चीन लोएस पठार बहाली

चीन में लोएस पठार, जो एक बार कटाव से गंभीर रूप से नष्ट हो गया था, कृषिवानिकी तकनीकों का उपयोग करके बहाल किया गया है। सीढ़ीदार फसलों के साथ–साथ पेड़ और झाड़ियाँ लगाकर, किसानों ने मिट्टी के कटाव को कम किया है, जल धारण में सुधार किया है और जैव विविधता को बहाल किया है। बड़े पैमाने पर बहाली के इस प्रयास से स्थानीय समुदायों को आर्थिक रूप से भी लाभ हुआ है।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि कैसे कृषिवानिकी पेड़ों को कृषि पद्धतियों के साथ एकीकृत करके, जैव विविधता को बढ़ाकर, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करके और दुनिया भर में समुदायों के लिए स्थायी आजीविका का समर्थन करके पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावी ढंग से बहाल कर सकती है।

21वीं सदी में जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों को कम करने में वनों के बाहर के पेड़ों का महत्व

रिंकू सिंह, ए. अरूणाचलम, अरूण कुमार हाण्डा, सुरेश रामणन एस., आकांक्षा जैन, अंकित वर्दिया एवं रोहित सिंह नेगी

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

सामाजिक–पारिस्थितिकी और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन आज के युग में सबसे अधिक बहस वाले मुद्दों में से एक है। जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण निम्नीकरण, प्रदूषण और जैव विविधता के नुकसान सहित प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी बढ़ती पर्यावरणीय समस्याओं के लिए मानवजनित गतिविधियाँ प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। मानव व्युत्पन्न परिवर्तन वर्तमान और अनुमानित जलवायु परिवर्तन के लिए मुख्य कारण हैं। 21वीं सदी में जलवायु परिवर्तन एक वास्तविकता है और इसका प्रमाण हम ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक तापन), ग्लेशियर (हिमनद) के पिघलने, समुद्र के स्तर में वृद्धि, वर्षा परिवर्तनशीलता, चरम मौसमी घटनाएँ, समुद्र के अम्लीकरण इत्यादि के रूप में देख सकते हैं। जलवायु परिवर्तन पर अंतर–सरकारी पैनल (आईपीसीसी) की वर्ष 2013 की एक रिपोर्ट के अनुसार इक्कीसवीं सदी के अंत तक औसत वैश्विक तापमान 0.5–8.6 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ने की उम्मीद है। इस बढ़े हुए तापमान से मानव जीवन और पर्यावरण के प्रत्येक पहलू पर प्रभाव पड़ेगा। जलवायु को नियंत्रित करने में पेड़ों (चाहे वो वन के अंदर हों या बाहर) का बहुत अधिक महत्व है। पेड़ वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके जलवायु को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए यदि वे नष्ट हो जाते हैं, तो यह लाभकारी प्रभाव कम हो जाता है और पेड़ों में संग्रहीत कार्बन वायुमंडल में उत्सर्जित होता है और यह ग्रीनहाउस (हरितगृह) प्रभाव को बढ़ाता है।

21वीं सदी में जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभाव

सामान्यतः जलवायु का आशय किसी दिये गए भौगोलिक क्षेत्र में लंबे समय तक औसत मौसम से होता है। जलवायु परिवर्तन का तात्पर्य तापमान और मौसम के स्वरूप में दीर्घकालिक बदलाव से है। अतः जब किसी विशेष क्षेत्र के औसत मौसम में परिवर्तन आता है तो उसे हम जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) कहते हैं। जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक और मानवजनित दोनों कारकों से हो सकता है। सूर्य की गतिविधि में बदलाव या बड़े ज्वालामुखी विस्फोटों के कारण ऐसे बदलाव प्राकृतिक हो सकते हैं। परन्तु 19वीं सदी से, मानव गतिविधियाँ जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण रही हैं। मानव द्वारा ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण है। ग्रीनहाउस गैसों की परत पृथ्वी की सतह पर तापमान संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान अदा करती हैं। पर्यावरणविदों के अनुसार, यदि यह परत नहीं होगी तो पृथ्वी का तापमान काफी कम हो जाएगा जो मानव जीवन के लिए सुरक्षित नहीं होगा। ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन (कोयला, तेल और गैस) जलाने से होता है। पृथ्वी का 'प्राकृतिक ग्रीनहाउस प्रभाव' (नेचुरल ग्रीनहाउस एफ्फेट) हमारे नीले ग्रह पर जीवन को उस रूप में संभव बनाता है जैसा हम जानते हैं। हालाँकि, मानवीय गतिविधियों, मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन को जलाने और वनों की कटाई ने प्राकृतिक ग्रीनहाउस प्रभाव को बहुत तीव्र कर दिया है, जिससे पृथ्वी पर ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रही है। कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, और नाइट्रस ऑक्साइड मुख्य ग्रीनहाउस गैस हैं। इनके आलावा फ्लोराइडयुक्त गैसें (हाइड्रोफ्लोरोकार्बन, पेरफ्लूरोकार्बन, सल्फर हेक्साफ्लोराइड और नाइट्रोजन ट्राइफ्लोराइड) शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैसें हैं जो विभिन्न घरेलू, वाणिज्यिक और औद्योगिक अनुप्रयोगों और प्रक्रियाओं से उत्सर्जित होती हैं। ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार गैस कार्बन डाइऑक्साइड है।

जलवायु परिवर्तन पर आईपीसीसी की वर्ष 2022 में जारी छठी मूल्यांकन रिपोर्ट में कहा गया है कि हमारे पास 1.5 डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को हासिल करने की राह काफी कठिन है। आईपीसीसी की रिपोर्ट के अनुसार 1850 से 2019 तक ऐतिहासिक संचयी शुद्ध मानवजनित कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन 2400 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड था। क्षेत्रवार रूप से यह उत्सर्जन उत्तरी अमेरिका (23 प्रतिशत) में सर्वाधिक रहा, इसके बाद यूरोप (16 प्रतिशत), पूर्वी एशिया (12 प्रतिशत:), लैटिन अमेरिका और कैरेबियन (11 प्रतिशत), पूर्वी यूरोप और पश्चिम–मध्य एशिया (10 प्रतिशत), दक्षिण–पूर्व एशिया और प्रशांत (8 प्रतिशत), अफ्रीका (7 प्रतिशत), ऑस्ट्रेलिया, जापान और न्यूजीलैंड (4 प्रतिशत), दक्षिणी एशिया (4 प्रतिशत), मध्य पूर्व (2 प्रतिशत), तथा अंतर्राष्ट्रीय शिपिंग और विमानन (2 प्रतिशत) का स्थान रहा। भारत जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण 2024 में भारत ने रिकॉर्ड तोड़ गर्मी का सामना किया है। भारत अब तक की सबसे भयानक गर्मी की लहरों से एक से जूझा है, देश के कई हिस्सों में लगातार 48–50 डिग्री सेल्सियस तक तापमान हो गया था।

वनों के बाहर के पेड़ (ट्रीज आउटसाइड फॉरेस्ट्स–टीओएफ): परिभाषाएँ और अवधारणाएँ

पेड़ मानव कल्याण के लिए प्रकृति का बहुमूल्य संसाधन हैं। ये वन और गैर–वन दोनों क्षेत्रों में पाए जाते हैं। निर्दिष्ट वन क्षेत्रों के बाहर उगने वाले पेड़ों को जंगल या वनों के बाहर के पेड़ (टीओएफ) के रूप में जाना जाता है। वन संसाधनों का अनुमान लगाते समय, खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) का वैश्विक वन संसाधन आकलन (जीएफआरए) वन (फारेस्ट), अन्य जंगली भूमि (अदर वूडेड लैंड–ओ डब्लू एल) और वनों के बाहर के पेड़ (टीओएफ), जैसी शब्दावली का उपयोग करता है। एफएओ ने वन को 0.5 हेक्टेयर से अधिक फैली हुई भूमि, जिसमें 5 मीटर से अधिक ऊंचे पेड़ और 10 प्रतिशत से अधिक का छत्र आवरण, या यथास्थान इन सीमाओं तक पहुंचने में सक्षम पेड़ के रूप में परिभाषित किया गया है। जबकि अन्य जंगली भूमि वह भूमि है जिसे वन के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है, जो 0.5 हेक्टेयर से अधिक फैली हुई है तथा इसमें 5 मीटर से अधिक ऊँचे पेड़ और 5–10 प्रतिशत का छत्र आवरण, या ऐसे पेड़ होते हैं जो यथास्थान इन सीमाओं तक पहुँचने में सक्षम हों या छोटे वृक्षों, झाड़ियों और पेड़ों का संयुक्त आवरण 10 प्रतिशत हो। वनों के बाहर के पेड़ (टीओएफ), उन पेड़ों को नामित करता है जो न तो वन में और न ही अन्य जंगली भूमि पर उगते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि, प्रमुख कृषि या शहरी भूमि उपयोग की विशेषता वाली भूमि को वृक्ष बहुतायत की परवाह किए बिना वन या अन्य जंगली भूमि की श्रेणी से बाहर रखा गया है। कृषि भूमि और शहरी भूमि पर सभी पेड़ और झाड़ियाँ हमेशा टीओएफ होती हैं, चाहे पौधे की ऊँचाई, पैच क्षेत्र, चौड़ाई या छत्र आवरण कुछ भी हो। इसके अलावा, 0.5 हेक्टेयर से छोटे पेड़ों की भूमि के टुकड़े हमेशा शिखराच्छादन (क्राउन कवर) से स्वतंत्र टीओएफ होते हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण (फारेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया–एफएसआई) अपने वन संसाधनों की रिपोर्ट करते समय 'रिकॉर्ड किए गए वन क्षेत्र' (रिकार्डेड फारेस्ट एरिया–आरएफए), वन आवरण (फारेस्ट कवर), वृक्ष आवरण (ट्री कवर) और वनों के बाहर के पेड़ (टीओएफ) जैसी शब्दावली का उपयोग करता है। आरएफए में सरकारी रिकॉर्ड में वन के रूप में दर्ज सभी क्षेत्र शामिल हैं। वन आवरण में 10 प्रतिशत से अधिक वृक्ष छत्र घनत्व के साथ 1 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल वाली सभी भूमि, जिसमें पेड़ के बगीचे, बाँस, ताड़ आदि शामिल हैं, जो दर्ज वन और अन्य सरकारी भूमि, निजी समुदाय या संस्थागत भूमि के भीतर होते हैं। वृक्ष आवरण में 1 हेक्टेयर से कम क्षेत्र में आरएफए के बाहर पेड़ों वाली भूमि के टुकड़े और अलग–थलग पेड़ शामिल हैं। टीओएफ में आरएफए के बाहर उगने वाले सभी पेड़ शामिल हैं, चाहे पेड़ों की भूमि का आकार कुछ भी हो। इस प्रकार, भारत में टीओएफ आरएफए के बाहर वन आवरण और वृक्ष आवरण को शामिल करता है। टीओएफ विभिन्न प्रकार के भूदृश्यों और एकल वृक्षों से लेकर बड़े वृक्षारोपण और बगीचों तक विभिन्न आकारों में पाए जाते हैं (चित्र 1)।

भारत राज्य वन रिपोर्ट (आईएसएफआर) 2021 के अनुसार भारत में टीओएफ का क्षेत्र 29.29 मिलियन हेक्टेयर है जो देश के कुल वन और वृक्ष आवरण का लगभग 36.18 प्रतिशत और भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8.9 प्रतिशत है। हाल के

चित्र 1 वनों के बाहर पेड़ों के उदाहरण

वर्षों के दौरान, देश में वन उपज के एक प्रमुख स्रोत के रूप में के वनों के बाहर के पेड़ों का महत्व बढ़ गया है। वर्तमान में टीओएफ (विशेषकर कृषिवानिकी क्षेत्र) देश में उत्पादित लकड़ी का मुख्य स्रोत है। टीओएफ का विस्तार और टिकाऊ प्रबंधन वर्तमान पर्यावरणीय मुद्दों जैसे की जलवायु को नियंत्रित करने के लिए प्रकृति–आधारित समाधान हो सकता है। ट्रीज आउटसाइड फॉरेस्ट इन इंडिया (टीओएफआई) अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका एजेंसी (यूएसएआईडी) और भारत सरकार के पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की पाँच साल की संयुक्त पहल है। अंतर्राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान केंद्र (सीआईएफओआर)–कृषिवानिकी में अनुसंधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय परिषद (आईसीआरएएफ) के नेतृत्व में आठ कंसोर्टियम भागीदारों की एकजुट ताकत के साथ, यह पहल आजीविका और पारिस्थितिकी तंत्र के लाभ के लिए भारत में वनों के बाहर के पेड़ों के क्षेत्र का विस्तार करने के लिए प्रतिबद्ध है।

वैश्विक जलवायु को नियंत्रित करने में वनों के बाहर के पेड़ों का महत्व

जलवायु में परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए वनों के बाहर पेड़ एक प्राकृतिक समाधान हैं। जंगलों के बाहर पेड़ महत्वपूर्ण कार्बन सिंक हैं, साथ ही पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं, परिदृश्य बहाली, जैव विविधता के संरक्षण जैसे लाभ प्रदान करने में टीओएफ का अहम योगदान है। परन्तु जलवायु परिवर्तन के लिए नीति और योजना में वनों के बाहर के पेड़ों को उनकी क्षमताओं के अनुसार शामिल नहीं किया है।कार्बन पृथक्करण और भंडारण (कार्बन सेक्वेस्ट्रेशन एंड स्टोरेज) के माध्यम से वनों के बाहर के पेड़ वैश्विक जलवायु को नियंत्रित करने में एक अहम् भूमिका निभाते हैं। एक हालिया विश्लेषण में पश्चिम अफ्रीका में 1.3 मिलियन हेक्टेयर में वनों के बाहर 1.8 बिलियन से अधिक पृथक पेड़ों का मानचित्रण किया गया है, जो पहले रेगिस्तानी या अत्यधिक निम्नीकृत माने जाने वाले सवाना क्षेत्रों में पेड़ों का अपेक्षाकृत उच्च और अप्रत्याशित घनत्व है। अनुमान है कि यहाँ कार्बन भंडार 22 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर तक हो सकता है, जो वैश्विक

बायोमास मैपिंग में अनुमान से अधिक है और महत्वपूर्ण बात यह है कि ये संसाधन प्राकृतिक जलवायु समाधानों पर अंतरराष्ट्रीय बातचीत से छिपा हुआ है। वायुमंडलीय कार्बन को हटाना और इसे स्थलीय जीवमंडल में संग्रहीत करना उन विकल्पों में से एक है, जिन्हें ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन की भरपाई के लिए प्रस्तावित किया गया है (अल्ब्रेक्ट और कांडजी, 2003)।

आईपीसीसी का अनुमान है कि ग्लोबल वार्मिंग को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के लिए भविष्य की सभी संभावित क्रियाओं में भूमि क्षेत्र (कृषि, वानिकी और अन्य भूमि उपयोग, या एएफओएलयू) से महत्वपूर्ण कार्बन निष्कासन शामिल होगा–उसके लिए हमें 2050 तक वन क्षेत्र में 950 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि करनी होगी। वृक्षारोपण को बढ़ाने के लिए हमारे पास वन क्षेत्र के अंतर्गत सीमित भूमि है। ऐसी स्थिति में, कृषिवानिकी के माध्यम से वनों के बाहर पेड़ों में विस्तार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कृषिवानिकी जलवायु परिवर्तन अल्पीकरण में भूमि आधारित विक्लपों में प्राकृतिक–वन बहाली के बाद दूसरा सबसे अच्छा क्षेत्र है। यह लकड़ी के वृक्षारोपण की तुलना में सात गुना अधिक प्रभावी है और यह सतत विकास लक्ष्यों (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स) को प्राप्त करने, जैव विविधता के संरक्षण और मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण.से निपटने में मदद करता है। कृषिवानिकी प्रणाली में काफी मात्रा में कार्बन जमा होता है। कृषिवानिकी प्रणालियों की कार्बन पृथक्करण क्षमता 12–228 टन प्रति हेक्टेयर के बीच अनुमानित है जिसका औसत मूल्य 95 टन प्रति हेक्टेयर है। कृषिवानिकी को क्योटो प्रोटोकॉल के तहत एक सतत भूमि उपयोग प्रणाली के रूप में अपनाया गया जो बायोमास में कार्बन पृथक्करण क्षमता के साथ अपरिहार्य जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सभी घरेलू 'राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (एनडीसी) शमन गतिविधियों में से 50 प्रतिशत से अधिक में कृषिवानिकीको विशेष रूप से शामिल किया जा रहा है। बॉन चौलेंज जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन में वन परिदृश्य पुनर्स्थापन के मूल्य को महत्त्व देता है साथ ही यह भी मानता है कि केवल वन दृष्टिकोण गैर–वन परिदृश्यों में जलवायु–स्मार्ट भूमि–आधारित शमन विकल्पों के अवसरों को खो देगा। भारत ने वर्ष 2021 में, ग्लासगो (स्काटलैंड) में आयोजित पार्टियों के सम्मेलन (कांफ्रेंस ऑफ द पार्टीज)–सीओपी 26 जलवायु शिखर सम्मेलन में घोषणा की थी कि वह पाँच सूत्री कार्य योजना के हिस्से के रूप में 2070 तक कार्बन तटस्थता (कार्बन न्यूट्रैलिटी) तक पहुँच जाएगा। इसमें कोई दो राय नहीं है कि वनों के बाहर के पेड़ों के क्षेत्र में वृद्धि (विशेष रूप से कृषिवानिकी के द्वारा) भारत के इस लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान करेगी। तालिका में 1 कुछ अध्ययनों के उदाहरण दिए गए हैं जहाँ कृषिवानिकी को कार्बन पृथक्करण और कार्बन भंडारण की क्षमता के संदर्भ में दिखाया गया है।

सूक्ष्म-जलवायु को नियंत्रित करने में वनों के बाहर के पेड़ों का महत्व

गहन रूप से संशोधित परिदृश्यों के सूक्ष्म–जलवायु (माइक्रॉक्लाइमेट) को नियंत्रित करने में भी वनों के बाहर के पेड़ों का अहम् योगदान है। बढ़ा हुआ तापमान शहरी क्षेत्रों में विशेष रूप से बड़ी समस्या है। दुनिया भर के शहरों में अत्यधिक गर्म गर्मी के दिनों की व्यापक रूप से रिपोर्ट सामने आयी हैं। शहरी क्षेत्रों में तापमान आसपास के ग्रामीण इलाकों की तुलना में कुछ डिग्री अधिक गर्म होता है, इसे शहरी ताप द्वीप प्रभाव (अर्बन हीट आइलैंड इफेक्ट) कहा जाता है। शहरी पेड़ वनों के बाहर के पेड़ों का एक अभिन्न अंग हैं। शहरी पर्यावरण में पेड़ और वनस्पति ताप द्वीप प्रभाव को कम करते हैं। ऐसा देखा गया है कि पेड़ और वनस्पति वाष्पीकरण–उत्सर्जन (इवापोट्रांस्पिरेशन) के माध्यम से छाया और ठंडक प्रदान करके सतह और हवा के तापमान को कम करते हैं। तीन सो आठ (308) अध्ययनों की एक समीक्षा में पाया गया कि शहरी गैर–हरित क्षेत्रों की तुलना में शहरी वन औसतन 1.6 डिग्री सेल्सियस ठंडे थे।

शहरी क्षेत्रों की हरियाली शहरी ताप द्वीप प्रभाव को कम करने में एक प्रभावी, टिकाऊ और प्रकृति–आधारित रणनीति है। कई अध्ययन शहरी वायु तापमान पर वृक्ष आवरण के प्रभावों का विश्लेषण करते हैं। कोनारस्का और अन्य (2016) ने एक

तालिका 1 कार्बन पृथक्करण और भंडारण के द्वारा जलवायु नियंत्रण प्रणाली के रूप में कृषिवानिकी के कुछ उदाहरण

कृषिवानिकी प्रणाली	अध्ययन क्षेत्र	मुख्य परिणाम	संदर्भ
गृह उद्यान (होमगार्डेन)	लैंपुंग प्रांत, सुमात्रा, इंडोनेशिया	प्रति गृह उद्यान कुल कार्बन 56–174 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर (औसत 107 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर)	रोशेत्को और अन्य (2002)
कृषि वन संवर्धन (अग्रिसिल्वीकल्चर)	छत्तीसगढ़, मध्य भारत	कृषिवानिकी प्रणाली की औसत वनस्पति (जमीन के ऊपर और नीचे) कार्बन–पृथक्करण क्षमता 1.26 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष अनुमानित की गई है।	स्वामी और पुरी (2005)
उद्यानस्थल (पार्कलैंड्स), गृह उद्यान (होमगार्डेन) और वृक्ष क्षेत्र (वूडलोट्स)	म्वांगा जिला, किलिमंजारो, तंजानिया	कृषिवानिकी पद्यतियों की विविधता ने जमीन के ऊपर 10.7 से 57.1 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर बीच कार्बन भंडार संग्रहीत किया।	चार्ल्स और अन्य (2014)
वन–चरागाह तंत्र (सिल्वोपासतोराल सिस्टम्स)	कोलम्बिया, दक्षिण अमेरिका	कार्बन भंडार का मान 5 और 122 टन प्रति हेक्टेयर के बीच पाया गया।	अयनेकुलु और अन्य (2020)
लघु जोत धारक बहुकार्यात्मक कृषिवानिकी (स्मालहोल्डर मल्टिफंक्शनल एग्रोफोरेस्ट्री)	वन महाविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान, मेट्टुपालयम, तमिलनाडु, भारत	समग्र रूप से, 0.75 एकड़ भूमि में स्थापित बहुकार्यात्मक कृषिवानिकी वनस्पति और मृदा से क्रमश: 2.23 टन और 11.5 टन कार्बन पृथक करने में सक्षम है।	कीर्तिका और पार्थिबन (2022)
पारंपरिक उद्यानस्थल कृषिवानिकी (ट्रेडिशनल पार्कलैंड सिस्टम्स)	माली का सेगौ क्षेत्र, पश्चिम अफ्रीकी सहेल	उद्यानस्थल कृषिवानिकी में कुल कार्बन भंडार 49.8–87.3 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर के बीच परिमाणित किया गया है।	ताकीमोटो और अन्य (2008)
देहेसा पशु उत्पादन प्रणाली (देहेसा कैटल प्रोडक्शन सिस्टम)	स्पेन, यूरोप	देहेसा प्रणालियों में पेड़ों की औसत कार्बन–पृथक्करण दर 0.07 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष पायी गई ।	रेयेस–पालोमो और अन्य (2022)
देशज कृषिवानिकी प्रणालियाँ (इंडिजेनस एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम्स)	रिट घाटी का दक्षिण–पूर्वी ढाल, गेडियो क्षेत्र, इथियोपिया	कुल औसत सिम्युलेटेड कार्बन स्टॉक (बायोमास और मृदा) 209 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर से लेकर 301 टन कार्बन प्रति हेक्टेयर तक पाया गया।	नेगाश और कनीनेन (2015)

*यहाँ संदर्भ की सीमित जानकारी दी गई है।

शोध पाया कि गोथेनबर्ग (स्वीडन) में सड़क घाटियों के भीतर पेड़ों के कारण औसत दिन के हवा के तापमान में 0.5–1 डिग्री सेल्सियस की कमी थी। फीनिक्स, एरिजोना (यूएसए) में हुए एक अध्ययन में देखा गया कि यदि पेड़ों की कैनोपी में 10 से 15 प्रतिशत तक वृद्धि होती है तो हवा के तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की कमी आती है। वृक्षविहीन शहरी हरे स्थान भूमि की सतह का तापमान (लैंड सरफेस टेम्परेचर–एलएसटी) को कम करने में कुल मिलाकर कम प्रभावी हैं, और उनका शीतलन प्रभाव शहरी वृक्षों से प्रेरित शीतलन की तुलना में लगभग 2–4 गुना कम है। एक बड़ा पेड़ प्रतिदिन 450 लीटर पानी वाष्पित कर सकता है और वाष्पीकरण प्रक्रिया को चलाने के लिए इसमें लगभग 1000 मेगाजूल ताप ऊर्जा की खपत होती है और इस तरह शहरी पेड़ गर्मियों में तापमान को काफी कम कर सकते हैं। शहरी पेड़ द्वारा छाया और शीतलन प्रभाव न केवल गर्म मौसम में ऊर्जा लागत को कम करने में सहायक है बल्कि सीधे कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, और बहुत सूक्ष्म कण पदार्थ (पार्टिकुलेट मैटर –पीएम) और वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों (वोलेटाइल आर्गेनिक कंपाउंड्स–वीओसी) के उत्सर्जन में भी कमी लाते हैं। गर्मियों के मौसम में घरों को छाया देने और सर्दियों में हवा की गति को कम करने के माध्यम से सड़क के पेड़ शहरी क्षेत्रों में हीटिंग और एयर कंडीशनिंग के लिए ऊर्जा के उपयोग को काफी कम कर सकते हैं। सड़क पर पेड़ों की छतरियां सूरज की रोशनी को सीधे जमीन तक

पहुंचने से रोकती हैं और गर्मी के दिनों में पैदल चलने वालों को छाया प्रदान करती हैं। कृषिवानिकी (वनों के बाहर के पेड़ों एक महत्वपूर्ण उदाहरण) कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र के माइक्रॉक्लाइमेट को भी नियंत्रित करती है। कृषिवानिकी में पेड़ फसलों को वितान (कैनोपी) द्वारा सूर्य की रोशनी से बचाते हैं और इस प्रकार वाष्पीकरण–उत्सर्जन को कम करते हैं। वृक्ष–आधारित फसल प्रणाली फसलों को अत्यधिक वर्षा और उच्च तापमान से बचाती है।

निष्कर्ष

वनों के बाहर के पेड़ों के महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद, टीओएफ को बड़े पैमाने पर वन संरक्षण, पारिस्थितिक पुनर्स्थापन, जलवायु परिवर्तन और उत्पादकता के बारे में बातचीत के दौरान अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। वर्तमान समय में उच्च कार्बन–घनत्व वाले वनों के अलावा अन्य परिदृश्यों सहित विभिन्न परिदृश्यों में जलवायु परिवर्तन संबंधी कार्यवाहियों को लागू करने की तत्काल आवश्यकता है, जिसमें टीओएफ अहम भूमिका निभा सकता है। वनों के बाहर के पेड़ों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने से नेट–शून्य लक्ष्यों (नेट–जीरो गोल्स) को पूरा करने में आसानी होगी। यदि कृषिवानिकी प्रणालियों को वैश्विक स्तर पर लागू किया जाता है तो इस सदी के अंत तक हम कार्बन की महत्वपूर्ण मात्रा को वायुमंडल से हटा सकते हैं। हमें जलवायु कार्यों का समर्थन करने के लिए खाली भूमि और अन्य निम्नीकृत भूमि पर अधिक वृक्षारोपण की आवश्यकता होगी। हमें लोगों को वृक्षारोपण और टीओएफ के संरक्षण के लिए प्रोत्साहित करना होगा। इसके अलावा हमें जीवाश्म ईंधन के उपयोग को कम करने की आवश्यकता है और शीतलन और बिजली की जरूरतों के लिये सौर एवं पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के उपयोग को बढ़ाने की जरूरत है। साथ ही हमें लोगों को वनों के बाहर पेड़ों की भूमिका जैसे जलवायु को नियंत्रित करना, लकड़ी की आपूर्ति करना, मृदा अपरदन को रोकना, औषधि प्रदान करना, जीव जंतुओं को आवास प्रदान करना इत्यादि बारे में जागरूक करना होगा। जलवायु परिवर्तन से निपटने के उपायों (जैसे कि वनों के बाहर पेड़ लगाना, कृषिवानिकी को बढ़ावा देना एवं वनों की कटाई को रोकना इत्यादि) को राष्ट्रीय नीतियों, रणनीतियों और योजना में एकीकृत करने की आवश्यकता है।

कृषिवानिकी में उच्च गुणवत्ता वाले पौधों के लिए पादप ऊतक संवर्धन का महत्व

हृदयेश अनुरागी, स्नेहा जैन, दीपक, आशाराम, नरेश कुमार,अरूण कुमार हाण्डा एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

ऊतक संवर्धनः एक परिचय

जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पौधों में आनुवंशिक सुधार, उसके निष्पादन से सुधार आदि में ऊतक संवर्धन एक अहम भूमिका निभाता है। इस तकनीक के उपयोग से पर्यावरण की अनेक ज्वलंत समस्याओं के निराकरण में मदद मिली हैं। पौधों में ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) एक ऐसी तकनीक है जिसमें पादप के किसी भी कोशिकाएँ, ऊतक, या अंग जैसे पत्ता, बड, जड़, तना, पुष्प आदि को निर्जर्मित परिस्तिथियों में पोषक माध्यम पर उगाया जाता है। यह 'पूर्ण शक्तिता' (टोटल पोटेंसी) के सिद्धांत पर आधारित है जिसके अनुसार पौधे की प्रत्येक कोशिका एक पूर्ण पौधे का निर्माण करने में सक्षम होती है। इस प्रक्रिया में संवृद्धि मीडियम या संवर्धन घोल महत्वपूर्ण है, इसका उपयोग पौधों के ऊतकों को बढ़ाने के लिए किया जाता है क्योंकि इसमें 'जेली' के रूप में विभिन्न पौधों के पोषक तत्व शामिल होते हैं जोकि पौधों के विकास के लिए जरूरी है। इस तकनीक से सालभर, बहुतायत संख्या में उच्च गुणवत्ता वाले, रोगमुक्त पौधे बनाये जा सकते हैं। पादप ऊतक संवर्धन नियंत्रित वातावरण में आनुवंशिक रूप से समान, रोग–मुक्त पौधों का उत्पादन करने की क्षमता के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री सुनिश्चित करता है। छोटे, स्वस्थ ऊतक नमूनों से शुरुआत करके, यह तकनीक बड़ी मात्रा में पौधों में तेजी से गुणन और सुसंगत गुणवत्ता सक्षम बनाती है। यह आनुवंशिक सुधार और विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन की सुविधा भी देता है, दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण का समर्थन करता है, और कड़े गुणवत्ता नियंत्रण उपायों को बनाए रखता है। ये कारक सामूहिक रूप से यह सुनिश्चित करते हैं कि परिणामी रोपण सामग्री मजबूत, विश्वसनीय और वाणिज्यिक और संरक्षण दोनों उद्देश्यों के लिए उपयुक्त है। यह रोगमुक्त पौधों के विकास और कम आय वाले क्षेत्रों में पौधों की खेती के लिए फायदेमंद है। ऊतक संवर्धन का उपयोग करके गरीब देशों में ऑयलपाम, केले, केला, बैंगन, अनानास, रबर के पेड़, टमाटर और शकरकंद का सफलतापूर्वक उत्पादन किया गया है। इस तकनीक के लिए माइक्रो सूक्ष्म प्रवर्धन शब्द का इस्तेमाल भी किया जाता है। 1902 में हैबरलेंड ने कोशिका की पूर्ण शक्तिता की संकल्पना दी थी इसलिए इन्हें पौधों के ऊतक संवर्धन का जनक कहा जाता है। ऊतक संवर्धन का प्रयोग आधी सदी से भी अधिक समय से व्यापक रूप से किया जा रहा है और अब इसका उपयोग विकासशील देशों में खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण कई फसलों को बेहतर बनाने के लिए किया जाता है, जिनमें चावल, आलू और केला जैसी प्रमुख खाद्यान्नें शामिल हैं। ऊतक संवर्धन की कुछ सबसे बड़ी सफलताएँ वानस्पतिक रूप से प्रचारित जड़ वाली फसलों के साथ प्रदर्शित की गई हैं। उदाहरण के लिए, चीन के शांदोंग प्रांत में 500,000 हेक्टेयर में रोग–मुक्त शकरकंदों को अपनाया गया है, जिससे उपज में 30–40% की वृद्धि हुई है।

कृषिवानिकी में पेड़ों को कृषि परिदृश्य में एकीकृत करना, पारिस्थितिक और आर्थिक लाभ बढ़ाना शामिल है। सफल कृषिवानिकी पद्धतियों के लिए गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री (क्यूपीएम) महत्वपूर्ण है। यह पेड़ों के स्वस्थ विकास और अस्तित्व को सुनिश्चित करता है, अंततः पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं, जैव विविधता और उत्पादकता को प्रभावित करता है। आवश्यकता को पूरा करने के लिए, नर्सरी सर्वोत्तम प्रथाओं का पालन करके उच्च गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री का उत्पादन कर सकती हैं, जैसे कि रोग–मुक्त स्टॉक, उचित पॉटिंग और लेबल प्रमाणीकरण का उपयोग करना। वृक्ष प्रजनन कार्यक्रम उन किस्मों को विकसित करने पर भी ध्यान केंद्रित कर सकते हैं जो कृषिवानिकी प्रणालियों के लिए

बेहतर अनुकूल हैं। क्यूपीएम को प्राथमिकता देकर किसान कृषिवानिकी का पूरा लाभ उठाकर बदलते मौसम में उत्पादकता, आजीविका और खाद्य सुरक्षा में सुधार कर सकते हैं।

ऊतकसंवर्धनकी प्रक्रिया कैसे होती है?

एक्सप्लांट का चयन और तैयारी: सबसे पहले पौधे का एक स्वस्थ भाग (प्रत्यारोपण) जैसे कि अंकुर के सिरे, पत्ती के खंड, या बीज का चयन करते हैं। इसके बाद इथेनॉल या सोडियम हाइपोक्लोराइट जैसे कीटाणुनाशकों का उपयोग करके सतह के दूषित पदार्थों को नष्ट करने के लिए एक्सप्लांट को कीटाणुरहित करते हैं।

कल्चर का प्रारम्भ: एक उपयुक्त कल्चर माध्यम तैयार करते हैं जिसमें आवश्यक पोषक तत्व, विटामिन, हार्मोन (जैसे ऑक्सिन और साइटोकिनिन) और एक जेलिंग एजेंट शामिल होते हैं ।

ऊष्मायन: उचित प्रकाश, तापमान और आर्द्रता के साथ नियंत्रित वातावरण में कल्चर को ऊष्मायन करते हैं।

अवलोकन: कल्चर के प्रकार के आधार पर कैलस, तना या जड़ों के विकास के लिए एक्सप्लांट की वृद्धि की निगरानी करते हैं।

उप-संवर्धन और गुणन: आगे की वृद्धि और गुणन को बढ़ावा देने के लिए बढ़ती संवृद्धि के कुछ हिस्सों को नए माध्यम में स्थानांतरित करते हैं। पौधों की संख्या बढ़ाने या विशिष्ट विकास चरणों के लिए एक अलग प्रकार के माध्यम में स्थानांतरित करने के लिए इस चरण को अक्सर दोहराया जाता है। एक ही एक्सप्लांट से कई पौधे तैयार करने के लिए माइक्रोप्रोपेगेशन या सेलसस्पेंशन जैसी तकनीकों का उपयोग करते हैं।

विभेदन और अंग निर्माण: हार्मोन सांद्रता और विकास स्थितियों को समायोजित करके ऊतकों के विभेदन को अंकुर, जड़ या भ्रूण जैसे अंगों में प्रेरित किया जाता है और ऊतकों को अच्छी तरह से गठित टहनियों और जड़ों के साथ पूर्ण पौधों में विकसित होने दिया जाता है।

अनुकूलन: ऊतक संवर्धन पौधों को नियंत्रित प्रयोगशाला वातावरण में उगाए जाने के बाद बाहरी परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है। यह प्रक्रिया प्रकाश की तीव्रता, तापमान और आर्द्रता मेंपरिवर्तन के कारण होने वाले झटके को दूर करने में मदद करती है। अनुकूलन में प्राकृतिक प्रकाश का क्रमिक संपर्क, बढ़ा हुआ तापमान और अलग–अलग आर्द्रता का स्तर शामिल है। यह प्रक्रिया पौधों को ग्रीनहाउस या खेत में रोपाई के लिए तैयार करती है, जिससे तनाव कम होता है और उनके सफल विकास की संभावना बढ़ जाती है। ऊतक संवर्धन पौधों को प्रयोगशाला सेटिंग के बाहर पनपने के लिए उचित अनुकूलन महत्वपूर्ण है।

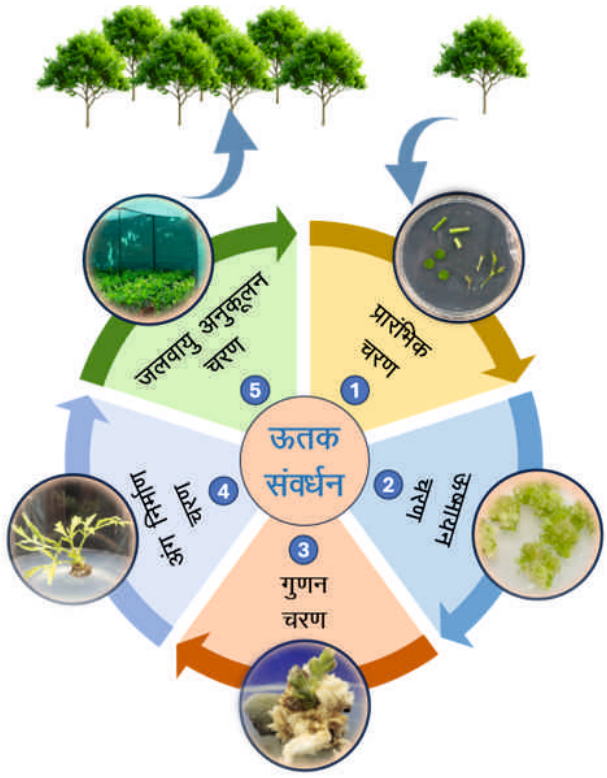

ऊतक संवर्धन के विभिन्न चरण

ऊतक संवर्धन के प्रकार

पादप ऊतक संवर्धन को प्रयुक्त एक्सप्लांट के प्रकार के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जो पौधे के उस विशिष्ट भाग को संदर्भित करता है जहाँ से संवर्धन की शुरुआत की जाती है। प्रत्येक प्रकार का एक्सप्लांट अलग–अलग लाभ और अनुप्रयोग प्रदान करता है।

बीज संवर्धनः पूर्ण विकसित पौधे उत्पन्न करने के लिए बीजों को काँच के अन्दर/प्रयोगशाला में संवर्धित किया जा सकता है। यह बाँझ पौधों को उगाने के लिए ऊतकसंवर्धन के सर्वोत्तम तरीकों में से एक है। बीज संवर्धन कीटाणुरहित रूप से उगाए गए पौधों से विभिन्न प्रकार के एक्सप्लांट प्राप्त करने के लिए किया जाता है जो एसेप्टिक ऊतक के बेहतर रख–रखाव में मदद करते हैं।

भ्रूण संवर्धनः भ्रूण संवर्धन एक अपरिपक्व या परिपक्व भ्रूण को बाँझ रूप से अलग करके और उसे विकसित करके एक व्यवहार्य पौधा विकसित करना है। कुछ पौधों में, बीज की निष्क्रियता यांत्रिक प्रतिरोध, रासायनिक अवरोधकों या भ्रूण को ढकने वाली संरचनाओं के कारण भी हो सकती है। भ्रूण को काटकर और पोषक माध्यम में उनका संवर्धन करके अंकुर विकसित करने में मदद मिलती है।

मेरिस्टेम कल्चरः अनावृत बीजी और आवृत बीजी की टहनियों के शीर्षस्थ मेरिस्टेम को रोग–मुक्त पौधे प्राप्त करने के लिए संवर्धित किया जा सकता है। मेरिस्टेम टिप, जो 0.2–0.5 मिमी. के बीच होती है, अक्सर रोगाणुमुक्त पौधे उत्पन्न करती है और इस विधि को मेरिस्टेम–टिप कल्चर कहा जाता है।

कली संवर्धनः कलियों में पत्ती की धुरी में सक्रिय मेरिस्टेम होते हैं जो एक तना में विकसित होने में सक्षम होते हैं। एकल नोड संवर्धन वह है जहाँ तने के प्रत्येक नोड को काटा जाता है और पोषक माध्यम पर बढ़ने दिया जाता है ताकि अक्ष से एक शूटटिप विकसित हो सके जो अंततः एक नए पौधे में विकसित होता है। अक्षीय कलीविधि में, अक्षीय कलियों को पत्ती की धुरी से अलग किया जाता है और थोड़ी उच्च साइटोकाइनिन सांद्रता के तहत शूटटिप में विकसित किया जाता है।

कैलस कल्चरः कैलसइनविट्रोकल्चर स्थितियों के तहत किसी भी तरह के एक्सप्लांट से उत्पन्न होने वाली कोशिकाओं का कमोबेश असंगठित विभेदित द्रव्यमान है। कैलस में कोशिकाएँ पैरेन्काइमेटस होती हैं, लेकिन कोशिकाओं का एक समरूप द्रव्यमान हो भी सकता है और नहीं भी। विभिन्न पौधों की प्रजातियों के कैलस ऊतक संरचना और वृद्धि की आदतों में भिन्न हो सकते हैं। कैलस की वृद्धि एक्सप्लांट के प्रकार और वृद्धि की स्थितियों जैसे कारकों पर भी निर्भर करती है। कैलसप्रेरण के बाद, इसे विकास और रख–रखाव के लिए एक उपयुक्त नए माध्यम के साथ नियमित रूप से उपसंस्कृति किया जा सकता है।

सेलस स्पेंशन कल्चरः किसी भी तरह के एक्सप्लांट ऊतकों या कैलस से प्राप्त व्यक्तिगत कोशिकाओं की वृद्धि को सेलसस्पेंशन कल्चर कहा जाता है। इन्हें ऊतक एक्सप्लांट/कैलस के टुकड़ों को एक तरल माध्यम (बिना अगर) में स्थानांतरित करके और फिर कोशिकाओं के वातन और फेलाव दोनों प्रदान करने के लिए उन्हें एक शेकर पर रखकर शुरू किया जाता है। कैलस कल्चर की तरह, कोशिकाओं को भी नए माध्यम में उप–संवर्धन किया जाता है।

ऊतक संवर्धन तकनीक के लाभ

पादप ऊतक संवर्धन किसानों को कई लाभ प्रदान करता है, जिससे उत्पादकता और स्थिरता दोनों बढ़ती है। यहाँ कुछ प्रमुख लाभ दिए गए हैं:

तीव्र उत्पादनः ऊतक संवर्धन पौधों की तीव्र वृद्धि की अनुमति देता है, जिससे अपेक्षाकृत कम अवधि में बड़ी संख्या में एक समान पौधे तैयार होते हैं। इससे फसलों विशेषकर उच्च मूल्य वाली या दुर्लभ प्रजातियों की उपलब्धता में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है।

रोग–मुक्त पौधेंः ऊतक संवर्धन का उपयोग करके किसान रोग–मुक्त पौधे पैदा कर सकते हैं। यह तकनीक पारंपरिक रोपण सामग्री में मौजूद रोगजनकों को खत्म करने में मदद करती है, जिससे फसलें स्वस्थ होती हैं और संभावित रूप से अधिक पैदावार होती है।

ऊतक संवर्धनः ऊतक संवर्धन पौधों के बीच आनुवंशिक एकरूपता सुनिश्चित करता है। इसका मतलब यह है कि टिशूकल्चर से उगाए गए सभी पौधों में समान वांछनीय गुण होंगे, जैसे आकार, आकृति और उपज, जो प्रबंधन को सरल बना सकते हैं और फसल की स्थिरता में सुधार कर सकते हैं।

दुर्लभ या लुप्तप्राय प्रजातियों का संरक्षणः दुर्लभ या लुप्तप्राय पौधों की प्रजातियों को उगाने या संरक्षित करने में शामिल किसानों के लिए, ऊतक संवर्धन इन पौधों को संरक्षित करने की एक विधि प्रदान करता है। इसका उपयोग इन प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवासों या व्यावसायिक खेती में फिर से शामिल करने के लिए भी किया जा सकता है।

अंतरिक्ष दक्षताः ऊतक संवर्धन प्रयोगशालाओं या ग्रीनहाउस जैसे नियंत्रित वातावरण में किया जा सकता है, जिसके लिए पारंपरिक क्षेत्र में रोपण की तुलना में कम जगह की आवश्यकता होती है। इससे अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में बड़ी संख्या में पौधे उगाना संभव हो जाता है।

बेहतर गुणवत्ता नियंत्रणः ऊतक संवर्धन वातावरण की नियंत्रित स्थितियाँ यह सुनिश्चित करन`में मदद करती हैं कि पौधों को इष्टतम परिस्थितियों में उगाया जाता है, जिससे उच्च गुणवत्ता वाली पौध सामग्री प्राप्त होती है।

मौसमी स्थितियों पर निर्भरता कमः ऊतक संस्कृति पारंपरिक खेती की तरह मौसमी परिवर्तनों या पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होती है। इसका मतलब यह है कि पौधों को सालभर उगाया जा सकता है, जिससे अधिक सुसंगत उत्पादन कार्यक्रम की अनुमति मिलती है।

उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए लागत प्रभावीः उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए जहाँ पारंपरिक प्रसार विधियाँ बहुत धीमी या महंगी हो सकती हैं, ऊतक संवर्धन समान पौधों की उच्च उपज प्रदान करके लागत प्रभावी समाधान प्रदान कर सकता है।

चुनौतियाँ

ऊतक संवर्धन पौधों को अपनाना किसानों के लिए खेल बदलने जैसा हो सकता है, लेकिन यह अनूठी चुनौतियों के साथ भी आता है। एक बड़ी बाधा ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए आवश्यक उच्च प्रारंभिक निवेश है। इसके अतिरिक्त, किसानों को सार्वजनिक धारणा के मुद्दों पर काबू पाने की आवश्यकता हो सकती है, क्योंकि कुछ लोग ऊतक–संवर्धित पौधों की सुरक्षा और गुणवत्ता के बारे में संदेह कर सकते हैं। इसके अलावा, गुणवत्तापूर्ण शुरूवाती सामग्री की निरंतर आपूर्ति बनाए रखना और रोपण के बाद देखभाल का प्रबंधन करना भी चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है। हालाँकि, उचित प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और बाजार की माँग के साथ, इन चुनौतियों पर काबू पाया जा सकता है, जिससे फसल की पैदावार और टिकाऊ कृषि पद्धतियों में वृद्धि होगी।

ऊतक संवर्धन तकनीक से जनित सागौन के उच्च गुणवत्ता वाले पौधे

भारत में ऊतक संवर्धन पेड़ों के उदाहरण

ऊतक संवर्धन तकनीक ने भारत में वानिकी और बागवानी के क्षेत्र में क्रांति ला दी है। भारत में, शोधकर्ताओं ने ऊतक संवर्धन के माध्यम से विभिन्न वन वृक्ष प्रजातियों जैसे शीशम, सागौन,

सिरिस, चंदन, रबर, आदि, की सफलतापूर्वक खेती की है। इसी तरह, चाय, नींबू, केला, सेब, अनार, स्ट्रॉबेरी, आदि, कुछ बागवानी वृक्ष की प्रजातियाँ हैं जिनको हमारे देश में बड़े और जागरूक किसान अपने खेतों पर वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग करके उगाया जा रहा है ।

निष्कर्ष

गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री का उत्पादन कृषि में फसल की सफलता और उपज में सुधार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्नत तकनीकों जैसे कि पादप ऊतक संवर्धन ने इस क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं, जिससे नियंत्रित वातावरण में रोग–मुक्त, आनुवंशिक रूप से समान पौधों का उत्पादन संभव हुआ है। यह विधि तेजी से पौधों की वृद्धि और गुणन की क्षमता प्रदान करती है, जिससे फसल की उत्पादकता में वृद्धि और दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण में मदद मिलती है। हालांकि, पादप ऊतक संवर्धन की तकनीक के कई लाभ हैं, इसकी व्यापक स्वीकृति और अपनाने में चुनौतियाँ भी हैं। उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता, कीटाणुरहित बनाए रखने की कठिनाई, और जटिल प्रक्रियाएं प्रमुख बाधा हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, आपूर्ति श्रृंखला के मुद्दे, सीमित ज्ञान, और नियामक बाधाएँ भी तकनीक की स्वीकृति को प्रभावित करती हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों का संयोजन, जैसे कि पादप ऊतक संवर्धन, किसानों को उनकी उत्पादकता बढ़ाने, खाद्य सुरक्षा में सुधार करने, और उनके आर्थिक स्थिरता को मजबूत करने में मदद कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि इन तकनीकों को अधिक सुलभ बनाने के लिए आवश्यक संसाधन, प्रशिक्षण और समर्थन प्रदान किया जाए, ताकि किसान इस तकनीक के लाभ को पूरी तरह से समझ सकें और उसका प्रभावी उपयोग कर सकें। इस प्रकार, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री की उपलब्धता और नवाचार के माध्यम से, हम कृषि की स्थिरता और उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं।

पोषण और आजीविका सुरक्षा के लिए अमरूद आधारित कृषिवानिकी

रितिका मौर्या[1], आराधना सिंह[2], संजना मौर्या[2], नरेश कुमार[2], आशा राम[2], अशोक यादव[2], सोवन देबनाथ[2], हृदयेश अनुरागी[2], ए.के. हांडा[2] एवं ए. अरूणांचलम[2]

[1]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

[2]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

भारत को दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा फल उत्पादक देश माना जाता है। National Horticulture Database (2023) के अनुसार, भारत ने 112.61 मिलियन मीट्रिक टन फलों का उत्पादन किया है, जिसमें अमरूद का उत्पादन लगभग 5.59 मिलियन मीट्रिक टन है। भारत में लगभग 28.427 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र विभिन्न प्रकार के कृषिवानिकी वृक्षारोपणों के साथ लगाया गया है जिसमें कृषि–बागवानी प्रणाली लाभकारी मानी जाती है क्योंकि यह उत्पादन, लाभप्रदता, उर्वरता, विविधता और स्थिरता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाती है, जिससे आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। कृषि–बागवानी प्रणाली समग्र फसल उत्पादकता, उत्पादन स्थिरता, और दीर्घकालिक रूप में मृदा उर्वरता को सुधारने में अधिक प्रभावी होती है। इसलिए कृषि और वानिकी का समन्वय आर्थिक और पारिस्थितिकी तंत्र दोनों दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। अमरूद आधारित कृषिवानिकी एक प्रभावी प्रणाली है, जो किसानों के पोषण का स्रोत और आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रमुख साधन है। अमरुद (*Psidium guajava* L.) अपने पौष्टिक फलों, कम पानी की आवश्यकता और उच्च उत्पादन क्षमता के कारण किसानों के लिए लाभदायक साबित हो सकता है। अमरुद आधारित कृषिवानिकी में अमरुद की खेती के साथ अन्य फसलों का उत्पादन, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की क्षमता भी होती है।

कृषि वानिकी में अमरूद का महत्व

कृषिवानिकी एक मिश्रित कृषि प्रणाली है, जिसमें पेड़–पौधे और फसलें एक साथ उगाई जाती हैं। अमरूद एक तेजी से बढ़ने वाला फल वृक्ष प्रजाति है, जो मायर्टेसी (*Myrtaceae*) परिवार से संबंधित है। अमरूद विटामिन C, विटामिन A, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होता है। यह शरीर की प्रतिरोधी क्षमता को मजबूत करता है, हड्डियों को स्वस्थ बनाए रखता है और पाचन तंत्र को सुचारू करता है। इसके सेवन से कुपोषण से ग्रस्त क्षेत्रों में पोषण स्तर को बढ़ाने में

मदद मिलती है। विटामिन C की प्रचुर मात्रा होने के कारण यह रोग प्रतिरोधक फल भी है। अमरूद की सबसे अधिक उपज 23–28°C के औसत तापमान पर दर्ज की जाती है। प्रवर्धन विधियाँ जैसे बीज, कटिंग या ग्राफ्टिंग और एक्सप्लांट्स का उपयोग माइक्रो–प्रोपेगेशन के लिए किया जाता है।

अमरूद की किस्म जैसे अलाहाबाद सफेदा और लखनऊ 49, उच्च उत्पादन, रोग प्रतिरोधक क्षमता, और आर्थिक लाभ के कारण किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती है। लखनऊ 49 को सफेद अमरूद के रूप में भी जाना जाता है। यह 10 मीटर तक की ऊंचाई तक बढ़ता है। अन्य किस्मों की तुलना में लखनऊ 49 अमरूद का उत्पादन अधिक होता है, जो किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी साबित होता है। इससे प्रति हेक्टेयर 20–25 टन तक की उपज प्राप्त की जा सकती है। लखनऊ 49 जल्दी परिपक्व होने के साथ 4–5 साल में पूरी तरह से तैयार हो जाता है और साल में दो बार उत्पादन प्राप्त होता है – एक बार गर्मियों में और दूसरी बार सर्दियों में। लखनऊ 49 रोग प्रतिरोधी किस्म है, जिससे इस पररोगों का कम प्रभाव पड़ता है और इससे फसल को नुकसान का खतरा भी कम होता है। यह विशेष रूप से तना छिद्रक (Stem Borer) और फल मक्खी (Fruit Fly) जैसी कीटों के प्रति सहनशील है।

अमरूद के पौधे के विभिन्न भागों के उपयोग

भाग	उपयोग
फल	अमरूद का फल विटामिन C और A के साथ–साथ आयरन, फास्फोरस और कैल्शियम से भरपूर होता है। इससे जूस, जैम, जेली, पेस्ट, सिरप और चटनी बनाया जाता है।
पत्तिया	खासी, दस्त, अल्सर और मसूड़ों की सूजन के लिए दवा के रूप में उपयोग किया जाता है। अमरूद की पत्तियों में पाये जाने वाले यौगिक फंगिस्टेटिक और बैक्टीरियोस्टेटिक एजेंट के रूप में कार्य करते हैं।
छाल	अल्सर को ठीक करने और मासिक चक्र को नियंत्रित करने के लिए काढ़े के रूप में उपयोग किया जाता है।
फूल	सुगंधित और मधुमक्खियों के लिए अमृत का अच्छा स्रोत है।
लकड़ी	उपकरण निर्माण, बाड़ और जलाऊ लकड़ी के लिए उपयोग किया जाता है।
बीज	इसमें 5–13% तेल होता है जो आवश्यक फैटी एसिड से भरपूर होता है।

अमरूद आधारित कृषिवानिकी के लाभ

अमरूद आधारित कृषिवनिकी निम्नलिखित तरीकों से लाभकारी हो सकती है:

1. **कम पानी की आवश्यकता:** अमरूद का पौधा शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में भी उग सकता है, जिससे उन क्षेत्रों के किसानों को लाभ मिलता है, जहां पानी की कमी होती है।
2. **मिट्टी की उर्वरता में सुधार:** अमरूद के पेड़ मिट्टी में जैविक तत्वों की वृद्धि करते हैं, जिससे फसल उत्पादन में सुधार होता है।
3. **जलवायु अनुकूलन:** अमरूद का पौधा जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील होता है और विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में जीवित रह सकता है। इससे यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए एक आदर्श विकल्प बनता है।
4. **अंतरफसली खेती:** अमरूद के साथ अंतरफसलें उगाकर किसानों की आय को विविध किया जा सकता है। अमरूद के पेड़ों के बीच दाल, सब्जियाँ, और अन्य नकदी फसलें उगाई जा सकती हैं, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।
5. **आर्थिक लाभ:** अमरूद की खेती में कम लागत और उच्च लाभ होने की संभावना रहती है। इसकी पैदावार जल्दी होती है और इसे आसानी से बाजारों में बेचा जा सकता है। इसके अलावा, अमरूद का प्रसंस्करण करके अमरूद

जूस, जैम, कैंडी और जैली आदि तैयार किए जा सकते हैं, जो अतिरिक्त आय का स्रोत बन सकते हैं। अमरूद का निर्यात भी एक संभावित विकल्प है। अमरूद के पौधों की कीमत रु.25/- से रु.50/- प्रति पौधा होती है जबकि अमरूद से प्रति हेक्टेयर 20–25 टन फल प्राप्त किया जा सकता है। यदि बाजार में अमरूद की कीमत लगभग रु.15/- प्रति किलो ग्राम मानी जाए, तो प्रति हेक्टेयर वार्षिक आय रु.3,00,000/- से रु.4,00,000/- तक हो सकती है। प्रसंस्करण और अंतरफसल प्रणाली से अतिरिक्त रु.1,00,000/- से रु.2,00,000/- की आय प्राप्त की जा सकती है। जिससे अपेक्षित लाभ लागत अनुपात 5:1 से 7.5:1 तक हो सकता है। यह दर्शाता है कि अमरूद की खेती से किसानों को निवेश के मुकाबले कई गुना अधिक लाभ हो सकता है।

6. **पर्यावरणीय लाभः** अमरूद आधारित कृषिवानिकी न केवल आर्थिक रूप से फायदेमंद है, बल्कि यह पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है। पेड़ों की उपस्थिति से कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण होता है, जिससे जलवायु परिवर्तन को कम करने में मदद मिलती है। साथ ही यह प्रणाली जल संरक्षण, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और जैव विविधता को बनाए रखने में सहायक होती है।

अमरूद उत्पादन में नवीन और उन्नत तकनीकें

अमरूद की खेती में पारंपरिक तरीकों से अलग कई उन्नत और नवीन तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। इन तकनीकों से उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार होता है।

1. **उन्नत किस्में और संकर (Hybrid) बीजः** आजकल अमरूद की कई उन्नत और संकर किस्में उपलब्ध हैं, जिनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है और फलों की गुणवत्ता बेहतर होती है। 'लखनऊ 49' और 'अलाहाबाद सफेदा' जैसी किस्में उच्च उत्पादन और बेहतरीन स्वाद के लिए जानी जाती हैं। संकर बीजों के उपयोग से किसानों को अधिक उपज और अच्छे दाम मिल सकते हैं।

2. **ड्रिप सिंचाई प्रणाली (Drip irrigation):** अमरूद के पौधे कम पानी की आवश्यकता वाले होते हैं, लेकिन ड्रिप सिंचाई जैसी उन्नत सिंचाई प्रणालियाँ जल उपयोग दक्षता को बढ़ाती हैं। इससे पानी की बचत होती है और उत्पादन भी अधिक होता है। ड्रिप सिंचाई के उपयोग से सिंचाई लागत में कमी आती है और पौधों को नियमित रूप से पर्याप्त मात्रा में पानी मिलता रहता है, जिससे उनकी वृद्धि में तेजी आती है।

3. **पोषण प्रबंधन और जैविक खादः** अमरूद के पौधों को पर्याप्त पोषण मिलना आवश्यक है। किसानों को जैविक खाद, वर्मीकम्पोस्ट और फसल अवशेषों का उपयोग करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। जैविक खेती से उत्पादन की गुणवत्ता अधिक होती है।

4. **केनोपी प्रबंधन (Canopy Management):** अमरूद के पेड़ों की नियमित छँटाई से उनका आकार और संरचना बेहतर होती है। छँटाई के माध्यम से पेड़ की शाखाओं में हवा और रोशनी का प्रवेश बढ़ता है, जिससे पौधे स्वस्थ रहते हैं और रोगों का जोखिम कम हो जाता है।

चुनौतियाँ और समाधान

हालांकि अमरूद आधारित कृषिवानिकी के कई फायदे हैं, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे कि किसानों के बीच जागरूकता की कमी, सही तकनीकों की जानकारी का अभाव और बाजार में उचित मूल्य न मिल पाना। इन चुनौतियों का समाधान तकनीकी प्रशिक्षण, जागरूकता अभियानों और समर्थन के माध्यम से किया जा सकता है। किसानों को कृषिवानिकी की आधुनिक तकनीकों से अवगत कराकर और उन्हें वित्तीय सहायता देकर इस प्रणाली को अधिक सफल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

अमरूद आधारित कृषिवानिकी पोषण और आजीविका सुरक्षा का एक सशक्त माध्यम है। यह न केवल किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाता है, बल्कि पर्यावरणीय सुरक्षा और जलवायु अनुकूलन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अमरूद की खेती में नवीन तकनीकों और प्रसंस्करण के उपयोग से किसान अपने मुनाफे को कई गुना बढ़ा सकते हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में विकास और पोषण स्तर में सुधार हो सकता है।

'प्रकृति सुख'

त्रिदेव चतुर्वेदी
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

पर्यावरण संरक्षण हेतु पंछी और मानव का संवाद–

मैं मुक्त गगन का पंछी हूँ, उन्मुक्त स्वरों में गाता हूँ।
तुम जाल बिछाये क्यों रहते, मैं गीत सुनाने आता हूँ।
मुझ में–तुझ में बस भेद है क्या, मैं पंछी–तू एक मानव है।
मैं जिस प्रकृति का सेवक हूँ, तू उसका पाला एक दानव है।।

हैं और भेद बतलाऊँ मैं, उसको तुम झेल क्या पाओगे?
हाँ, लेकिन तुम मरकट वंशज हो, यह नीड़ उजाड़े जाओगे।
पर मैं इस भेद की गाथा को, प्रकृति के सम्मुख कहता हूँ।
मरकट के कष्ट सहे उनने, मैं कष्ट तुम्हारे सहता हूँ।।

प्रकृति में हम–तुम बड़े हुए, प्रकृति ने हमको पाला है।
मेरा दिल इस जैसा सुन्दर, लेकिन तेरा दिल काला है।
मैं विनय करूँ इस प्रकृति से, प्राणी में सुख तुम बाँटोगे।
लेकिन तुम निष्ठुर प्राणी हो, इस प्रकृति को ही काटोगे।।

मैं निर्मोही और चंचल हूँ, कोई मोह नहीं मेरे मन में।
मानव तू कपटी–चंचल है, लालच तेरे कण–कण तन में।
है अंत विनय मानव मेरी, जो आज तुझी से कहता हूँ।
तू प्रकृति के सुख और बढ़ा, मैं साथ तुम्हारा देता हूँ।।

———————

रबी एवं जायद ऋतु में दलहनी फसलों का अधिकाधिक उत्पादन बढ़ाने की वैज्ञानिक तकनीक

अनिल कुमार, अशोक यादव, बद्रे आलम, आशाराम, प्रद्युम्न सिंह, नरेश कुमार, हृदयेश अनुरागी एवं ए. अरूणाचलम

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003 (उ.प्र.)

भारत अनेक विविधताओं के साथ–साथ एक बड़ा कृषि प्रधान देश है। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि एक चिंता का विषय है इस विशाल जनसंख्या को भरपेट रोटी के साथ दाल सब्जी फल दूध माँस आदि का बोझ किसानों के ऊपर है किसान हरित क्रांति से पहले मुश्किल से 5 से 6 कुंतल उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त कर पाता था जबकि उस समय जनसंख्या वर्तमान की अपेक्षा कम थी अब वैज्ञानिकों की कड़ी मेहनत से यह उत्पादन वर्तमान में 15 से 20 कुंतल प्रति हेक्टेयर तक पहुँच गया है फिर भी दाल अनुसंधानकर्ता आगे भी उत्पादन बढ़ाने के लिए शोध में दिन–रात लगे हुए हैं।

भारत में मुख्य रूप से तीन ऋतुएँ में होती हैः खरीफ, रबी एवं जायद ऋतु और इन्हीं तीनों ऋतुओं में दालों वाली फसलें उगाई जाती हैं भारत की जलवायु अन्य देशों की अपेक्षा सभी के लिए अनुकूल होती है अब बात करते हैं इन ऋतु में उगाई जाने वाली दलहनी फसले जैसे चना, राजमा, मटर, मसूर, उड़द, मूँग, लोबिया, अरहर आदि इन फसलों का राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करें तो उत्पादन प्रति हेक्टेयर बढ़ाना बहुत जरूरी है क्योंकि भारत की विशाल जनसंख्या की कटोरी से दाल गायब होती जा रही है इस कारण अनेक बीमारियों से व्यक्ति ग्रसित हो रहा है क्योंकि दाल में बहुत अधिक प्रोटीन पाया जाता है और व्यक्ति में प्रोटीन की आपूर्ति अधिकतर दालों के खाने से होती है उदाहरण के लिए 100 ग्राम राजमा खाने से 24 ग्राम प्रोटीन की भरपूर मात्रा मिल जाती है दूसरी तरफ अंकुरित मूँग खाने से भी प्रोटीन की आवश्यकता पूरी हो जाती है इसलिए स्वस्थ रखने के लिए प्रति व्यक्ति 100 ग्राम दाल प्रतिदिन अपनी खुराक में शामिल करनी होगी

अब एक अन्य अध्ययन की बात करें तो जिस प्रकार दालों का खास महत्वव्यक्तियों के लिए है ठीक उसी प्रकार पशुओं के लिए भी है जो किसान दलहनी फसलों का भूसा अवशेष आदि को चारे के रूप में दुधारू पशुओं को खिलाते हैं तो पशुओं में दूध की मात्रा भी बढ़ जाती है और स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और यदि किसान भाई मालवाहक पशुओं को दलों का अवशेष खिलाते हैं तो उन पशुओं में भी शक्ति की कार्य क्षमता बढ़ जाती इस प्रकार अवशेषों का एक दूसरा खास लाभ यह भी है कि जो किसान दाल की फसल के अवशेषों को दाना निकलने के बाद अपने खेत में मृदा में सही प्रकार से मिला देते हैं इससे भी मृदा उर्वरक शक्ति बढ़ती है और आगे उगने वाली फसलों को खास लाभ होता है इसलिए किसान भाइयों को सलाह दी जाती है की दाल की फसल से दाना निकलने के बाद बचे अवशेष को मिट्टी में समान मात्रा मिला देना चाहिए इससे मृदा उर्वरक शक्ति बढ़ने के साथ–साथ मृदा का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और आगे उगने वाली फसल से उत्पादन अच्छा प्राप्त होता है यह कार्य किसी भी ऋतु में किया जा सकता है इस संदर्भ में दलहनी फसलों के समूह में शामिल निम्नलिखित फसलें जैसे चना मटर मसूर अरहर उड़द मूँग राजमा लोबिया इत्यादि इन सारी फसलों के अवशेषों को मृदा में आसानी से मिलाया जा सकता है और चारे में रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है और दोनों से दाल बनाते समय दाल निकालने के बाद बचे अवशेष को पशुओं को खिलाने के उपयोग में लाया जाता है इससे पशुओं के स्वास्थ्य अच्छा रहता है साथ ही दाल पशुओं में दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता बढ़ोतरी होती है तथा अन्य पशुओं को खिलाने से उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है अब प्रश्न यह उठता है कि दालों का उत्पादन अधिक से अधिक किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है इसकी चर्चा आगे विस्तार से की गई है इन बिंदुओं पर गौर करके दक्षतापूर्वक प्रबंधन करेंगे तो अवश्य दलों की अधिक से अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं आगे आपको शुरू से अंत तक दक्ष उपाय करना है आईये जानते हैं क्या है यह दक्ष प्रबंधन के उपाय

मृदा का चुनाव– ऐसी मृदा का चुनाव करें जिसका पीएच मान 07 हो समतल हो, जल निकास की सुविधा हो, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा उचित अनुपात में होनी चाहिए और मृदा रचना और संरचना भी अनुकूल हो और खेत की मृदा दोमट होगी तो अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है

खेत की तैयारी–सिंचाई की व्यवस्था होने पर पलेवा करके खेत की तैयारी करें और जहाँ सिंचाई की व्यवस्था न हो अर्थात वर्षा आधारित क्षेत्र में खेत की गहरी जुताई करके नमी को सुरक्षित करके रखें परंतु सामान्य खेत की दो बार हैरो से जुताई करें इसके बाद कल्टीवेटर चलाकर पाटा लगाकर समतल करके एक बार रोटावेटर अगर संभव हो तो अवश्य चलाकर खेत की मिट्टी को बारीक व भुरभुरी कर लें इससे अंकुरण अच्छा व आशानुरूप होता है ध्यान रहे कि बरसात के मौसम में ऑपरेशन एक दिन में होना चाहिए

निम्नलिखित दलहन फसलों की प्रचलित एवं उन्नत प्रजातियाँ

चना	पी 1003, पी 1052, पी 209, पी 256, पी 267, उदय, अवरोधी, एल 50,एल 144, पंत जी 186 पंत जी 114,सी 104, सी 235, जी 24, के 5, जेजी–11, जेजी 16, वैभव, इंद्रा चना–1, बीजीडी–128, गुजरात चना–1, पूसा मानव इत्यादि
मसूर	मल्लिका 4, पंत एल 204, पंत एल 234, पी एम –4, पी एम –5, टाईप 36, एल 9–12, एल 4076, जे एल 3, आईपी एल 81, आईपी एल 316 इत्यादि
मटर	अर्किल, रचना, आजाद, अपर्णा, बोनबिले, ऊषा टन, पूसा प्रगति, आईपीएफडी 6–3, आदर्श, विकास, प्रकाश, अमन, आईपीएफडी11–5, आईपीएफडी12–2, आईपीएफडी14–2
मूंग	पूसा विशाल, पूसा बैसाखी, पन्त मूँग 1, पन्त मूँग 2, पन्त मूँग 3, पन्त मूँग 4, पन्त मूँग 5, जवाहर मूँग 45, पूसा 9531, आशा इत्यादि
उड़द	उत्तर, शेखर, टाईप9, पन्त–1, बसंत, बहार, नरेन्द्र, मधुबन, इंदिरा, टाईप 4 इत्यादि
लोबिया	पूसा फाल्गुनी, पूसा दो फसली, सी 152, यूपीसी 42, टाईप 5269, पूसा बरसाती इत्यादि

बीज की मात्रा–किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

चना	मसूर	मटर	मूँग	उड़द	लोबिया
देशी 75–80	40–45	75–100	20–25	20–25	25–30
काबुली 80–100					

बीज उपचार–उपरोक्त सभी फसलों के बीज की बुवाई से पूर्व उपचारित करना कि आवश्यक है बीज को कवकनाशी रसायन जैसे बाविस्टिन अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की अथवा थायरम की 2.4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित अवश्य करना चाहिए ऐसा करने से अनेक रोगों की रोकथाम हो जाती है इससे पहले किसान बुबाई से पूर्व बीज को 2% नमक का घोल किसी कंटेनर में तैयार करें और अब इस घोल में बीज को डाल दें और ऊपर तैरने वाले बीज को किसी छलनी या प्लेट से निकालकर अलग करके गड्ढे में दबा दें और नीचे बैठे बीज को निकालकर थोड़ा सुखा ले इसके बाद बीज को ऊपर बताए गए कवकनाशी से उपचारित करें ऐसा करने से बीज उत्तम गुणवत्ता वाला बीज हो जाएगा इसके बाद राइजोबियम के टीके से बीज को उपचारित करना ना भूले।

बुबाई का समय– नीचे दी गई फसलों की बुवाई का उत्तम समय इस प्रकार है

चना– चने की बुवाई का सबसे उत्तम समय 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक होता है इसके बाद बुवाई करने से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है

मसूर– मसूर की बुवाई का उचित समय 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक रहता है इसके बाद बुवाई करने से अच्छी पैदावार नहीं मिलती और कई बीमारियां भी आ जाती है

मटर– हरी फलियों के लिए मटर की बुवाई खरीफ की फसल काटने के बाद 20–25 सितंबर के मध्य से लेकर 15 अक्टूबर तक कर देनी चाहिए और दाने की उपज के लिए अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा सही माना जाता है बुवाई हमेशा पंक्ति से पंक्ति 30 सेंटीमीटर के अंतराल पर करनी चाहिए।

मूँग–वैज्ञानिकों के शोध से साबित हुआ है कि मूँग को वर्ष में दो बार उगाया जा सकता है (1) जायद कालीन मूँग और खरीफ में मूँग जुलाई में बुबाई करें व और जायद की मूँग अप्रैल में में बोना लाभप्रद रहता है

उड़द– उड़द का अधिक से अधिक उत्पादन लेने के लिए जुलाई में बुवाई करना चाहिए इसके बाद बुवाई करने से उपज में गिरावट आ जाती है इसके लिए बुवाई हमेशा समय पर करना चाहिए।

लोबिया– लोबिया दो सीजन में बोया जाता है प्रथम ग्रीष्मकालीन बुबाई मार्च के आखिरी सप्ताह में करनी चाहिए और वर्षाकालीन बुवाई जुलाई के आरंभ में हो जानी चाहिए इससे उत्पादन अच्छा प्राप्त होता है

बुवाई की विधि– किसी फसल की बुवाई की कई विधियाँ होती है परंतु वैज्ञानिक विधि पंक्तियों में मानी जाती क्योंकि पंक्तियों का अंतरण एक निश्चित होता है और इसके लिए उपरोक्त सभी फसलों की बुबाई पंक्तियों में 30 सेंटीमीटर पर करें इससे पौधों की संख्या प्रति हेक्टेयर इस्टतम रहती है जिससे पैदावार भी अच्छी होती है और यदि अधिक फैलने वाली प्रजातियों है तो पंक्तियों का अंतराल बढ़कर 40 से 45 सेंटीमीटर कर देना चाहिए।

पंक्तियों का अंतरण– यह फसल की प्रजाति पर निर्भर होता है परंतु कम फेलने वाली प्रजाति में पंक्ति से पंक्ति का अंतरण 30 सेंटीमीटर रखते हैं और अधिक फेलने वाली प्रजातियाँ हैं तो यह अंतर्गत 30 सेंटीमीटर से बढ़कर 40 से 45 सेंटीमीटर कर देना चाहिए पौधों का अंतरण प्रजातियों पर निर्भर करता है कम फैलने वाली प्रजातियों का अंतर 10 से 15 सेंटीमीटर रखने और अधिक पहले वाली प्रजातियों में पौधे से पौधे का अंतर 20 सेंटीमीटर रखना चाहिए इससे पौधों की संख्या प्रति एकड़ संस्तुत संख्या के अनुरूप हो जाती है ऐसा करने से उत्पादन ज्यादा से ज्यादा मिलता है।

पौध प्रबंधन– बुबाईके एक सप्ताह बाद ध्यानपूर्वक खेत का निरीक्षण करें और जहाँ पर अंकुरण नहीं हुआ वहाँ पर तुरंत बीज को भिगोकर मिट्टी में सही प्रकार डाल दें पौध बहुत प्रबंधन सही प्रकार हो सके।

सिंचाई प्रबंधन– सिंचाई प्रबंधन में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ग्रीष्मकालीन फसलों में सिंचाई प्रबंधन करना कठिन होता है जबकि खरीफ कालीन फसलों में सिंचाई प्रबंधन करना आसान होता है ध्यान रखने योग्य बातें है कि दाल वाली फसल में क्रांतिक अवस्था पर सिंचाई करना बहुत जरूरी होता है यह क्रांतिक अवस्थाएं कौन–कौन सी होती हैं (1) प्रथम सिंचाई बुवाई के 25 दिन बाद अवश्य करनी चाहिए इससे पौधे की जड़ों का विकास सही प्रकार से हो जाता है जिससे मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण उचित प्रकार से होता है इस प्रकार दूसरी सिंचाई दानों का विकास के समय अवश्य करें और यदि पानी की सुविधा हो तो तीसरी सिंचाई जड़ों में नत्रजन स्थितिकरण ग्रंथियां बनते समय अवश्य करनी चाहिए इससे बहुत लाभ मिलता है इससे नत्रजन स्थितिकरण ग्रंथियां की संख्या बढ़ने के साथ–साथ पौधे का विकास अधिक होता है इसलिए सिंचाई प्रबंधन अच्छा करें अब ग्रीष्मकालीन दाल की फसल में अधिक तापक्रम होने पर 10 से 12 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए ध्यान रहे की पुष्प अवस्था पर सिंचाई न करें खास बातें है की बुवाई के 20 से 25 दिन बाद सिंचाई करने से पौधे की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण अच्छा होता है और जड़ों का विकास उचित प्रकार से होता है और कृषि का सिद्धांत है कि जब पौधे की जड़ों का विकास अच्छा होता है तो पौधे भी स्वस्थ रहताहै और जब

पौधा स्वस्थ रहता है तो उपज भी ज्यादा प्राप्त होती है और साथ–साथ बायोमास भी ज्यादा होता है जिससे किसान को प्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है।

खरपतवार प्रबंधन– किसान भाइयों आप जानते हैं कि खरपतवारों की समस्या दिन–प्रतिदिन भयानक बनती जा रही है फसल से संलग्न और सीजन के अनुसार खेतों में खरपतवार अंकुरित हो जाते इसका समय–समय पर निदान बहुत जरूर होना चाहिए लगभग सही फसलों में खरपतवारों का समय पर प्रबंध न करें तो इससे हानि लगभग 20 से 30: हो जाती है और कभी–कभी तो 70: तक उपज में नुकसान हो जाता है इस प्रकार बुवाई के लिए 20 से 30 दिन पर प्रारंभ सिंचाई के बाद खरपतवारों को निकलवा देना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर दूसरी सिंचाई के बाद 40 से 45 दिन बाद शेष खरपतवारों को निकलवा देना चाहिए इससे आपको ज्यादा से ज्यादा उत्पादन मिल जाएगा अब ऐसी स्थिति में जहाँ मजदूर उपलब्ध नहीं है वहाँ सिलेक्टिव खरपतवारनाशी का छिड़काव करके खरपतवारों का प्रबंध कर सकते हैं खाली क्षेत्रफल (नाली डाल रास्ता) आदि में नॉनसिलेक्टिव खरपतवारनाशी ग्लाइफोसेट का 5 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर समान रूप से छिड़काव कर सकते हैं ध्यान रहे की फसल पर छिड़काव घोल पड़ने न पावे। थोड़ी सी असावधानी से फसल को नुकसान होने की संभावना होती है।

पोषक प्रबंधन–आवश्यकता पड़ने पर हल्की मृदाओं में नाइट्रोजन फास्फोरस पोटाश का प्रयोग करें जो निम्नलिखित हैः

	चना	मसूर	मटर	मूँग	उड़द	लोबिया
नाइट्रोजन किलोग्राम/हेक्टेयर	15–20	20–30	15–20	15–20	15–20	15–20
फास्फोरस किलोग्राम/हेक्टेयर	20–40	60–75	20–30	40–50	40–50	40–50
पोटाश किलोग्राम/हेक्टेयर	30–40	–	30–40	–	30–40	30–40
	5 जिंक सल्फेट			5 जिंक सल्फेट		

उपरोक्त तालिका में संतुलित की गई उर्वरकों की मात्रा देने से उत्पादन में वृद्धि देखी गई है और मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने से लाभ होता है तथा हाल की मृदा में उर्वरकों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है कुछ दाल वाली फसलों में 0.5% जिंक सल्फेट और 0.25% चूने के घोल का छिड़काव करने से उत्पादन में वृद्धि होती देखी गई है।

फसल सुरक्षा– प्रतिशत फसल सुरक्षा में दो पहलुओं पर गौर किया जाता है ये पहलू है रोगों से सुरक्षा दूसरा पहलू है कीटपतंग से सुरक्षा–

रोग प्रबंधन– उपरोक्त दाल वाली सभी फसलों में मुख्य रूप से निम्नलिखित रोग जैसे अंगमारी धब्बे, मोजेक, उकठा, आसिता का आक्रमण देखा गया है इनका समय से प्रबंध करना चाहिए अगर समय पर रोकथाम नहीं की जाती है तो उत्पादन में बहुत नुकसान होने की संभावना रहती है उपरोक्त बताई गई बीमारियों की रोकथाम के लिए विशेषज्ञयों के द्वारा संस्तुत की गई दवाई (रसायन) का प्रयोग करना चाहिए यदि जानकारी का अभाव होता है तो अस्थाई रोकथाम के लिए जिनेब/बाविस्टिन/गंधक का चूर्ण का 0.2 से 0.3% का घोल बनाकर छिड़काव कर सकते और समय रहते रोगी पौधों को उखाड़ कर गड्ढे में दबा देना चाहिए।

कीट प्रबंधन– दाल वाली फसलों में निम्नलिखित कीटों का आक्रमण देखा गया है इनके आक्रमण से पैदावार में भारी कमी आ जाती है इसलिए इनका समय पर नियंत्रण करना अति आवश्यक होता है यह निम्नलिखित कीट जैसे कुतरा कीट भंडारण में भ्रंगनामक कीट, तनाभेदक, माहू और मूँग लोबिया उड़द में दीमक नामक कीट का आक्रमण होता है उनके नियंत्रण के लिए एल्ड्रिन 2 प्रतिशत की धूल अथवा तनभेदक के लिए 30 किलोग्राम फ्यूराडोन प्रति हेक्टेयर से उपयोग करें और माहू कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 1 मिली. प्रति 1 लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करने से कीट का नियंत्रण हो जाता है और मूँग में दीमक कीट अंकुरण के समय काफी क्षति करता है

इसकी रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व एल्ड्रिन की 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मात्रा को समान रूप से मिट्टी में मिला देना चाहिए इस प्रकार दाल वाली फसलों में कीटों का प्रबंध करना चाहिए।

फलियों की तुड़ाई– यदि मटर लोबिया आदि फसल को सब्जी के लिए उगाया जाता है तो समय पर तुड़ाई करना आवश्यक होता है ऐसी फसलों में बुवाई के 40–50 दिन बाद प्रथम तुड़ाई योग्य फलियाँ बन जाती है इस प्रकार तीन से चार तुड़ाई 10 दिन के अंतराल पर कर सकते हैं।

कटाई– जब फलियों का हरे रंग से सुनहरा रंग की हो जाए और दानों में 15 से 20% नमी रह जाए तो समझ लेना चाहिए की फसल कटाई योग्य हो गई है कटाई दराती से मजदूरों द्वारा कर सकते हैं और कटाई मशीन द्वारा भी की जा सकती है अब काटकर फसल को सुखाने के लिए चार से पाँच दिन तक खेत में छोड़कर रखें इसके बाद फसल को खलियान में एकत्र कर लें।

गहाई– चना मूँग आदि की गहाई मशीन द्वारा कर सकते हैं अरहर की गहाई भी मशीन द्वारा कर सकते हैं और साथ ही उड़द की गहाई भी मशीन द्वारा कर सकते हैं इसके अलावा फर्श पर अथवा खलियान में डंडों से पीटकर भी फलियाँ से दाना अलग कर सकते हैं ध्यान रहे कि दानों में 15% से ज्यादा नमी होने पर दाना मशीन में टूट अथवा पिचक / चपटा हो जाता है यहीं हाल दानों का डंडे से पीटने पर भी होता है।

ओसाई– जब दाना भूसे से अथवा फलियों के छिलके से अलग हो जाए तो पंखे के द्वारा अथवा हवा में भूसे से दानों को अलग करके साफ करते हैं और साथ ही साथ उपचारित बोरों अथवा डिब्बों में या कंटेनर में भर सकते हैं।

भंडारण– उपज का भंडारण जब दानों में 10 से 12 प्रतिशत नमी रह जाए नमी जानने की साधारण पहचान है कि सूखे दाने को मुंह में दांत से फोड़ने पर कड़क की आवाज आ जाए तो समझ लेना चाहिए की नमी का प्रतिशत 10 से 15 प्रतिशत ऐसी स्थिति में उपज को बोरों / डिब्बों / टंकियों में भरकर साफ स्वच्छ उपचारित स्थान पर भंडारित कर सकते है। आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशी सल्फास की गोलियां का भी उपयोग कर सकते हैं इन गोलियों का उपयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योंकि इन गोलियों से जहरीली गैस का सृजन होता है। यह गैस खतरनाक हो सकती है।

राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी पखवाड़ा (14–29 सितम्बर, 2023) आयोजन की संक्षिप्त आख्या

1. हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन हेतु–पखवाड़ा भर विभिन्न प्रतियोगिताओं का सफल बनाने हेतु निदेशक महोदय द्वारा प्रत्येक प्रतियोगिता के लिये अलग–अलग निर्णायक मण्डल का गठन किया गया था। प्रतियोगिताओं को प्रोत्साहित करने के लिये विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। जिसमें तत्काल भाषण प्रतियोगिता, निबन्ध, कम्प्यूटर पर हिन्दी टाइपिंग, इमला, अनुवाद, कुशल सहायक कर्मचारियों के लिए अवकाश प्रार्थना–पत्र प्रतियोगिता एवं वैज्ञानिक वर्ग के लिए हिन्दी में शोध–पत्र पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसके साथ ही साथ यह निर्णय लिया गया कि प्रशासनिक वर्ग से जिन अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने पिछले एक साल के कार्यकाल में 20,000 या उससे अधिक हिन्दी शब्दों का प्रयोग अपने दैनिक कामकाज में किया हो, उनको प्रथम पुरस्कार रू. 1000/– द्वितीय पुरस्कार रू. 800/– तृतीय पुरस्कार रू. 500/– तथा सात्वना रू. 300/– दिया जाये जिससे वे प्रोत्साहित होकर अपना सरकारी कामकाज अधिक से अधिक हिन्दी में करे। पखवाड़ा के दौरान संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने प्रतियोगिता में बढ़–चढ़कर भाग लिया। प्रत्येक प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय व सांत्वना पुरस्कारों का प्रावधान रखा गया। उपरोक्त सभी पुरस्कार नगद राशि के रूप में प्रदान किये गये।

2. दिनाँक 14/09/22 को हिन्दी पखवाड़ा का उद्घाटन सत्र संस्थान के प्रभारी निदेशक डॉ. आर.पी. द्विवेदी की अध्यक्षता में प्रारंम्भ हुआ। कार्यक्रम का प्रारम्भ आई.सी.आर. कुलगीत से किया गया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए श्रीमती शैलजा ताम्रकार, प्रभारी अधिकारी, राजभाषा ने हिन्दी पखवाड़ा आयोजन की रुप–रेखा प्रस्तुत की। कार्यक्रम के आरंभ में डॉ. नरेश कुमार ने माननीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री भारत सरकार का संदेश एवं डॉ. ह्रदयेश अनुरागी, वरिष्ठ वैज्ञानिक द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक महोदय की अपील पढ़कर सभी को बहुमूल्य विचारों से अवगत कराया। निदेशक महोदय ने अपने उद्बोधन में सभी से अपील की कि हिन्दी को बढ़ावा देना हम सभी भारतीय नागरिकों का कर्तव्य है इसलिये हम सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी में कामकाज ज्यादा से ज्यादा करना चाहिये।

3. दिनाँक 18/09/2023 को संस्थान में तत्काल भाषण प्रतियोगिता का आयोजन हुआ जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों, शोध सहायक, एवं शोध अध्येताओं ने भाग लिया।

4. दिनाँक 19/09/2023 को निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों, शोध सहायक एवं शोध अध्यताओं ने भाग लिया।

5. दिनाँक 20/09/2023 को कम्प्यूटर पर हिन्दी टाइपिंग प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोध सहायक, शोध अध्यताओं ने भाग लिया।

6. दिनाँक 21/09/2023 को इमला प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों, शोध सहायक एवं शोध अध्यताओं ने भाग लिया।

7. 22/09/2023 को अनुवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों, शोध सहायक, एवं शोध अध्यताओं ने भाग लिया।

8. दिनाँक 25/09/2023 को वैज्ञानिकों के लिये शोधपत्र (पोस्टर) प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी वैज्ञानिकों ने भाग लिया ।

9. दिनाँक 26/09/2023 को कुशल सहायक कर्मचारी एवं समान वेतन कर्मचारियों के लिये अवकाश प्रार्थना पत्र प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

10. दिनाँक 27/09/2023 का इसके उपरान्त अहिन्दी भाषी क्षेत्र के कार्मिकों के लिए पत्र–लेखन/प्रार्थना–पत्र प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

समापन कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुये संस्थान के निदेशक डॉ. अरुणाचलम ने अपने उद्बोधन में कहा कि हिन्दी एक सम्पर्क भाषा है। इसको आसानी से आत्मसात् किया जा सकता है। हम सभी के प्रयासों से एक दिन हिन्दी राष्ट्रभाषा अवश्य हो जायेगी। हिन्दी हमारे अभिव्यक्ति की एक सहज और सरल भाषा है उन्होनें राजाभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3 (3) एवं राजभाषा नियमों, 1976 का उल्लेख करते हुये सभी से अपने दैनिक कार्यों में इसके अनुपालन करने की अपील की। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुये निदेशक महोदय ने पुरस्कुत प्रतिभागियों को बधाई देते हुयें वैज्ञानिकों से अपील की कि वे संस्थान में विकसित तकनीकियों को किसानों तक हिन्दी भाषा में पहुँचाने हेतु और अधिक प्रयास करे। अन्त में हिन्दी सप्ताह को सफल बनाने के लिये सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

दिनाँक 29/09/2023 को हिन्दी समापन समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. आशीष कुमार गुप्ता (खंताल), प्रधानाचार्य, एस. आर.जी.आई.,कॉलेज झाँसी थे। उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा कि हिन्दी हमारी राष्ट्र की शान है, इसका खुलकर प्रयोग करना चाहिए, हिन्दी भाषा का प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए तभी राजभाषा का विकास हो पायेगा।

उन्होंने पखवाड़ा के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागिओं को अपनी हार्दिक बधाई दी।

समापन कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि श्री एम.डी. शर्मा, पत्रकार एवं लेखक, नई दिल्ली ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हमें किसानों के साथ ज्यादा से ज्यादा वार्ता हिन्दी में करें और लेख एवं पुस्तकें को हिन्दी में लिखा जाना चाहिए जिससे किसान पढ़कर उसका सद्‌पयोग कर सकें। शोध कार्यों को किसानों तक पहुँचायें। ज्यादा से ज्यादा शोध कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि श्री एस.पी. उनियाल, पूर्व उप निदेशक (राजभाषा), आई.सी.ए.आर., नई दिल्ली ने अपने उद्‌बोधन में राजभाषा नीति–नियम के बारे में विधिवत बताया। उन्होंने धारा 3(3) का उल्लेख करते हुए बताया गया कि इस धारा के अन्तर्गत आने वाले सभी कागजात द्विभाषी रूप में जारी किया जाना चाहिए। उन्होंने बताया कि यह संस्थान ''क'' क्षेत्र की श्रेणी में आता है इसलिए यहाँ पर पत्राचार शत–प्रतिशत हिन्दी में होना चाहिए। उन्होंने बताया कि सभी प्रक्षेत्र बोर्ड को द्विभाषी बनाया जाए, सबसे पहले हिन्दी उसके नीचे अंग्रेजी में होनी चाहिए। उन्होंने संस्थान में किये जा रहे हिन्दी कार्यों की प्रशंसा भी की।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक डॉ. ए. अरूणाचलम ने संस्थान के सभी कार्मिकों से अधिक से अधिक हिन्दी में कार्य करने पर बल दिया। उन्होंने बताया कि इस संस्थान में अधिकतर फाइलों पर टिप्पणियाँ हिन्दी में लिखी जा रही है। कार्यालय आदेश तथा परिपत्र भी हिन्दी में जारी किया जा रहा है। उन्होंने हिन्दी प्रतियोगिता के विजयी प्रतिभागियों को अपनी तरफ से सभी को शुभकामनायें दी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दी को बढ़ावा देने के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम में सुशील कुमार ने अंगदान के संबंध में शपथ दिलाई तथा डॉ. ए.के. हाण्डा ने भ्रष्टाचार निवारण के बारे में बताया गया। आज संस्थान परिसर में स्वच्छता कार्यक्रम का आयोजन भी किया गया जिसमें संस्थान के सभी कार्मिकों ने सफाई कार्यक्रम में हिस्सा लिया।

कार्यक्रम के दौरान संस्थान द्वारा हिन्दी में प्रकाशित की गयी "कृषिवानिकी आलोक" पत्रिका का विमोचन मंचासीन अतिथियों द्वारा की गयी।

हिन्दी तिमाही कार्यशाला का आयोजन

1. दिनाँक 20 दिसम्बर 2023 को सम्पन्न हिन्दी तिमाही कार्यशाला में राजभाषा सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी में दिनाँक 20.12.2023 को तिमाही कार्यशाला (अक्टूबर–दिसम्बर, 2023) में राजभाषा सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें संस्थान के सभी वैज्ञानिक अधिकारी, कर्मचारियों व शोध छात्र–छात्राओं एवं यंग प्रोफेशनल ने भाग लिया। कार्यक्रम की शुरुआत में राजभाषा अधिकारी ने प्रतियोगिता में भाग लेने सभी प्रतिभागियों एवं निर्णायक मंडल का स्वागत किया। डॉ. आशा राम, वरिष्ठ वैज्ञानिक ने राजभाषा हिन्दी के महत्व में अपने विचार व्यक्त किये तथा प्रतियोगिता के नियमों के बारे में अवगत कराया। इसके बाद राजभाषा सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के लिये प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुस्कार का प्रावधान रखा गया।
2. दिनांक 28.02.2024 को हिन्दी तिमाही कार्यशाला (जनवरी–मार्च, 2024) का आयोजन किया गया। जिसमें संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, तकनीकी, प्रशासनिक अधिकारी, कर्मचारियों, यंग प्रोफेशनल एवं प्रोजेक्ट स्टॉफ ने भाग लिया। मुक्त वक्ता के रूप में डॉ. सुनील कुमार, प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी अधिकारी (राजभाषा), भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी ने "राजभाषा का प्रयोग हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य" विषय पर एवं राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर व्याख्यान दिया। हिन्दी एक ऐसी सशक्त भाषा है जो देश और समाज को समर्थ बनाती है। अपनी भाषा का संरक्षण करना हर नागरिक का दायित्व है। हिन्दी भाषा भी वसुधैव कुटुंबकम है जिसमें विभिन्न भाषाओं को समायोजन है आज का युग डिजीटल युग है जिसमें हिन्दी भाषा का बहुत अधिक प्रयोग हो रहा है। उन्होंने इस वर्ष की राष्ट्रीय विज्ञान दिवस की थीम "विकसित भारत के लिए भारतीय स्वदेशी प्रौद्योगिकी" पर भी प्रकाश डाला। डा. बद्रे आलम, प्रधान वैज्ञानिक ने राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के उपयोग एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों की संक्षिप्त में जानकारी दी।

   संस्थान के द्वारा आयोजित की जा चुकी राजभाषा हिन्दी सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता के विजयी प्रतिभागियों को मुख्य अतिथि द्वारा पुस्कार वितरण किया गया।

3. दिनाँक 12–05–2023 को मुख्य वक्ता के रुप में डॉ. वी.के. शर्मा, पूर्व उप निदेशक एस.आई.आर.डी., ईटा नगर, अरुणाचल प्रदेश ने "राजभाषा हिन्दी का महत्व" विषय पर व्याख्यान दिया। हिन्दी बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ हिन्दी विश्व की संभवत सबसे सरल भाषा है। जिसे दुनिया भर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या मौजूद है। यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। कृषिवानिकी संस्थान प्रशिक्षण संस्थान है जिसमें विभिन्न प्रकार के व्यक्ति प्रशिक्षण लेने आते है उन्हें उनकी भाषा में प्रशिक्षण देने चाहिये जिससे वह कृषि तकनीकी का उपयोग कर सके।

विशिष्ट अतिथि डॉ. मधुपर्णा शर्मा, सहायक प्रोफेसर, शासकीय कॉलेज, ईटा नगर, अरुणाचल प्रदेश ने कहा कि कृषि के क्षेत्र में तकनीकी शब्दों को किसानों को उनकी ही सामान्य भाषा में समझना चाहिये जिससे किसान अपनी खेती में नई–नई तकनीकियों का उपयोग करके अपनी उत्पादकता को बढ़ा सके। किसानों को राजभाषा हिन्दी में कृषि तकनीकी विषयों में जानकारी अधिकाधिक उपलब्ध कराने की बात की।

4. दिनाँक 26–07–2024 को मुख्य अतिथि के रूप में कार्यक्रम को सुशोभित कर रहे डॉ. प्रभात पाण्डेय, आर.टी.ओ, झाँसी ने यातायात नियमों पर प्रकाश डालते हुए कहा "हिन्दी हमारे गौरव और विकास का प्रतीक हैं। इसीलिए हिन्दी भाषा की उपयोगिता को आम जन–मानस की भावनाओं में प्रवाहित करने के लिए इस प्रकार के कार्यक्रमों की अत्यन्त आवश्यकता है"।

विचार मंच के मुख्य वक्ता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने सम्बोधन में विभिन्न पहलुओं को शामिल करते हुए, अपने अनुभवों के आधार पर कहा कि सभी सजग नागरिकों को अपने अधिकार के साथ जिम्मेदारियों का बोध होना चाहिए ताकि समाज एवं देश की प्रगति को निरंतर नई दिशा दी जा सके। उन्होंने यातायात नियमों को रेखांकित करते हुए स्पष्ट किया कि हम सभी लोगों को यातायात नियमों का कड़ाई से पालन करके एक जिम्मेदार नागरिक होने का परिचय देना, समय की जरूरत है। इन नियमों का पालन करके हम अपने आपको, समाज एवं देश के नागरिकों को सुरक्षित रख सकते है। इस अवसर पर डॉ. नरेश कुमार ने संविदा कर्मियों को उनकी जिम्मेदारियों का बोध कराते हुए कहा कि आपकी कार्यस्थल पर समय की पाबंदी तथा कर्तव्य परायणता संस्थान की प्रगति में एक अहम् रोल अदा करती है।

संस्थान में आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक

संस्थान में निम्नलिखित दिनाँकों में निदेशक की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक सम्पन्न हुयी। बैठकों में राजाभाषा को बढावा देने के लिये विभिन्न बिन्दुओं पर विचार किया गया और निर्णय लिये गये।

1. दिनाँक 07/12/2023 निदेशक की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक सम्पन्न हुयी। जिसमें निर्णय लिया किया कि सरकारी काम–काज में हिन्दी का शत–प्रतिशत प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता पर बल दिया और तिमाही अक्टूबर –दिसम्बर 2023 के दौरान राजभाषा हिन्दी की तिमाही कार्यशाला में राजभाषा हिन्दी सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता के आयोजन किया जायें।
2. दिनाँक 07/02/2024 निदेशक की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक सम्पन्न हुयी। बैठकों में राजाभाषा को बढ़ावा देने के लिये विभिन्न बिन्दुओं पर विचार किया गया और निर्णय लिये गये। राजभाषा अधिनियम के उपबन्ध धारा 3(3) 1963 के अनुसार हिन्दी को बढ़ावा देने के लिये सभी सरकारी काम–काज हिन्दी में किया जाना। कृषिवानिकी आलोक–2024 प्रकाशन कार्य को प्रारंभ करने के लिये आलेख मँगवाने के लिये सभी संस्थानों को ई–मेल भेजा जावें।
3. दिनाँक 26/04/2024 को निदेशक महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक सम्पन्न हुयी। जिसमें राजभाषा हिन्दी की तिमाही कार्यशाला के बावत् एवं हिन्दी में सरकारी कामकाज बढ़ावा देने का निर्णय लिया और पुस्तकालय में हिन्दी स्लोगन लगवाने के लिए निर्णय लिया गया।
4. दिनाँक 01/08/2024 को निदेशक महोदय की अध्यक्षता में समिति ने निर्णय लिया गया कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली फा.सं. रा.भा. 2(3)/2018–हिन्दी दिनाँक 19 जुलाई 2024 के पृष्ठांकन के संदर्भ में हिन्दी पखवाड़ा पूरे उत्साह से संस्थान में मनाया जायें लेकिन प्रत्येक कार्यालय में हिन्दी दिवस का शुभारंभ दिनाँक 14 सितम्बर 2024 को भारत मंडपम्, नई दिल्ली में हो और समापन संबंधित कार्यालय में हो। संस्थान में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किये जाने के विषय में विस्तार से चर्चा की गयी।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, झाँसी के तत्वावधान में पंजाब नेशनल बैंक, झाँसी द्वारा एक दिवसीय कार्यशाला और राजभाषा सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन दिनाँक 02–03–2023 को किया गया। जिसमें संस्थान के कार्मिकों से सहभागिता सुनिश्चित की।

भा.कृ.अनु.प. –केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान और राजभाषा : एक प्रतिवेदन

केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी द्वारा राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए संस्थान में निम्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता है :

1. संस्थान में प्रत्येक वर्ष हिन्दी सप्ताह/पखवाड़ा का आयोजन किया जा रहा है। पखवाड़ा के दौरान हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है जैसे– निबन्ध, तत्काल भाषण, सुलेख, इमला, सामान्य ज्ञान, अनुवाद, कविता एवं शोध–पत्र पोस्टर प्रतियोगिता इत्यादि। प्रतियोगिता में विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कार व प्रमाण–पत्र वितरित किये जाते हैं।

2. हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए संस्थान में प्रत्येक तिमाही में हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया जाता है।
3. संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के कार्यों को प्रभावी रूप से लागू कराने व कार्यों की समीक्षा करने हेतु राजभाषा कार्यान्वयन समिति का विधिवत गठन किया गया है जिसकी अध्यक्षता संस्थान निदेशक द्वारा की जाती है तथा प्रत्येक तिमाही में बैठक आयोजित की जाती है तथा कार्यवृत्त तैयार कर परिषद् मुख्यालय, नई दिल्ली को भेजा जाता है।
4. संस्थान द्वारा एक हिन्दी कृषिवानिकी शब्दकोश तैयार किया गया है जिसमें तकनीकी शब्दावलियों का समावेश किया गया है।
5. संस्थान में उपलब्ध सभी कम्प्यूटरों पर द्विभाषी रूप से कार्य करने की सुविधा उपलब्ध है।
6. संस्थान के सभी विभागों/इकाईयों तथा वैज्ञानिकों/अधिकारियों एवं कर्मचारियों के नामपट्ट द्विभाषी रूप में उपलब्ध है तथा सभी साइन बोर्ड द्विभाषी रूप में तैयार किये गये हैं।
7. संस्थान में उपलब्ध सभी वाहनों पर नम्बर प्लेट तथा कार्यालय का नाम द्विभाषी रूप में है।
8. प्रत्येक वर्ष संस्थान की राजभाषा पत्रिका "कृषिवानिकी आलोक" का प्रकाशन किया जाता है।
9. मंडल रेल प्रबन्धक कार्यालय, झाँसी द्वारा आहूत नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की प्रत्येक बैठक में संस्थान द्वारा सक्रिय रूप से भाग लिया जाता है तथा छःमाही राजभाषा रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है।
10. संस्थान द्वारा सभी फाइलों पर प्रशासनिक शब्दावलियों को अंग्रेजी से हिन्दी में छपवाया गया है, जिससे फाइलों पर हिन्दी में टिप्पणी लिखने में सहायता मिलती है।
11. संस्थान के वैज्ञानिको द्वारा अनेकों पुस्तकें/प्रसार बुलेटिन हिन्दी में लिखी गई है। केन्द्र के वैज्ञानिकों को हिन्दी पुस्तक लिखने के लिए तीन बार डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार परिषद् मुख्यालय, नई दिल्ली द्वारा दिया गया।
12. संस्थान द्वारा किसानों, सरकारी संस्थाओं एवं गैर–सरकारी संस्थाओं को कृषिवानिकी से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है, जिसमें प्रशिक्षण सामग्री हिन्दी में उपलब्ध कराई जाती है।
13. संस्थान में दिन–प्रतिदिन प्रचलन में प्रयुक्त अधिकतर प्रारूप द्विभाषी है।
14. संस्थान में अधिकतर परिपत्र, सामान्य आदेश, सेवा पुस्तिका, अर्जित अवकाश, कार्यालय आदेश, प्रेस विज्ञप्ति हिन्दी में जारी किये जा रहे हैं।

हिन्दी में अनुसंधान प्रकाशन

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	अंक	वर्ष
1.	कृषिवानिकीः समय की माँग	आर.पी. द्विवेदी; सुशील कुमार; प्रियंका सिंह; सुरेश रमणन एस. ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–01/2023	2023
2.	मेरा गाँव– मेरा गौरव : किसान – वैज्ञानिक सम्पर्क का मजूबत पुल	आर.पी. द्विवेदी; राजेन्द्र प्रसाद; ए.के. हाण्डा; बद्रे आलम; नरेश कुमार; सुशील कुमार; के. राजराजन; आशाराम; सोभन देवनाथ; अशोक यादव; हृदयेश अनुरागी; आशा ज्योति; प्रियंका सिंह; सुरेश रमणन एस. ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–02/2023	2023
3.	सहजन आधारित कृषिवानिकी : उत्पादन पद्धतियाँ	हृदयेश अनुरागी; के. राजराजन; आशाराम; अशोक यादव; आर.पी. द्विवेदी; ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–03/2023	2023
4.	महुआ : बुन्देखण्ड में आजीविका सुरक्षा हेतु परदान	नरेश कुमार; सुरेश रमणनन एस.; ए.के. हाण्डा; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–05/2023	2023
5.	बुन्देलखण्ड में सागौन की खेती : दोगुनी आय का मार्ग	सुरेश रमणन एस.; नरेश कुमार; ए.के. हाण्डा; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–06/2023	2023

6.	अमरुद आधारित कृषिवानिकी : स्थापना एवं प्रबन्ध	अशोक यादव; सुशील कुमार; आशा ज्योति; बद्रे आलम; वाय.एन. वेंकटेश आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–10 / 2023	2023
7.	बाँस आधारित कृषिवानिकी	ए.के. हाण्डा; नरेश कुमार; सुरेश रमणन एस.; आशाराम; सुशील कुमार; प्रियंका सिंह; आशा ज्योति; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–11 / 2023	2023
8.	कृषक आय व्द्वि का साधन : नींबू घास	आशाराम; सुशील कुमार अशोक यादव; सोभन देवनाथ; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–12 / 2023	2023
9.	कृषि उद्यानिकी में बेर की पादप सुरक्षा	आशा ज्योति; अशोक यादव; वाई.एन. वेंकटेश; सुशील कुमार; आशाराम; बद्रे आलम; आर.पी. द्विवेदी; ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–13 / 2023	2023
10.	फल आधारित कृषिवानिकी	अशोक यादव; सुशील कुमार; आशा ज्योति; बद्रे आलम; सोभन देवनाथ; आशा ज्योति; वाई.एन. वेंकटेश; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–14 / 2023	2023

11.	आँवला आधारित कृषिवानिकी	अशोक यादव; सुशील कुमार; आशा ज्योति; बद्रे आलम; सोभन देवनाथ; आशा ज्योति; वाई.एन. वेंकटेश; आर.पी. द्विवेदी ए. अरुणाचलम	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	प्रसार पत्रक–15 / 2023	2023
12.	कृषिवानिकी आलोक (राजभाषा पत्रिका)	शैलजा ताम्रकार (संपादक)	भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान	बारहवाँ अंक	2023

संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी में आयोजित कृषक मेला, प्रदर्शनी एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम

1. एक दिवसीय किसान मेला एवं तकनीकी प्रदर्शनी, दिनाँक 01 नवम्बर, 2023, भारतीय चरागाह एवं अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

2. जलवायु अनुकूल एकीकृत कृषि पद्धतियाँ, दिनाँक 5–6 दिसम्बर, 2023, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

3. अनुसूचित जाति उप परियोजना प्रशिक्षण कार्यक्रम, दिनाँक 8–10 दिसम्बर, 2023, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

4. जलवायु अनुकूल एकीकृत कृषि पद्धतियाँ, दिनाँक 14–15 दिसम्बर, 2023, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

5. एक माह–एक जिला के अंर्तगत दिनाँक 25 जनवरी, 2024 को गाँव बबीना ब्लॉक, छतरपुर, परासई एवं बड़वानी ब्लॉक के कृषकों को प्रशिक्षण दिया, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

6. कृषि, उद्यानिकी, डेयरी एवं खाद्य तकनीकी अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी और सेमिनार दिनाँक 3–6 फरवरी 2024 आर.वी. एस.के.वी.वी., ग्वालियर (म.प्र.)।

7. अन्तरक्षेत्रीय किसान मेला एवं कृषि प्रर्दशनी, दिनाँक 8–10 फरवरी, 2024, रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)।

8. तकनीकी एवं मशीनरी प्रदर्शन सम्मेलन सह किसान मेला, दिनाँक 13 फरवरी 2024, भारतीय चरागाह एवं अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

9. उन्नत कृषि पद्धतियाँ, दिनाँक 10–11 जून, 2024, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

10. अनुसूचित जाति उप परियोजना प्रशिक्षण कार्यक्रम, दिनाँक 12–14 जून, 2024, बेर बडिंग प्रशिक्षण, गाँव गढ़कुण्डार, निवाड़ी, (म.प्र.)।

11. उन्नत कृषि पद्धतियाँ, दिनाँक 13–14 जून, 2024, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

12. अनुसूचित जाति उप परियोजना प्रशिक्षण कार्यक्रम, दिनाँक 16–18 जून, 2024, उन्नत कृषि पद्धतियाँ और बेर बडिंग पर प्रशिक्षण, गाँव गढ़कुण्डार, निवाड़ी, (म.प्र.)।

13. उन्नत कृषि पद्धतियाँ, दिनाँक 24–25 जून, 2024, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

14. किसानों की आजीविका सुरक्षा हेतु कृषिवानिकी तकनीकियाँ, 26–30 जून, 2024, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

15. बुन्देलखण्ड क्षेत्र की प्रमुख कृषिवानिकी पद्धतियों के लिए क्षेत्र सर्वोत्तम प्रबंधन क्रियाएं, दिनाँक 21–22 अगस्त, 2024, केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)।

टिप्पणियाँ

टिप्पणियाँ

Swachh Bharat Abhiyan

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

Agrisearch with a human touch

केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान

"कृषिवानिकी: एक जीवन दायिनी"

भाकृअनुप-केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान

झाँसी 284003, उत्तर प्रदेश

+91-510-2730214 director.cafri@icar.gov.in https://cafri.icar.gov.in

@IcarCafri @ICAR-CAFRI JHANSI @icar.cafri @ICAR-CAFRI.jhansi @icar.cafrijhansi2384